जीवन-साथी

सत्यकाम विद्यालङ्कार

राजपाल एण्ड सन्ज़
नई सड़क : दिल्ली

मूल्य
चार रुपया

मुद्रक—नवीन प्रेस, दिल्ली।

भूमिका

प्रकृति ने पुरुष और स्त्री को ही परस्पर जीवन-साथी बनने के लिये बनाया है। दोनों का जीवन परस्पराश्रयी है ; दोनों की भावनायें और दैहिक इच्छायें परस्पर पूरक हैं। साथी बनकर ही दोनों का जीवन पूर्ण होता है।

इस नैसर्गिक विधान को निर्बाध बनाने के लिये ही समाज ने विवाह की प्रथा का आविष्कार किया था। किन्तु विवाह स्त्री-पुरुष को वैधानिक साथी देने में ही सफल हो सका है। प्रत्येक पुरुष को पत्नी मिल जाती है और स्त्री को पति मिल जाता है—लेकिन जीवन-साथी लाखों में एक को मिलता है।

जीवन पर्यन्त साथ रहने का प्रण करने से ही हम जीवन-साथी नहीं बन जाते। यह प्रण प्रायः वासना के प्रथम उन्माद में किया जाता है और जीवनपर्यन्त समाज के अपवाद-भय से निभाया जाता है ; स्वेच्छा से नहीं। इसीलिये विवाह के सूत्र स्नेह के नहीं, घृणा के बन जाते हैं। और, पति-पत्नी जीवन-सखा बनने के स्थान पर जीवन-शत्रु बन जाते हैं।

साधारणतया यह कल्पना की जाती है कि स्त्री-पुरुष की नैसर्गिक कामेच्छा ही दोनों को सफल जीवन-साथी बनाने के लिये पर्याप्त प्रेरणा है। यह भूल है। काम-सम्बन्धी आकर्षण क्षण-स्थायी होता है। काम-जन्य इच्छाओं की तृप्ति के बाद वह नष्ट भी हो जाता है। ऐसे क्षण-भंगुर आधार पर आजीवन प्रेम की इमारत खड़ी नहीं हो सकती।

जीवन-साथी बनने के लिये जिस आकर्षण की आवश्यकता है वह दैहिक नहीं, आत्मिक है। दो शरीर नहीं—बल्कि, दो आत्मायें ही जीवन-साथी बन सकती हैं। स्त्री-पुरुष का प्रथम मिलन केवल दैहिक आकर्षण से भी

सम्भव हो सकता है—किन्तु जीवन भर का साथ उन दोनों की मानसिक व आत्मिक एकरूपता पर ही निर्भर है।

एकरूपता से मेरा अभिप्राय यह नहीं है कि दोनों के शील-स्वभाव में समानता होनी चाहिये; या दोनों का व्यक्तित्व एक-सा होना चाहिये; अथवा, यह कि दोनों को एक-दूसरे में इतना मिट जाना या खो जाना चाहिये कि वे एक प्राण दो शरीर दिखाई देने लगें; उनमें एकत्व आ जाय। मैं इस सम्पूर्ण-समर्पण को न तो सम्भव ही मानता हूँ और न अभीष्ट ही समझता हूँ। स्वयं को मिटा देने के इस उपक्रम में मनुष्य प्रायः अपनी सब विशेषताओं को भी मिटा देता है; अपनी स्वतन्त्रता का, अपने व्यक्तित्व का नाश कर देता है। मेरा विश्वास है कि दो स्वतन्त्र आत्मायें ही सफल जीवन-साथी बन सकती हैं; परतंत्र, समर्पित या विनष्ट आत्मायें नहीं।

स्वयं को नष्ट करने के स्थान पर यदि दोनों दूसरे को विकास में सहायता देने का यत्न करें तो वे अधिक सफल जीवन-साथी बन सकते हैं। जो प्रेम प्रेमी के विकास में सहायक नहीं होता वह प्रेम नहीं हो सकता। जिन दो व्यक्तियों का जीवन एक-दूसरे की वृद्धि और एक-दूसरे के विकास में सहायक नहीं होगा वे जीवन-साथी नहीं बन सकेंगे। अतः जीवन-साथी बनने का कोई भी कार्य विनाशोन्मुख नहीं हो सकता। वह सदा रचनात्मक होगा।

जो स्त्री-पुरुष विवाहित-जीवन को सफल बनाने या जीवन-साथी को अनुकूल बनाने के लिये विशेष धारणा-ध्यान-समाधि या व्रत-तप की साधना करते हैं वे भी भूलते हैं। इसके लिये किसी बाह्य सहायता की आवश्यकता नहीं; केवल सरल सहानुभूतिपूर्ण हृदय और स्वतंत्र विवेक की आवश्यकता है। भगवान् ने ये दोनों चीज़ें साधारण से साधारण स्त्री-पुरुष को दी हैं। व्यक्तिगत स्वार्थ और सामाजिक भय से प्रेरित होकर हम इन स्वगत गुणों को भूल जाते हैं। तब हमारे हृदय और मस्तिष्क विकृत हो जाते हैं। स्वार्थों और रूढ़ियों से बंधे हुए व्यक्ति कभी सच्चे जीवन-साथी नहीं हो सकते।

सहानुभूतिपूर्ण हृदय और स्वतन्त्र विचारशील मस्तिष्क—यही जीवन-साथी बनने के उपकरण हैं। व्यवहारिक जीवन की विषमताओं ने हमारे इन उपकरणों को कुन्द बना दिया है। विज्ञान के नये आविष्कार हमें भौतिक जगत् में बहुत ऊँचा लिये जा रहे हैं—किन्तु हमारा बौद्धिक धरातल अभी-तक बहुत नीचा है। वह अभीतक पुरानी रूढ़ियों में जकड़ा हुआ है। इसी-लिये हमारे बाह्य व आन्तरिक जगत् में बहुत विषमता पैदा हो गई है। इन विषमताओं की आंधी में हम अपनी मनुष्यता और मनुष्योचित गुणों को खो बैठे हैं।

सफल जीवन-साथी बनने के लिये हमें फिर मानवोचित गुणों का विकास करना है। हमें यह न भूलना चाहिये कि हमारे जीवन में भौतिक तत्वों की अपेक्षा आत्मिक तत्वों का अनुशासन अधिक है। आत्मिक गुण ही हमें जीवन में सफल बना सकते हैं। सफल जीवन ही सफल जीवन-साथी बन सकता है।

प्रस्तुत पुस्तक में मैंने जो विचार प्रकट किये हैं वे पुरानी रूढ़ियों के पोषण के लिये नहीं बल्कि पाठकों को स्वतन्त्र दृष्टि से विचार करने की प्रेरणा देने के लिए किये हैं। मेरी धारणा है कि आज के युग में मस्तिष्क और हृदय की स्वतन्त्रता प्राप्त किये बिना कोई भी व्यक्ति सच्चे अर्थों में जीवन-साथी नहीं बन सकता। धर्म की जंजीरें या कानून की कड़ियाँ किन्हीं दो व्यक्तियों को एक ही रस्सी में जन्मभर बांध ज़रूर सकती है, किन्तु वह बन्धन दो जीवित व्यक्तियों का आत्मिक बन्धन न होकर दो मृत देहों का बन्धन होगा। इसी तरह प्रेम का क्षणिक उन्माद भी दो शरीरों में कुछ देर के लिये वासना की चिंगारियाँ पैदा कर सकता है; वह भोग की आग में दोनों को जलाकर राख भी कर सकता है; लेकिन दो स्वतन्त्र, जीवित आत्माओं को जीवन-साथी बनाने में वह सफल नहीं हो सकता।

विवाह करने से ही कोई जीवन-साथी नहीं बन जाता। जो पति-पत्नी जीवन-साथी नहीं बनते; केवल अपनी सुविधा के लिये एक-दूसरे के शरीर व मन का उपभोग करते हैं; उनका घर घर नहीं नरक बन जाता है। घर

को स्वर्ग बनाना हो तो पति-पत्नी को परस्पर अनुरूपता प्राप्त करने का यत्न करना चाहिये ।

प्रस्तुत पुस्तक में इस अनुरूपता को सम्भव बनाने के लिये मैंने कुछ व्यवहारिक निर्देश भी दिए हैं । इन निर्देशों का आधार जीवन भर का अनुभव है । दो-चार युगल भी इन निर्देशों से अपने घर को सुखी बना सकेंगे तो मैं अपने प्रयत्न को सफल मानूंगा ।

—लेखक

विषय सूची

पहला खण्ड (पृष्ठ १०—५५)

चौथा खण्ड पृष्ठ (१५५—२३७)

पांचवां खण्ड (२४१—२६१)

जीवन साथी

खण्ड : १

"गृहस्त्वेव धर्माणां सर्वेषां मूलमुच्यते"

—महाभारत

गृहस्थाश्रम ही सब धर्मों का मूल आधार है।

साथी की आकांक्षा — पत्र १

अर्धं भार्या मनुष्यस्य, भार्या श्रेष्ठतमः सखा।
भार्या मूलं त्रिवर्गस्य भार्या मूलं तरिष्यतः॥

* * *

स्त्री पुरुष के आधे अंग के समान है, स्त्री पुरुष की सर्वोत्तम मित्र है, तीनों पुरुषार्थों का साधन है और संसार-सागर को तैरने की एकमात्र नाव है।

[यह रहस्यभरी जिज्ञासा; तुम्हारा शरीर—प्रकृति की प्रयोगशाला; अपनी नाव अपने हाथों में; साथी की आकांक्षा; एकाकी रहने का प्रण; विवाह के प्रण का अर्थ है—साथी को आजीवन निभाने का प्रण]

प्रिय कमला,

कुछ दिनों से मैं अनुभव कर रहा हूं कि तुम मुझसे कुछ पूछना चाहती हो। कोई सवाल तुम्हारे ओठों तक आकर वापिस चला जाता है। संकोचवश तुम चुप रह जाती हो। यह चुप्पी अच्छी नहीं। यह मौन तुम्हारे मन में एक गांठ डाल देता है।

जिस रहस्य को समझने के लिये तुम सवाल करना चाहती थी, वह रहस्य राहू बनकर तुम्हारी विचार-शक्ति को ग्रस लेता है।

ऐसा निरोध मानसिक स्वास्थ्य के लिये हितकर नहीं होता। प्रश्न करने में तुम्हें लज्जा अनुभव होना स्वाभाविक है। लेकिन तुम्हें इस झूठी लज्जा पर विजय पानी होगी। बच्चे के मन में जो शंकायें पैदा होतीं हैं वे उसके ओठों पर तुरन्त आ जाती है। माता-पिता का सारा समय उनके समाधान में निकल जाता है। इन प्रश्नों का उत्तर पाना उसका अधिकार है। इसी तरह युवावस्था की रहस्य-भरी शंकाओं का उत्तर पाना भी तुम्हारा अधिकार है। इन प्रश्नों के प्रकट करने में तुम्हें बहुत संकोच नहीं होना चाहिये।

इन प्रश्नों द्वारा तुम अपने को पहचानने का प्रयत्न करती हो; अपने को समझने की कोशिश करती हो। तुम्हारा जीवन ऐसा मृत पाषाण नहीं है जिसके सब पार्श्व एक बार देख लेने पर व्यक्त हो जाते हैं। वह तो बहते पानी की तरह है जिसमें प्रतिक्षण नई लहरें पैदा होती हैं, जो प्रतिपल नये किनारों को छूता है और सदा नई धाराओं में बहता रहता है।

यह परिवर्त्तनशीलता मनुष्य को हर समय नई-नई बातें सीखने को बाधित करती है। यह नवीनता जो उसके चारों ओर हर सुबह और हर शाम किसी-न-किसी रूप में प्रकट होती है, उसके मन में रहस्यभरी जिज्ञासा को भर देती है। उसे जानने का उपाय यही है कि तुम अपने हितचिन्तकों से पूछो, उनके अनुभवों से लाभ उठाओ।

तुम्हारे शरीर में परिवर्त्तन हो रहे हैं। तुम्हें उनका ज्ञान भी नहीं होता। प्रकृति स्वयं अपना निर्माण-कार्य कर रही है। उसकी

शिल्पकला का कोई अन्त नहीं है। तुम्हारा शरीर प्रकृति की प्रयोगशाला है, तुम उसमें दखल नहीं दे सकतीं। केवल उसे देख सकती हो और आश्चर्य कर सकती हो। लेकिन, याद रखो! शरीर की अपेक्षा तुम्हारा मन अधिक वेग से बदल रहा है। तुम्हारे मानसिक जगत में रोज परिवर्तन हो रहे हैं। तुम्हारी भावनायें रोज नये रंग में रंगी जा रही हैं। तुम्हारे मनोवेगों में रोज नई आँधी उठती है।

यह भी प्रकृति का आदेश है। वह बड़े रहस्यभरे उपायों से अपना कार्य सिद्ध करती है। उसके लिये तुम्हारा शरीर एक प्रयोगशाला से अधिक नहीं। प्रकृति के आदेशों से विद्रोह नहीं हो सकता। निमित्तमात्र बनकर तुम्हें उसके इशारों पर चलना पड़ता है। किन्तु ईश्वर ने तुम्हें बुद्धि दी है। तुम उन इशारों को समझने की कोशिश करती हो। अपने परिवर्त्तित मनोभावों को पढ़ने का यत्न करती हो। यह यत्न ही तुम्हें जिज्ञासु बना रहा है। इस जिज्ञासा में ही मनुष्य की मनुष्यता निहित है। मनुष्य की यह सहज प्रेरणा ही उसे पशु-जगत से ऊँचा उठाती है।

तुम कहो या न कहो, तुम्हारे मन में एक इच्छा बलवती हो उठी है। अब तुम अपनी नाव की पतवार अपने हाथों में लेना चाहती हो। माता-पिता के संरक्षण में ही रहते हुए चलना अब तुम्हें रुचिकर मालूम नहीं होता। तुम्हारा जीवन स्वतन्त्रता चाहता है। स्वतन्त्र गति और स्वतन्त्र उद्देश्य की इच्छा करने लगा है।

तुम अपनी नाव माता-पिता की नाव से अलग अपनी रुचि के अनुसार किसी भी दिशा में ले जाना चाहती हो। यह इच्छा

बड़ी स्वाभाविक है। इसे विद्रोह नहीं कहते। कुछ नासमझ माता-पिता सन्तान की इस स्वाभाविक इच्छा का दमन करने की कोशिश करते हैं। परिणाम यह होता है कि या तो उनकी सन्तान विद्रोह करके कुमार्ग में चल पड़ती है अथवा उनकी स्वतन्त्र कार्यशक्ति का इतना दमन हो जाता है कि उनके तन-मन में एक थका देनेवाली निश्चेष्टता भर जाती है।

विवेकशील माता-पिता सन्तान की इस स्वाधीनताप्रिय इच्छा का आदर करते हैं। उन्हें अपने अनुभव से सन्मार्ग पर जाने की प्रेरणा देते हैं। उनकी नाव के चप्पू उनके ही हाथों में देकर भी दूर से उनको जीवन की आँधियों से चेतावनी देते हुए ज्योति-स्तम्भ का कार्य करते रहते हैं। मुझे मालूम है, तुम्हारे माता-पिता बहुत समझदार हैं। उन्होंने तुम्हारे मार्ग में कभी रुकावटें नहीं डालीं। वे तुम्हें स्वतन्त्र रूप से अपनी नाव चलाने देने में वे सदैव तुम्हारे सहायक रहेंगे।

माता-पिता की छत्रछाया से कुछ दूर हटते ही तुमने यह अनुभव किया होगा कि जीवन की नाव को चलाने के लिये दो हाथ ही पर्याप्त नहीं हैं। संसार के महासागर में जीवन की छोटी-सी नौका एक ही नाविक के बल पर आगे नहीं बढ़ सकती। उसे चलाने के लिए साथी की जरूरत है। संसार-सागर की यह यात्रा अकेले नहीं कटती। माता-पिता का साथ छूटने के बाद तुम किसी और साथी की चाह करने लगती हो। यह चाह धीरे-धीरे तुम्हारी नस-नस में भर जाती है। दिल की हर धड़कन साथी की कामना करने लगती है। यह कामना यदि कुछ देर अतृप्त रह जाय तो एक गहरी उदासी का कुहरा तुम्हारे जीवन में छा जाता है।

साथी पाने की यह चाह भी प्रकृति के रहस्य-भरे नियमों का ही एक अंग है। युवती युवक का साथ चाहती है और युवक का मन युवती के साथ की कामना करता है। यह कामना भूख लगने की इच्छा के समान ही प्राकृतिक इच्छा है। इस इच्छा की आलोचना करना प्रकृति के नियमों में छिद्रान्वेषण करना है। ऐसा दुःस्साहस मैं नहीं करता। किन्तु प्रकृति की गति-विधि को न समझकर मनुष्य उसका दुष्प्रयोग कर लेते हैं। मैं उससे तुम्हें सावधान करना चाहता हूं।

उसका दुष्प्रयोग केवल प्राकृतिक प्रेरणाओं के अतिरंजन में ही नहीं होता, बल्कि उनके निरोध में भी होता है। हमें दोनों दिशाओं की अति से बचना चाहिये। मैं एक लड़की को जानता हूँ जिसने आजन्म ब्रह्मचारिणी रहने का प्रण किया था। ब्रह्मचर्य के अर्थ बहुत व्यापक हैं। मैं समझता हूं उन व्यापक अर्थों को बिना जाने उसने अपनी सदा अकेले रहने की इच्छा को ही ब्रह्मचारिणी रहने की इच्छा कहकर इस शब्द का प्रयोग किया था। इस शब्द के प्रयोग पर मुझे आपत्ति नहीं, किन्तु उसके प्रण पर अवश्य है।

ऐसे भीषण प्रण प्रायः वही करते हैं जिन्हें अपने मन में संयत जीवन बिताने का भरोसा नहीं होता। साथी पाने की इच्छा जब उन्हें बहुत परेशान करने लगती है और साधारण उपायों से उसके वेग का शमन नहीं होता तो वे ऐसे हठ-भरे प्रयोग शुरू कर देते हैं।

ऐसे प्रण प्रायः शरीर की चेष्टाओं का क्षणिक दमन ही कर पाते हैं; मन इसकी स्वीकृति नहीं देता। शरीर जब-जब इस प्रण की पूर्त्ति के लिये कुछ अप्राकृतिक उपायों का अवलम्बन

लेता है तब-तब मनुष्य का मन विद्रोह करने लगता है। मन और शरीर के इस संघर्ष से युवक-युवतियों को जो थकावट और शिथिलता-सी मालूम होने लग जाती है, उससे बचने का वे कोई उपाय नहीं जानते। ब्रह्मचर्य के सबसे बड़े समर्थक महात्मा गांधी जी ने ही इसका विरोध करते हुए एक स्थान पर कहा है कि—'यदि इस संयम में मन और शरीर एक साथ काम नहीं करते तो शरीर और आत्मा बुरी तरह जर्जरित हो जाते हैं।'

इसलिए साधारण व्यक्तियों को ऐसे प्रण नहीं करने चाहियें। इस निग्रह-शक्ति का उपयोग उन्हें लोकोपयोगी कार्यों में करना चाहिये। अतिशय निग्रह में भी शक्ति का दुरुपयोग होता है। हां, जिनका मन लोकहित के कामों में पूर्णतया समर्पित हो चुका है वे ऐसा व्रत ले सकते हैं। लेकिन कौमार्य अवस्था में मैं किसी भी साधारण लड़की से यह आशा नहीं रखता कि उसका मन केवल लोक-सेवा के अर्पण हो सकता है। उस अवस्था में प्रायः सभी अपनी शक्तियों और अपने आदर्शों से अपरिचित होते हैं। अतः उन्हें मध्यम मार्ग का ही आश्रय लेना चाहिये।

मध्यम मार्ग यही है कि प्रत्येक युवती अवस्था आने पर अपने साथी का चुनाव कर ले; एक बार चुनाव करके उस साथ को जीवन-भर निभाने का प्रण करे, उसे जीवन-साथी बना ले। इसी प्रण का नाम विवाह का प्रण है।

तुम्हारा हितचिन्तक

....

Let us love one another; for love is God and God is love—Bible.

* * *

प्रेम ही ईश्वर है और ईश्वर ही प्रेम है ।

[स्वतन्त्रता से भी अधिक मूल्यवान—प्रेम का बन्धन; जीवन की बिखरी हुई तारें; प्रेम के स्पर्श से जीवन में प्रेरणा आती है; प्रेम की डोर में बँधे दो पंछी; पूर्णता न मनुष्य का आदर्श है न संभव ही है]

प्रिय कमला,

जितनी आसानी से मैं विवाहित जीवन के साथी की बात लिख गया था, उतनी आसान नहीं थी वह—यह बात मुझे तुम्हारा पत्र मिलते ही याद आगई। उसमें भी शंकायें हो सकती हैं। तुमने लिखा है—

"विवाह के बाद स्त्री का जीवन गृहस्थी के कामों में इतना उलझ जाता है कि उसे अपना मानसिक विकास करने का अवसर नहीं मिलता। उसकी आज़ादी पूरी तरह छिन जाती है।

आप उसे कुछ भी मानें, उस वैवाहिक सुख में मेरी ज़रा भी दिलचस्पी नहीं है जिसके ढिंढोरे पीटकर विवाह-वेदी पर मासूम लड़कियों को बलि देदी जाती है और जिसका गुणगान हमारे धार्मिक लेखक, नेता और कवि किया करते हैं। वैवाहिक प्रेम की व्यर्थ आशा में मैं अपनी स्वतंत्रता खोने को तैयार नहीं हूं। पति नामक व्यक्ति के हाथ की कठपुतली या उसके आनन्द का साधन बनकर अपनी सत्ता खोने की अपेक्षा मैं कठोर परिश्रम द्वारा अपने साधन आप जुटाकर स्वतन्त्र रहना अधिक पसन्द करती हूँ।"

जिस आवेश में तुमने यह बात लिखी है मैं उसका कारण समझता हूँ। स्वतन्त्र जीवन के विषय में जो तुम्हारे विचार हैं मैं उनका आदर करता हूँ। प्रत्येक व्यक्ति को स्वतन्त्र जीवन बिताने का पूरा अधिकार है। पति, बच्चे, माता, पिता या कोई भी इस स्वतन्त्रता में बाधक नहीं होना चाहिये। यह स्वतन्त्रता ही मनुष्य की आत्मा है। जो इसकी उपेक्षा करता है वह आत्म-हत्या का दोषी है।

अपनी आज़ादी को बेचना अपने को बेचना है; अपने को ग़ुलाम बनाना है। ऐसी दासता मनुष्य की परवशता की सीमा है। प्राण देकर भी मनुष्य को अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा करनी चाहिए।

लेकिन, यदि कोई अपनी इच्छा से अपनी स्वतन्त्रता, अपना सब-कुछ, दूसरे के हाथ देता है तो तुम आपत्ति नहीं कर सकतीं। स्वतन्त्रता का बहुत मूल्य है, किन्तु यदि कोई उससे भी अधिक कीमती चीज़ पाने के लिये अपनी इस अनमोल निधि को दांव पर लगा देता है तो तुम क्या कहोगी? इसे बलिदान कहोगी

या समर्पण ? कुछ भी कहो, मनुष्य के जीवन में इस बलिदान का बड़ा भारी महत्व है।

जिसका साथ पाने के लिये तुम यह बलिदान करने को विह्वल हो उठो, वही तुम्हारा सच्चा जीवन-साथी होगा। एक घड़ी आयगी जब तुम्हें अपनी स्वतन्त्रता का सबसे अच्छा उपयोग किसी के चरणों में उसका समर्पण कर देना ही प्रतीत होगा। कोई फूल जब देवता के आगे अर्पित होता है तभी उसका सर्व-श्रेष्ठ उपयोग नहीं होता क्या ? अपनी शाखा पर लगे-लगे मुरझाकर एक दिन हवा के झोंके से गिरने की अपेक्षा क्या देवार्पित होना ही पुष्प-जीवन का कृतार्थ होना नहीं है ?

जिस स्वतन्त्रता की रक्षा के लिये तुमने अविवाहित रहने के पक्ष में कहा है, उसका मूल्य उस मां के सामने क्या है जो अपने को मिटाकर बच्चों को बनाती है, जिसका हर सांस उनकी शुभ चिन्ताओं में लीन हो जाता है ; या उस पत्नी से उसका मूल्य पूछो जो पति की प्रतीक्षा में प्रतिक्षण आंखें बिछाये बैठी रहती है, पति के पैरों की आहट सुनकर ही जो आनन्द-विभोर हो जाती है। पति-पत्नी की बात छोड़ो, मित्र के लिये मित्रों के बलिदान की कहानियां भी तुमने सुनी होंगी। बलिदान द्वारा अभिव्यक्ति पाने की यह इच्छा भी उतनी ही बलवती है जितनी स्वतन्त्रता द्वारा विकास पाने की इच्छा। मनुष्य में दोनों चेतनायें जागृत रहती हैं। बलिदान की यह भावना ही प्रेम की भावना है।

यह भावना असंयत स्वतन्त्रता की भावना से कहीं अधिक ऊँची है। स्वतन्त्रताप्रिय भावना मनुष्य के व्यक्तित्व को दृढ़ अवश्य बनाती है किन्तु, यदि उसे संयत न रखा जाय तो वह

उसे असामाजिक और एकांगी भी बना देती है। यह भावना प्रकृति के विरुद्ध है। सबसे अलग रहने की इच्छा अस्वाभाविक है। वह मनुष्य में एकाकीपन भर देती है। स्वतन्त्र रहकर वह अपने में एक ऐसा अभाव अनुभव करने लगता है, जिसका कोई उपचार ही उसे नहीं सूझता।

तुम्हें याद है, तुमने ही एक दिन कहा था—"मुझे अपने जीवन में एक अभाव-सा अनुभव होता है। ऐसा लगता है जैसे चारों ओर अँधेरा-ही-अँधेरा है। जैसे, जीवन की सब तारें टूट कर बिखर गईं हैं। कोई भी राग स्वर में नहीं निकलता। इस अभाव की पूर्ति कैसे करूं? जी चाहता है दुनिया-भर का ज्ञान अपने अन्दर भरलूं। मन में आता है, दिन-भर में इतना सीख जाऊँ कि सब कुछ प्रामाणिक रूप से लिख सकूं। लिखने की मेरी महत्वाकांक्षा है। लेकिन, लिखने बैठती हूँ तो भी लिखा नहीं जाता। एक विचित्र अभाव की अनुभूति मन को घेर लेती है........।"

अभाव की इस खाई को समस्त विश्व का ज्ञान-सागर भी नहीं भर सकता है किन्तु प्रेम की एक बूंद ही इसे भर सकती है। प्रेम का छोटा-सा दीपक तुम्हारे अँधेरे को उजाले में बदल सकता है। तभी तुम्हारी महत् बनने की आकांक्षा भी पूरी होगी। साहित्य हृदय की भाषा है, मस्तिष्क की नहीं। अनुभूतियों की स्याही से ही साहित्य की लेखनी लिखती है। बहुत पढ़ने से लिखना नहीं आता; बहुत देखने से भी नहीं आता। बाह्य वस्तुओं के संपर्क में आकर हृदय में जैसी धड़कन पैदा होती है वही लिखने में, चित्र में या संगीत में प्रकट होती है। हृदय का स्पन्दन ही कला की रचना करता है।

वह स्पन्दन प्रेम के स्पर्श से ही होता है। प्रेम ही है जो हमें विश्व के साथ जोड़ता है। यह भी स्वाभाविक प्रेरणा है। हमारी अतिशय स्वार्थ-साधना की प्रवृत्तियां इस स्वाभाविक संयोग में बाधायें डालती हैं। बेरोक आजादी की इच्छा और महत्वाकांक्षायें हमें अपने ही दायरे में कैद कर देती हैं। हमारे स्वार्थ हमारी आत्मा को अपनी कड़ियों में कस लेते हैं। हमारी आंखें केवल अपने बिकृत रूप को देखने लगती हैं। हमारी चेष्टायें केवल स्वाभिमुखी हो जाती हैं, जीवन में अकेलापन और विषमता आ जाती है।

इसका एक ही उपाय है। आज से तुम अपने बारे में कम सोचो और अपने सभी निकट के लोगों से खुलकर मिलो। हरेक से उसके विषय में प्रश्न पूछो; उनके सुख-दुख की बात सुनो; उनकी कठिनाइयों को पहिचानो; उनमें पूरी दिलचस्पी लो। बहुत जल्दी तुम्हें यह अनुभव हो जायगा कि प्रत्येक व्यक्ति कौतुक का भंडार होता है। हरेक के पास दिलचस्प बातों का खजाना होता है। उस खजाने को खोलने की एक ही चाबी है— वह है प्रेमपूर्ण शब्दों या प्रेमपूर्ण व्यवहार।

मत सोचो कि ऐसा करने से तुम अपनी 'आजादी' को किसी तरह खो दोगी या अपना सन्मान उनकी दृष्टि से दूर कर दोगी। ठीक इसके विपरीत होगा। लोगों की दृष्टि में तुम्हारे प्रति प्रेम और प्रशंसा के भाव जागेंगे। तुम्हारा एकाकीपन और तुम्हें सदा बेचैन रखने वाला आत्मचिन्तन कम हो जायगा। तुम्हें यथार्थ मानसिक स्वतन्त्रता का अनुभव होगा।

स्मरण रखो, तुम स्वतन्त्रता को अपने मन की चारदिवारी में कैद रखने से ही उसकी रक्षा नहीं कर सकतीं। यथार्थ स्वतन्त्रता वही है जो प्रेम में पूर्ण समर्पण के बाद भी बनी रहती है। वह ऐसा काफूर नहीं है जो दूसरों के स्पर्श से विलुप्त हो जाय।

स्वतन्त्रता तो मन की स्वतन्त्रता है। स्वतन्त्र मन से किये हुए बलिदान के बाद भी मन स्वतन्त्र रहता है। हां, बंधे दिल से जो बलिदान दिया जाय वह तुम्हारी स्वतन्त्रता का शत्रु है; उससे बचो। प्रेम और स्वतन्त्रता का स्वाभाविक वैर नहीं है। दोनों एक दूसरे के पोषक हैं। वह प्रेम प्रेम नहीं जो दूसरे की स्वतन्त्रता का अपहरण करता है। प्रेम तो दो स्वतन्त्र हृदयों के स्वेच्छा-मिलन से ही होता है। बेबस होकर किसी के कदमों में गिरना गुलामी है, प्रेम नहीं। प्रेम गिरना नहीं, उठना सिखाता है; बंधना नहीं, आज़ाद होना सिखाता है।

दो पंछी साथ-साथ प्रेम की डोर में बंधे आकाश में उड़ते हैं। प्रेम उनके पंख नहीं काटता, केवल साथ-साथ उड़ने की प्रेरणा देता है। कभी सोचा है तुमने कि इतने बड़े आकाश में दोनों पक्षी साथ-साथ किस लिए उड़ते हैं? केवल इसलिये कि आकाश का भारी सूनापन उनके पंखों को भारी न कर दे और वे थककर न गिर जायँ। एक दूसरे की ओर देखते हुए वे इतने सुनसान आकाश की दूरी को तय कर जाते हैं।

मनुष्य की जीवन-यात्रा भी अकेले नहीं कटती। उसे भी किसी का सहारा चाहिये। पुरुष को प्रेमार्त्त स्त्री और स्त्री को प्रेमार्त्त पुरुष के सहारे से बड़ा सहारा और कोई नहीं हो सकता।

मैं तुमसे एक बात पूछता हूँ। जिस स्वतन्त्रता की रक्षा के लिये तुम विवाह-बन्धन में बंधना नहीं चाहतीं, उस स्वतन्त्रता की रक्षा अन्य किस प्रकार करोगी। पूर्ण स्वतन्त्रता कहाँ है? अपने को धोखा मत दो। क्या तुम आज पूरी तरह स्वतन्त्र हो? अपने मन को टटोलो। क्या वह अपनी ही इच्छाओं

का दास नहीं है ? अपनी प्रवृत्तियों से कौन स्वतन्त्र हो सकता है ! भूख से, प्यास से, आत्माभिव्यक्ति की कामना से और प्रेम की पुकार से कौन स्वतन्त्र रहकर जी सकता है ?

मनुष्य अपूर्ण है, अपनी प्रवृत्तियों की तृप्ति चाहता है, उसके लिये प्रयत्न करता है; यही तो मनुष्य-जीवन है। इस तलाश में, अतृप्ति में और अनवरत प्रयत्न में ही मनुष्य का जीवन व्यतीत होता है। विवेक द्वारा इस प्रयत्न को सार्थक और सुविधापूर्ण बनाना ही मनुष्य के अधीन है। पूर्णता न तो मनुष्य का आदर्श है और ना ही संभव है।

तुम्हारा हितचिन्तक

....

यथा मातारमाश्रित्य सर्वे जीवन्ति जन्तवः।
एवं गार्हस्थमाश्रित्य वर्त्तन्ते इतराश्रमाः॥

* * *

जिस तरह सब प्राणी माता के आश्रय से जीते हैं उसी तरह अन्य सब आश्रम गृहस्थाश्रम के आधार पर स्थित हैं।

[भावनात्मक सुरक्षा का मूल्य भावनात्मक स्वतन्त्रता से अधिक है; आर्थिक सुरक्षा का प्रश्न; विवाह के नाम पर क्रय-विक्रय; दोष सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था का है; भोग की लपटें दोनों को खा जाती हैं; आर्थिक परवशता की समस्या अमीर घरानों की समस्या है; सुख को लक्ष्य मानकर चलें तो दो कदम चलना कठिन हो जाय]

प्रिय कमला,

विवाह के उपरान्त जिस स्वतन्त्रता के अपहरण का तुम्हें भय है उसके दो रूप हैं। भावनात्मक और आर्थिक। भावनात्मक स्वतन्त्रता पर विवाह में बन्धन लग जायगा। अपनी

सम्पूर्ण भावनायें तुम्हें अपने पति में केन्द्रित करनी होंगी। इस केन्द्रीकरण में शान्ति है या भावनाओं को इधर-उधर बिखेरने में—इसका उत्तर अपने ही दिल से पूछो।

मनुष्य स्वभाव से भावुक होता है। प्रेम सबसे महत्व की भावना है। भावनाओं की प्रेरणा-शक्ति ही मनुष्य को कार्य में प्रवृत्त करती हैं। बहते हुए पानी के प्रवाह या विद्युत की तरंगों में जो शक्ति होती है वही भावनाओं में भी होती है। इस शक्ति का उपयोग इसे केन्द्रित करके निर्माण कार्य में परिणत करने से ही होता है। इसका केन्द्रीकरण इसे उपयोगी बनाने में आवश्यक शर्त हैं। मनुष्य की भावनायें भी किसी निर्माण कार्य में युक्त होकर ही उपयोगी होती हैं।

अन्यथा, इस शक्ति का अपव्यय होता है। अपव्यय से वह बहुत जल्दी क्षीण हो जाती है। स्थान-अस्थान का विचार किये बिना प्रेम का आदान-प्रदान करना प्रेम का अपव्यय करना है। इस अपव्यय में युवक हृदय को क्षणिक आनन्द भी मिल सकता है। लेकिन, ऐसे आनन्द का जन्म गहरी थकान और भग्न हृदयों के श्मशान में ही होता है। ऐसे प्रेम की लौ क्षण-भर जलकर बुझ जाती है और बुझते हुए दीपक का धूँआँ मनुष्य के अन्तर में इतना घना भर जाता है कि वह उसकी जीवन-शक्ति को मृतप्राय कर जाता है।"

किशोरावस्था की भावनायें कच्ची होती हैं। उनमें परिपक्वता या विवेक की जागृति भी अवस्था के साथ आती है। तरुणावस्था की भावनाओं का रूप किशोरावस्था की भावनाओं से भिन्न होता है। युवावस्था या प्रौढ़ावस्था में उनका रूप और भी बदल जाता है। आयु की वृद्धि के साथ-साथ मनुष्य के मन में भावनात्मक स्वतन्त्रता के स्थान पर भावनात्मक सुरक्षा (Emotional Security) की चाह बढ़ती जाती है। स्वतन्त्रता का नाश किए

बिना, सुरक्षा देने के लिए विवाह से अधिक सुन्दर और उपयोगी संस्था का आविष्कार नहीं हो सकता था। पुरुष और स्त्री की भावनायें इस विवाह-सरोवर में आकर मिल सकती हैं। दो झरने अलग-अलग गिरिशिखरों से चलकर एक ही झील में आ मिलते हैं और यहाँ आकर प्रशांत सरोवर में बदल जाते हैं। प्रवाहों की अनवरत गति और संघर्ष की अशान्ति का इस सरोवर में अन्त हो जाता है। जीवन में स्वतन्त्रता से अधिक सुरक्षा का मूल्य है। क्योंकि सुरक्षा के वातावरण में ही निर्माण का कार्य हो सकता है। जीवन का लक्ष्य मानव-निर्माण है। इसलिए झरने के प्रवाह से सरोवर का मूल्य ज्यादा है।

विवाह भी ऐसा ही सरोवर है। मैं इसे प्रधानतया युवक भावनाओं की सुरक्षा का एक सुन्दर साधन मानता हूँ। इस आधुनिक अर्थयुग में कुछ लोग इसे स्त्री की आर्थिक सुरक्षा का भी साधन मानते हैं। उनका विचार है कि लड़की की आर्थिक कठिनाइयों का हल करने के लिए और पुरुष की भोगेच्छा-संबन्धी समस्याओं के समाधान के लिए ही विवाह की स्थापना हुई है।

मैं जानता हूँ कि तुम आर्थिक स्वतंत्रता की रक्षा किसलिए चाहती हो। इस अर्थयुग में मनुष्य के जीवन का मूल्य आर्थिक तुला पर ही तोला जा रहा है। उसकी व्यक्तिगत या सामूहिक चेष्टाओं का मूल अर्थ-सम्बन्धी समस्याओं के हल में ही खोजा जाने लगा है। इस आर्थिक प्रधानता के युग में धन-दौलत को ही मनुष्य की प्रेरणाओं का मूल स्रोत माना जाने लगा है।

यह माना जाता है कि लड़की के वयस्क होते ही बाप को लड़की के लिये उम्र-भर रोटी-कपड़े का आसरा ढूँढ़ने की चिन्ता घेर लेती है। लड़के के बाप को यह चिन्ता नहीं होती। उसके लिए तो स्वतन्त्र आजीविका के सब रास्ते खुले ही हैं। लड़कियों के

लिए ये रास्ते बन्द हैं। इसलिए उसे किसी लड़के के सहारे ही जीना होगा, रोटी-कपड़े का साधन जुटाना होगा। वह सहारा तभी मिलता है जब वह अपने को लड़के के अर्पण कर देती है। अर्पण की इस सामाजिक विधि का नाम ही विवाह रखा गया है। यह मान्यता केवल कुछ विकृत मस्तिष्क के लोगों की है। सभी मनुष्य इसे स्वीकार नहीं करते।

इस सम्बन्ध में मुझे तुम्हारे ये शब्द याद आ रहे हैं, "सच तो यह है कि लड़की खुद को बेचकर जीने का सहारा पाती है। मामूली बेच-खरीद में और विवाह के नाम पर हुए इस सौदे में अंतर इतना ही है कि यह सौदा जीवन-भर के लिए होता है। लड़की को जीवन-भर गुलामी की जंजीरें पहननी पड़ती हैं। जब तक पुरुष की कृपा बनी रहे वह उसे 'घर की रानी' कहता है, लेकिन समय के बदलते ही वह 'घर की लौंडी' बन जातीहै।"

मैं जानता हूँ कि विवाह के नाम पर यह बेच-खरीद आज हमारे समाज में बेरोक चल रही है। खुलेआम लड़कियों के बदले रुपया वसूल किया जा रहा है या लड़की देते समय रुपयों की थैलियाँ भेंट की जाती हैं। विवाह आर्थिक व्यवस्था का ही रूप रह गया है। विवाह ही क्या समाज की प्रत्येक संस्था का आधार ही आर्थिक बन गया है। आर्थिक सुविधा ही इसके मूल में रह गई है। किन्तु मैं पूछता हूँ कि इसमें क्या लड़कियों का भी दोष नहीं है। क्या वह स्वयं इसकी ज़िम्मेदारी से सर्वथा मुक्त हैं?

मैं उन अनपढ़ लड़कियों की बात नहीं कहता जो गठरी में लपेटकर किसी भी पुरुष की पीठ पर लाद दी जाती हैं। मैं उन की बात कहता हूँ जो पढ़ी-लिखी हैं, जो न केवल इस सौदे को

चुपचाप देखती हैं बल्कि इसमें सक्रिय भाग लेती हैं। साथी का चुनाव करते हुए वह स्वयं किसी ग़रीब के घर की रानी बनने के स्थान पर अमीर घर की लौंडी बनना कबूल करती हैं। उनकी दृष्टि में रुपये का मूल्य प्रेम से अधिक होता है।

पढ़-लिखकर ऐसी लड़कियाँ बहुत व्यावहारिक बन जाती हैं। कोमल भावनाओं को और आदर्शप्रियता को ये लड़कियाँ मूर्खता समझने लगती हैं, प्रेम को निरा लड़कपन। वे पुरुष की भोग-सम्बन्धी कमजोरियों को खूब जानती हैं इसलिये उनका पूरा लाभ उठाती हैं। यह ठीक है कि कामान्ध पुरुष उनके यौवन का भोग करना चाहता है किन्तु क्या यह सच नहीं कि अर्थान्ध लड़कियाँ भी पुरुष के धन का भोग करना चाहती हैं।

दोष हमारी शिक्षा का और सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था का है। आधुनिक शिक्षा हमारे मन में धन की अमिट लालसा को जगा देती है। यह लालसा पुरुष में भी जागती है और स्त्री में भी। दोनों ही इसके शिकार होते हैं। सारा मनुष्य समाज इसका शिकार बना हुआ है। परिणाम यह होता है भूखे भेड़ियों की तरह हम लोग रुपये की तलाश में दिन-रात घूमते हैं। कठिनाई यह है कि दुनिया में धन की राशि परिमित है। सबको उस एक खाते में से ही अपना भाग लेना है। इसलिए जब एक के पास अधिक धन आता है तो वह दूसरे के भाग का होता है। एक की अमीरी दूसरे की गरीबी पर ही पनप सकती है। संघर्ष शुरू हो जाता है। हम एक-दूसरे का गला काटने लगते हैं।

पुरुष इस संग्राम में स्त्रियों की अपेक्षा आगे बढ़ जाते हैं। प्रकृति ने पुरुष के शरीर को अधिक कठोर बनाया है। स्त्रियों के

शरीर में कोमलता का अंश अधिक हैं। वे पीछे रह जाती हैं। इसका प्रतिकार वे अपनी कोमलता के बल पर धन कमाने के उपाय करके करती हैं। पतित पुरुष अपने पुरुषार्थ से जो पाप करता है पतिता स्त्रियाँ वही अपने सौंदर्य से करना चाहती हैं। दोष दोनों का है। पाप के मार्ग दोनों के हैं।

किसी एक को हम क्या रोकें, सारा जमाना ही इस लूट-खसोट में भाग ले रहा है। जिसके पास जो हथियार है उसका वह उपयोग कर रहा है।

यह सच है कि पहल पुरुष ही करता है। पहले वह विलासी बनता है लेकिन धन-लोलुप स्त्रियां उस विलासिता की आग को शान्त करने के स्थान पर उसमें घी की आहुति डालती हैं। पुरुष समझता है मैं स्त्री का भोग कर रहा हूं। स्त्री समझती है मैं पुरुष के धन का भोग कर रही हूँ। बहुत जल्दी भोग की लपटें दोनों की आत्मा को राख कर देती हैं।

जो विवाह इस क्रय-विक्रय के आधार पर खड़े होते हैं उनमें विष ही विष भरा होता है। वे कभी सुख का कारण नहीं बन सकते। आर्थिक परवशता की नींव पर खड़ी हुई विवाह की इमारत बहुत जल्दी खंडरात में बदल जाती है। वहां कभी प्रेम की रोशनी नहीं जलती। उसका अन्धकार कभी दूर नहीं होता। उसके आंगन में कभी फूल नहीं खिलते, कांटों के झाड़ ही उगते हैं जो पति-पत्नी दोनों को लहूलुहान कर देते हैं।

स्त्री को आर्थिक स्वतन्त्रता की रक्षा के लिये क्या करना चाहिये इस प्रश्न पर मैं आगे लिखूंगा, यहां इतना कहना ही पर्याप्त है कि स्वतन्त्रता के अपहरण के भय से विवाह न करने की दलील सच्ची नहीं है। तुम्हारे में आत्मबल होगा, धन की

लालसा ने तुम्हारे मन को बीमार नहीं किया होगा तो कोई पुरुष तुमसे तुम्हारी आज़ादी को नहीं छीन सकता।

अमीर घरानों की बात छोड़ दो; ग़रीबों के घर में क्या विवाहिता स्त्रियां पुरुष के साथ-साथ काम नहीं करतीं? जो स्त्री मेहनत करके घर के खर्चों में पुरुष का हाथ बटाती है वह पुरुष की दृष्टि में अपना आदर और भी अधिक बढ़ा लेती है। उसे ऐसा करने से कोई नहीं रोकता। मध्यम वर्ग के घरों में भी पढ़ी-लिखी स्त्रियां धनोपार्जन में पुरुष की सहायक बनती जा रही है। जिन घरों में घर का सारा काम पत्नी को ही करना पड़ता है, सास व ननदों का सहारा नहीं है, वहां पत्नी को इतना समय ही नहीं मिलता। इसलिये आर्थिक परवशता की समस्या केवल अमीर घरानों की समस्या है। वहां पुरुष भी विलासी है और स्त्रियां भी। वहां भी स्त्री चाहे तो विलासिता छोड़कर कोई भी काम कर सकती है।

मेरी धारणा तो यह है कि आर्थिक प्रश्न को साथी के चुनाव से दूर ही रखना चाहिये। इससे अधिक महत्त्वपूर्ण अनेक ऐसे प्रश्न हैं जिन पर अधिक ध्यान देना चाहिये।

विवाह की 'जंजीरों' से बचने के पक्ष में तुमने एक बात और कही थी। वह यह कि "जिधर सुनो विवाहित व्यक्तियों के रोने-कराहने की आवाज़ आ रही है। आज तक एक भी जोड़ा पूर्ण रूप से सुखी नहीं देखा। जिसे देखा उसे इस आग की लपटों में झुलसते ही देखा। आंखों से देखकर तो भट्टी में नहीं कूदा जाता। जब आंखें बन्द थीं, मां-बाप उसमें अपने

हाथों धकेल देते तो बात और थी। अब, स्वयं उस आग में कूदने का साहस नहीं होता।"

कुछ अंशों में तुम्हारी बात सच है। विवाहित जीवन फूलों की सेज नहीं, कांटों का मार्ग है। लेकिन यह बात तो जीवन की सम्पूर्ण यात्रा पर ही लागू होती है। जीवन का मार्ग बड़ा कठिन मार्ग है। इसमें आनन्द-भोग कम और कर्तव्य-कार्य ही अधिक हैं। उन कर्तव्यों को हंसते-हंसते निभाने वाला ही सुखी कहलाता है।

वयस्क व्यक्तियों की दुनियां में विवाहितों की संख्या अधिक है इसलिये रोने वालों में भी उनकी संख्या ही अधिक रहेगी। अविवाहित कम हैं, लेकिन वे भी रोते ही देखे गये हैं। गणना की जाय तो शायद रोने वाले अविवाहितों की आनुपातिक संख्या ही अधिक होगी। पूर्ण सुखी यहां कौन है? सुख को आदर्श मानकर ही जीवन की यात्रा पूरी नहीं हो सकती। सुख को लक्ष्य मानकर चलें तो जीवन में दो क़दम चलना कठिन हो जाय। जीवन का दूसरा नाम कर्तव्य-पालन है। विवाह का आदर्श भी सुख से अधीन कर्त्तव्य-पालन है। कर्त्तव्य-पालन के मार्ग में जो सुख मिल जाय उसी से हमें सन्तुष्ट रहना चाहिये। वह सुख तलाश करने से नहीं मिलता, स्वयं ही हवा के झोंके की तरह वह आता है और चला जाता है।

तुम्हारा हितचिन्तक

....

साथी का चुनाव

पत्र ४

यथोरव समं वित्तं ययोरेव समंश्रुतम्।
तयोर्विवाहः सख्यं च नतु पुष्टविपुष्टयोः ॥

जिनका धन और ज्ञान समान हो उन्हींका स्नेह व विवाह सम्बन्ध सुखकर होता है। समर्थ और असमर्थ का विवाह नहीं होना चाहिये।

* *

If thou wouldst marry wisely marry thy equal.

समानस्थिति के पति-पत्नी का विवाह ही आदर्श चुनाव है।

[चुनाव का आधार—प्रेम; प्रथम दृष्टि के आकर्षण का महत्त्व; प्रथम आकर्षण को प्रेम बनाने के लिए बुद्धि की स्वीकृति आवश्यक; प्रेम में धोखा क्यों ? "दिल मिलने के बाद विवाह" इसमें सार नहीं; तुम्हें अभी प्रेम का अर्थ नहीं आता; विवाह के बाद प्रेम अधिक रंगीन होता है; पाश्चात्य प्रेम की सीमा से हमारे प्रेम का प्रारम्भ]

प्रिय कमला,

हाँ—जीवन की इस कठिन यात्रा को हम अपना अनुकूल साथी पाकर ही आसान बना सकते हैं। साथी तो संसार में

बहुत मिलते हैं। लेकिन वे प्रायः अपने स्वार्थों के साथी होते हैं। वे किसी विशेष अभिप्राय से ही हमारे साथ कुछ देर चलते हैं। अभिप्राय पूरा होने के बाद वे अपने मार्ग पर चले जाते हैं। ऐसे क्षणिक साथियों से हम एकाकी चलना अधिक पसन्द करने लगते हैं। क्योंकि वे साथी कुछ लेने के अभिप्राय से आते हैं। उनका साथ केवल कुछ देर की शारीरिक निकटता होती है। हमारी आत्मा उनके संपर्क में नहीं आती। उसके द्वार बन्द ही रहते हैं।

सच्चा साथी वह है जिसके लिये हमारी आत्मा के द्वार खुल जायँ। जो कुछ लेने के लिये हमारे साथ न चले बल्कि केवल साथ चलने के लिये ही चले। जिसके साथ चलने का मूल्य न चुकाना पड़े। जिसके कदमों के साथ हमारे कदम खुद ही मिल जायँ, मिलाने की कोशिश न करनी पड़े।

ऐसा साथी ही सच्चा साथी होगा। उसी से तुम्हारा प्रेम होगा। विवाह का आधार प्रेम ही होना चाहिये। प्रेम विवाह ही आदर्श विवाह है।

यहाँ प्रेम से मेरा अभिप्राय प्रथम दृष्टि के प्रेम से नहीं है। इसमें सन्देह नहीं कि प्रेम के विकास में प्रथम दृष्टि का महत्त्व भी बड़ा है किन्तु प्रथम दृष्टि के प्रेम में प्रायः वासना का अंश अधिक रहता है। यह सच है कि प्रेम का बीज-वपन प्रथम दर्शन में हो जाता है। मनुष्य का मन नेत्रों में रहता है। किसी के दिल को हम उसकी आँखों में पढ़ सकते हैं। आँखों का काम बाहिर की वस्तु को देखना ही नहीं, अन्तर के जगत को दिखाना भी है। वह दिल के दर्पण का काम करती है। चार आँखें होने पर दो

प्रेमियों को उतना ही रोमांच होता है जितना एक दूसरे के स्पर्श में।

किन्तु प्रथम दृष्टि के आकर्षण को ही विवाह का आधार नहीं बनाना चाहिये। इस आकर्षण में धोखा हो सकता है। संभव है वह केवल दो वासना भरे दिलों का आकर्षण हो। प्रेम इस आकर्षण से बहुत ऊँची चीज है। इन दो अक्षरों का रहस्य समझना कठिन काम है। इस शब्द की उचित व्याख्या करना मेरी शक्ति से बाहर है किन्तु अगले कुछ पृष्ठों में मैं जो कुछ लिखूँगा शायद उससे तुम्हें प्रेम को समझने में कुछ सहायता मिले।

प्रेम की गणना साधारणतया मनुष्य की अन्य सहज भावनाओं में की जाती है। किन्तु मुझे इसमें सन्देह है। प्रायः अन्य सभी भावनाओं की अनुभूति दुखपूर्ण या उद्दीपक होती है। वे मन को सन्तुष्टि और शान्ति नहीं दे पातीं। केवल एक स्फूर्त्ति-सी जगा देना उनका काम होता है। उन्हें हम मन के आवेग कह सकते हैं। प्रेम मन को शान्ति और तुष्टि देता है। उसमें आवेग के साथ तृप्ति भी होती है।

वह प्रेम मन, शरीर और बुद्धि तीनों से किया जाता है। केवल एक के माध्यम से यह काम नहीं होता। हाँ, उसकी प्रथम अभिव्यक्ति पहले शरीर द्वारा ही होती है। आँखें देखती हैं, कान जो सुनते हैं संगीत बन जाता है, फूल की सी सुवास देह के रोम-रोम में भर जाती है, स्पर्श भी अपनी अव्यक्त भाषा में प्रेम का सन्देश लाता है—इसी प्रकार प्रेम का जन्म होता है। प्रेम का प्रथम सन्देशहर शरीर ही होता है।

इससे यह न समझना कि चमकते चेहरे ही देखने वाले को

मुग्ध करते हैं। अथवा स्वस्थ या सुडौल शरीर में ही सम्मोहन शक्ति होती है। सुन्दरता का माप प्रायः वस्तु में नहीं, देखने वाले की नजर से होता है। सौन्दर्य की परिभाषा आज तक नहीं हो सकी। जिन आँखों को जैसा रूप पसन्द आता है उनके लिये वही सुन्दर हो जाता है। पसन्द की कसौटियाँ भी बदलती रहती हैं। और समय के साथ पसन्द भी बदलती रहती है। इस प्रथम दर्शन की पसन्द को ही हम प्रेम का आधार नहीं मान सकते। यहाँ कह सकते हैं कि यह आकर्षण प्रेम की पहली सीढ़ी है।

इस प्रथम प्रेम को यदि बुद्धि की स्वीकृति मिल जाती है तो वह अधिक गहरा हो जाता है। शारीरिक आकर्षण की डोर बहुत जल्दी टूट जाती है यदि हमारा मन भी उस डोरी में न बंध जाय और हमारा मस्तिष्क भी उस प्रेम की गवाही न दे। कुछ लोग कह सकते हैं कि प्रेम जैसी भावनाप्रधान चीज़ में तर्क का कोई दखल नहीं है। मैं यह नहीं मानता। प्रेम में भी तर्क का बड़ा प्रभाव है। हृदय की गहराई तक पहुंचने के लिये प्रेम को तर्क के बन्द दरवाजों को खोलने की प्रेरणा करनी पड़ती है। बुद्धि के द्वार बन्द रहेंगे तो प्रेम पहली सीढ़ी से ही वापिस लौट जायगा।

सौभाग्य से यदि बुद्धि द्वारा स्वीकृति पाकर मन के द्वार खुल गये तो प्रेम का विकास शुरू हो जाता है। मन की चाहना शरीर की चाहना से भी अधिक उत्कट और स्थायी होती है। मन का मिलन होने के बाद शारीरिक निकटता की अपेक्षा ही नहीं रहती। वह व्यक्ति जिससे प्रेम है, आँखों के सामने हो या न हो, मन में उसके लिये प्रेम की भावना कम

नहीं होती। किसी की याद ही जब मन को सुखी करने लगे तो समझना चाहिये कि मन भी उससे प्रेम करने लगा है। मन का मिलन वियोग नहीं जानता। उस समय शारीरिक वियोग भी प्रेम की मात्रा को कम नहीं करता। शारीरिक संयोग का महत्त्व बहुत कम हो जाता है।

यदि ऐसा न हो सके, कोई आकर्षण प्रेम का रूप न पकड़ सके तो समझना चाहिये कि वह केवल मित्रता या स्नेह तक ही सीमित है। उसे प्रेम कहना भूल होगी।

साधारणतया लोग प्रेम की इस पूर्णता को नहीं जानते, इसीलिये अपने अधूरे प्रेम के संबन्धों में असफल होकर प्रेम को कोसते हैं। लेकिन वास्तव में उन्हें इस असफलता के लिये अपने अधूरे तथा-कथित प्रेम को और अपने को ही दोषी मानना चाहिये।

प्रेम की इस परिभाषा को अच्छी तरह समझ लेने के बाद हर व्यक्ति अपने प्रेम-सम्बन्धों को ठीक दृष्टिकोण से देख सकता है। एक व्यक्ति उन या कुछ इनेगिने व्यक्तियों से ही प्रेम कर सकता है जो उसके शरीर और आत्मा में समा जाय। शेष व्यक्तियों से वह केवल मित्रता का सम्बन्ध रख सकता है। उसे जान-पहचान भी कह सकते है। यह कहकर वह उन्हें धोखा नहीं दे सकता कि वह उनसे प्रेम करता है।

हर युवक और युवती अपनी तरुणावस्था में प्रेम संबन्धी मामलों में अपने को धोखा देते हैं। वे प्रथम दर्शन के आकर्षण को या दो-चार मीठी बातों के विनिमय को प्रेम का रूप देकर अपने दिल में एक विलक्षण-सी पीड़ा लिये फिरते हैं। वे अपने मन की ही कामनाओं को नया-नया रंग देकर ऐसे अनोखे

स्वप्न लिया करते हैं जिनका कोई आधार ही नहीं होता। और दूसरे से ऐसी आशायें रखना शुरू कर देते हैं जिनकी दूसरे को स्वप्न में भी कल्पना नहीं होती।

उदाहरण के लिये तुम्हें एक लड़की की बात बताता हूँ। उसने अपनी एक समस्या मेरे सामने रखते हुए कहा कि—

"एक व्यक्ति मेरे पिताजी के आफिस में काम करता है। वह उम्र में मुझसे बहुत बड़ा है। मुझे पूरा विश्वास है कि वह मुझे चाहता है। मुझसे प्रेम करता है। लेकिन किसी कारण से अपना प्रेम प्रकट नहीं करता। मैं भी उसे चाहती हूं। किन्तु, मैं भी शर्म से या इस डर से भी कि कहीं उसके मन से मेरा आदर कम न हो जाय, अपने दिल की बात ज़ाहिर नहीं करती। मैं चाहती हूं कि इस मामले में पहला क़दम वही उठाये। क्या आप बता सकते हैं कि यह किस तरह संभव हो सकता है। मेहरबानी करके मुझे यह सलाह न दीजियेगा कि मैं उसे भूल जाऊँ, क्यों कि यह मेरे लिये कभी संभव नहीं होगा।"

मैंने उसे जो उत्तर दिया वह यह था, "ऐसा मालूम होता है कि तुम्हारे प्रेम में प्रेम कम और कामना अधिक है। तुम्हारा प्रेम कामनामय प्रेम है। जब कोई किसी को अपने पूरे मन और मस्तिष्क से प्रेम करता है तो उस प्रेम में कामना शेष नहीं रहती। वह प्रेम दूसरे को अपना बनाने की इच्छा नहीं रखता क्योंकि वह स्वयं दूसरे का बन कर रह जाता है। तुमसे अधिक वह व्यक्ति समझदार दिखाई देता है। वह तुम्हें प्रेम करता है मगर वह इसे व्यक्त नहीं करता क्योंकि वह जानता है कि यह व्यर्थ और अनावश्यक है। उसका ऐसा प्रेम है जो सदा स्थिर रहेगा। तुम्हें उसपर विश्वास करना चाहिये। जो प्रेम बहुत शीघ्र प्रदर्शन की कामना करने लगता है यह प्रायः अस्थिर होता है। प्रदर्शन की कामना तुम्हारी ओर से है। इससे ज़ाहिर होता है कि तुमने

उसके मेलजोल को अतिरंजित रूप दे दिया है। तुम ऐसी कल्पनायें करने लगी हो जिनका उसे ध्यान भी नहीं है। कामनापूर्ण प्रेम को मन में स्थान देकर तुम व्यर्थ ही अपना सुख नष्ट कर रही हो। प्रकृति का नियम है कि हम उतना ही प्रेम किसी को दे सकते हैं जितना हमें इसके बदले में दूसरी ओर से मिलता है इससे अधिक चाहने की कामना रखना व्यर्थ होता है।

"मेरी सलाह है कि जिस प्रकार तुम्हारा मित्र तुमसे एकान्त प्रेम करता है उसी प्रकार तुम भी एकान्त प्रेम करती रहो। वह इस बात को अच्छी तरह जानता होगा कि वह इससे आगे नहीं बढ़ सकता इसलिए वह आगे नहीं बढ़ता। जब तुम्हारे प्रेम का दृष्टिकोण बदल जायगा तब तुम अपने को स्वतन्त्र और सुखी अनुभव करोगी। तुम्हारा प्रेम गहरा और स्थायी हो जायगा।"

यह सब मैंने तुम्हें इसलिये कहा कि मेरा दृढ़ मत है कि विवाह का आधार प्रेम ही होना चाहिये। जीवन-साथी वहीं बनता है जहाँ प्रेम हो। किन्तु यहाँ मैं तुम्हें एक बहुत ही क्रियात्मक निर्देश देना चाहता हूँ। अरब में एक उक्ति है—"It is better for a woman to marry a man who loves her than a man she loves."—अच्छा यह है कि तुम उस पुरुष से विवाह करो जो तुमसे प्रेम करता है ना कि उससे जिसे तुम चाहती हो।

यह आवश्यक नहीं कि विवाह से पूर्व का प्रेम ही वैवाहिक प्रेम का आधार बन सकता है। यह भी अनिवार्य नहीं कि चोरी-चोरी आँखों का चार होना ही दो दिलों में प्रेम का बीज बोता है और जब तक आँखें चार न हों, तब तक विवाह नहीं करना चाहिये।

मुझे ऐसे बहुत से युवक मिले हैं जो यह कहते हैं कि जब-तक किसी लड़की से प्रेम नहीं हो जायगा वे विवाह नहीं करेंगे।

दूसरों की बात छोड़ो, तुमने ही एक दिन मुझसे कहा था कि अब तो तभी विवाह करूँगी जब किसी से दिल मिल जायगा।

मैंने पूछा था कि समझ लो, संयोगवश तुम्हारा दिल किसी से मिला ही नहीं, या मिलकर अलग हो गया तब ?

तुमने कहा था, तब विवाह ही नहीं करूँगी !

दिल मिलने के बाद ही विवाह करने की शपथ से आजकल की लड़कियों का एक बहुत बड़ा भाग दुखी जीवन बिता रहा है। यह अवस्था ऐसी होती है कि दिल चुटकियों में मिलते और उस से भी जल्दी जुदा होते हैं। कभी झुकी हुई पलकों में दिल झूल जाता है, कभी हवा में उड़ते आंचल के छोर पर लटक जाता है। दो मीठी बातें हुईं, हंसने-हंसाने का खेल हुआ या चलते-फिरते दो कदम साथ चल लिये कि दिलों का सौदा हो गया। जीवन भर साथ रहने के सपने शुरु हो गये। दो दिन बाद पट-परिवर्तन हुआ। आँखों का काजल धुल गया। बड़ी-बड़ी आँखों में सूखापन दिखाई देने लगा। आंचल की सलवटें उतर गईं। रंग फीका पड़ गया। बातों में वह चुलबुलापन नहीं रहा। अदाओं में गुदगुदी नहीं रही। बस, इतने में ही सब सपने टूट गये। सितार की तारें बेसुरा राग अलापने लगीं। तारों में विरह के शोले नज़र आने लगे। जिससे प्रेम किया था उससे घृणा करने लगे। जीवन में विष ही बिष भर गया। जवानी के सुनहरे दिन पर निराशा के घने काले बादलों की छाया पड़ गई।

इस तरह भग्नहृदय होकर हज़ारों पढ़े-लिखे जवान लड़के और डिग्रीप्राप्त लड़कियां अपनी जवानी को ख़ाक में मिला रही हैं और यह प्रण किये बैठी हैं कि जहाँ प्रेम होगा वहीं विवाह करेंगे।

तुम्हें और उन सबको मेरी यही सलाह है कि वे आज से अपने पर भरोसा करना छोड़ दें। तुम्हें अभी प्रेम का अर्थ ही नहीं आता। अभी तम्हारी भावना परिपक्व नहीं हुई है। उनमें निरा कच्चापन है। ऐसी कच्ची भावनाओं पर भरोसा न करके अपने माता-पिता पर भरोसा करो। तुम्हारी चिन्ता उनकी चिन्ता का विषय है। तुम्हें प्रेम करना नहीं आता। तुममें लड़कपन बहुत है। विवाह के बाद तुम्हें प्रेम करना आ जायगा। प्रेम कोई बिजली नहीं है जो एक बार चमककर बादलों में ओझल हो जाय। यह तो वह दीपक है जिसे बड़ी लगन से जलाया जाता है, हृदय के स्नेह से उसे भरा जाता है और आत्मा के प्रकाश से उसकी लौ को प्रदीप्त किया जाता है। संसार के झोंके उसे बुझाने को आते हैं तो बड़ी साधनाओं से उसकी रक्षा की जाती है।

इतने बलिदानों से ही प्रेम की भावना दृढ़ होती है। बलिदान ही प्रेम का पोषण करते हैं। जीवन-स्थायी प्रेम जीवन भर का बलिदान चाहता है। यह वह बेल नहीं है जिसे एक बार बोकर जन्म भर फलफूल लेते रहो। इसे तो प्रतिक्षण अपने रक्त से सींचना होगा और बड़े कष्टों से उसकी रक्षा करनी होगी।

मेरा तो विश्वास है कि विवाह के बाद का रोमांस, प्रेम-परिचय, विवाह से पूर्व के परिचय से भी अधिक रंगीन होता है, रोमांचकारी होता है। विवाह से पूर्व का मिलन धीरे-धीरे प्रेम का रंग पकड़ता है विवाह के बाद का मिलन पहले ही पूरे रंग में, पूरी चमक-दमक से सामने आता है। ठीक वैसे ही जैसे नाटक के रंगमंच पर कोई सुन्दर दृश्य परदे के खुलने के साथ ही प्रकट हो जाता हो। वैवाहिक मिलन की यह आकस्मिक

झलक उस झलक से कहीं अधिक रोमांचजनक है जो एक धुंधले कुहरे के पीछे से धीरे-धीरे प्रकाश में आती हुई मूर्तियों के साक्षात प्रगट होने में होता है।

जो उत्कंठा एक अजनबी से मिलने में होती है वह जानी-पहचानी सूरतों के सामने आने में नहीं होती। विवाह की पहली सुहागरात की भेंट अविवाहितों के प्रथम परिचय की भेंट से अधिक रंगीन होती है। अविवाहितों का प्रथम परिचय तो बहुत ही फीका और कोरा व्यावहारिक भी हो सकता है। उसके बाद भी दोनों की आँखें एक-दूसरे के मुख्य अवगुण को परखने में लगी रहती हैं। दोनों को एक-दूसरे की तराजू पर तुलना पड़ता है। कठिन परीक्षाओं में से गुज़रना पड़ता है। सन्देह और आशंकाओं के झोंके उनके कोमल मन को झकझोर देते हैं। भावनाओं के उतार-चढ़ाव में डूबते-बहते उनकी आत्मा शान्ति और तृप्ति के सच्चे उल्लास से वंचित रह जाती है।

विवाह-वेदी पर जाने से एक क्षण पूर्व तक भी उनका मन डाँवाडोल ही रहता है। एक-दूसरे के समीप रहकर और निरीक्षण-परीक्षण करते-करते वे एक-दूसरे के गुण को जानने की अपेक्षा दोषों को अधिक पहिचानने लगते हैं। तुम पूछोगी कि फिर वे विवाह क्यों कर लेते हैं? एक-दूसरे के दोषों को थोड़ा-बहुत पहिचानते हुए भी वे विवाह की डोर में बंधना स्वीकार क्यों कर लेते हैं?

इसका कारण यह है कि उस समय वे जवानी के जोश में केवल शारीरिक आकर्षण से खिंचे हुए चले आते हैं। शील-स्वभाव या चरित्र के गुण-दोष की परीक्षा करने की आवश्यकता ही नहीं समझते। या समझकर भी दोषों को आँखों से ओझल किये रहते हैं। अपने को धोखा दे देते हैं।

लेकिन यह धोखा जल्दी ही सामने आ जाता है। मिलन की

पहली घड़ियों का नशा जब उतरने लगता है तो विवेक की आँखें गुणों की अपेक्षा दोषों को अधिक स्पष्टता से देखना शुरू कर देती हैं। थोड़े दिन बाद दोनों को एक-दूसरे में दोष-ही-दोष दीखने शुरू हो जाते हैं। ✓

दूसरी ओर विवाह के बाद के प्रेम में एक-दूसरे के गुण-दोष की परीक्षा का अवसर ही नहीं आता। इस मिलन को ईश्वरीय संयोग माना जाता है, मनुष्य-कृत संयोग नहीं। विधाता की रचना में गुण-दोष का विवेचन नहीं किया जाता। जिसे ईश्वर ने जो दिया है उस पर सन्तोष किया जाता है, उसे अपनाया जाता है। मन की यह भावना हृदय में अमिट प्रेम का बीज बो देती है। जिस तरह माता-पिता अपनी सन्तान के दोषों से भी प्रेम करते हैं, भाई अपने सहोदर भाई से मोह करता है उसी तरह पति और पत्नी एक-दूसरे को अपना लेते हैं। वह सम्बन्ध पहले ही अटूट मान लिया जाता है। पति-पत्नी एक-दूसरे के अंग बनकर ही संयुक्त होते हैं।

अपनत्व की भावना आते ही दोनों का मन एक हो जाता है। मन में द्वित्व या भिन्नता की भावना ही नहीं रहती। दो शरीरों में एक ही आत्मा निवास करने लगती है।

विवाह का यह आदर्श हमारे देश का पुरातन आदर्श है। यह पाश्चात्य आदर्श से बहुत ऊँचा है। यदि मैं यह कहूँ कि पाश्चात्य प्रेम की जो चरमसीमा है वह हमारे वैवाहिक प्रेम की प्रारम्भिक सीमा है तो अत्युक्ति न होगी।

विवाह : प्राकृत सम्बन्ध पत्र ५

Some pray to marry the man they love,
My prayer will somewhat vary;
I humbly pray to heaven above,
That I love the man I marry.

कुछ लोग भगवान् से प्रार्थना करते हैं कि वे जिसे प्रेम करते हैं, उससे विवाह कर सकें। मेरी प्रार्थना उनसे भिन्न है। मैं तो यह मांगती हूँ कि जिस पुरुष से मेरा विवाह हो उससे प्रेम कर सकूं।

[क्या जीवन भर अकेली रहोगी? महत्करण का प्रयोग निरापद नहीं; नारी का उत्कर्ष निर्माण में है; सपनों का साथी किसे मिला है? अपने जीवन को पराये धन के बट्टों में मत तोलो; कोई भी युवक स्वभाव से दुश्चरित्र नहीं होता; आदर्श चुनाव; समरुचि होने की शर्त्त अनिवार्य नहीं; विवाह—प्राकृत सम्बन्ध]

प्रिय कमला,

"जब किसी से दिल मिलेगा तभी विवाह करूँगी"—इस

आग्रह को मन से दूर कर दो। विवाह हृदय के मिलने-बिछुड़ने की आंख-मिचौनी का-सा खेल नहीं है।

एक बात पूछता हूं तुमसे। यदि दुर्भाग्य से देर तक तुम्हारी तुला पर कोई युवक पूरा नहीं उतरा तो क्या तुम जीवन भर अकेली रहोगी? अथवा तुम जिस युवक के प्रति आकृष्ट होगी वही तुम्हें पत्नीरूप से स्वीकार न करे तो क्या तुम अकेली ही रहोगी?

मेरा विचार है कि अकेले रहने का अर्थ तुम अच्छी तरह समझती होगी। ईश्वर ने किसी भी स्त्री को या पुरुष को अकेले रहने योग्य नहीं बनाया। अकेले रहने की समर्थता का दावा करना इस दावे के समान है कि मैं जन्म भर भूखा-प्यासा रहकर जीवित रह सकता हूँ।

कुछ दिन के उपवास करने या अल्पाहार की प्रतिज्ञा तो कोई भी साधारण आदमी भी कर सकता है किन्तु सर्वथा निराहार रहकर जीवित रहने का दम्भ बड़ा से बड़ा संयमी भी नहीं कर सकता। आहार जिस तरह मनुष्य के शरीर और मन का भोजन है उसी तरह स्त्री-पुरुष का परस्पर सहवास भी उसका भोजन है। इन स्वाभाविक प्रवृत्तियों का दमन तो हो सकता है लेकिन इनका नाश नहीं हो सकता।

•

हां—याद आ गया—तुमने एक बार कहा था कि इन प्रवृत्तियों का महत्करण (Sublimation) हो सकता है। अर्थात् इनका किसी महत्कार्य में इतना संयुक्त हो जाना संभव हो सकता है कि छोटे कार्यों से उनको सर्वथा विमुख किया जा सके। इस संभावना में मुझे अविश्वास नहीं है। इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण है जहां इस तरह के महत्करण हुए हैं।

किन्तु, इस प्रयोग को आरम्भ करने से पूर्व मनुष्य को अपने सामर्थ्य की परीक्षा कर लेनी चाहिये। असाधारण व्यक्तियों को ही ये प्रयोग शोभा देते हैं।

मुझे डर है—कहीं ऐसा न हो कि कभी छोटे से काम को ही महान मानकर तुम यह प्रयोग शुरू कर दो। मुझे कई लड़के-लड़कियों के सम्बन्ध में मालूम है कि उन्होंने अपनी महत्त्वाकांक्षा की पूर्त्ति के लिये अविवाहित रहने का प्रण किया था। लेकिन अविवाहित रहते हुए संयमित जीवन बिताने में ही उनको इतनी मेहनत करनी पड़ गई कि वे अपनी महत्त्वाकांक्षा के लिये योग्य प्रयत्न ही नहीं कर पाये।

मेरे विचार में तो सच्चा जीवन-साथी पाना भी तुम्हारी महत्त्वाकांक्षा की पूर्त्ति में सहायक ही होगा। जीवन-साथी वही है जो जीवन की हर दिशा में सहायक हो। सहायक बनने के निमित्त ही वह तुम्हारे जीवन में प्रवेश करेगा। तुम्हारे सर्वतोमुखी विकास के लिये वह बड़ी-से-बड़ी कुर्बानी करने को तैयार होगा। तभी तो तुम्हारी आत्मा के द्वार उसके लिये खुलेंगे। जो संपर्क परस्पर विकास में सहायक नहीं होता वह सच्चा नहीं होता। वह जीवन-साथी ही क्या जो तुम्हारे जीवन के मनोरथों को पूरा करने में सहायक न हो।

•

लेकिन, याद रखो, अपने मनोरथों की रचना करते हुए तुम्हें स्वार्थ को भूलकर कल्याण की भावनाओं का चिन्तन करना होगा। अपने उत्कर्ष की चिन्ता करने का तुम्हें पूरा अधिकार है—किन्तु वह उत्कर्ष दूसरे के मूल्य पर नहीं होना चाहिये। उसका आधार लोक-कल्याण ही होना आवश्यक है। कोई भी सच्चा उत्कर्ष ऐसा नहीं है जिसमें व्यक्ति के साथ लोकमात्र का

उत्कर्ष न होता हो और जो नया निर्माण न करता हो।

मनुष्य जीवन की सार्थकता ही नवीन निर्माण में है। निर्माण किसी भी दिशा में हो, हितकर होता है। निर्माण का प्रकार हर मनुष्य अपनी योग्यतानुसार करता है। जिस कार्य के वह अधिक उपयुक्त होता है वही उसका निजी कार्य बन जाता है।

स्त्री के जीवन का सबसे उत्कृष्ट और विशिष्ट कार्य सन्तान की उत्पत्ति और उनका पोषण करना है। मेरा यह अभिप्राय नहीं कि वह इसी कार्य के योग्य है। मैं मानता हूँ कि वह भी पुरुष के समान अन्य कार्यों में ऊंची-से-ऊंची पदवी तक पहुंच सकती है। किन्तु, सन्तान को जन्म देने और उसके पालन-पोषण में स्त्री को एकाधिकारिता है; इस काम को वही कर सकती है। हर व्यक्ति की महत्त्वाकांक्षाएँ अपनी विशिष्ट शक्तियों के अनुसार ही होनी चाहिये। इसलिए स्त्री की महत्त्वाकांक्षा भी इसी दशा में प्रवृत्त हो तो अच्छा है।

योग्य सन्तान की माता बनने का गौरव दुनिया का सबसे बड़ा गौरव है। जिस देश की लड़कियां इस गौरव को पाने के लिये उत्सुक होंगी, वह देश अवश्य विजयी होगा। मैं जानता हूँ—अवस्था आने पर प्रत्येक लड़की के मन में मां बनने की इच्छा जागती है। सुन्दर बच्चे को देखकर हर लड़की आनन्द-विभोर हो जाती है। उसका मन ममता से भर जाता है। तुम भी इसमें अपवाद नहीं हो। अपवाद बनने की कोशिश मत करो। मन की स्वाभाविक वृत्तियों का दमन एक हद तक ही करना चाहिये। उन वृत्तियों का संयम किया जा सकता है-- उन्हें मिटाया नहीं जा सकता।

जीवन की स्वाभाविक तरंगों के साथ बहना और उसके स्वर में स्वर मिलाते हुए चलना ही सुखकर होता है। यह तभी संभव है यदि तुम किसी साथी के हाथ का सहारा लेकर

चलोगी। जीवन का संगीत अकेले नहीं गाया जाता। जीवन के कर्त्तव्य साक्षी की अपेक्षा रखते हैं।

यदि तुम्हें अपने सपनों का साथी नहीं मिला—सपनों का साथी शायद ही किसी को मिलता हो—तो, विश्वास करो, वास्तविकता का साथी भी तुम्हारे सपनों को पूरा कर सकता है। तुम्हारे माता-पिता ने तुम्हारे लिये जिस साथी को चुना है उसे स्वीकार करलो। तुम्हारे माता-पिता तुमसे अधिक अनुभवी हैं। उन्होंने जीवन देखा है। वे वैवाहिक जीवन के साथी का महत्त्व खूब समझते हैं। यह साथ ऐसा है जिसमें दो दिन की मौज-बहार की अपेक्षा लम्बे समय के उत्तरदायित्व निभाने की योग्यता का प्रश्न अधिक महत्त्व का है। हँसने-खेलने वाले सभी साथी अच्छे पति नहीं बन सकते। बल्कि प्राय: अच्छे पति वही बनते देखे गये हैं जो हँसी-खुशी के अवसरों पर भी कुछ गंभीर मुद्रा धारण किये रहते हैं।

"अच्छा साथी किस तरह मिल सकता है ?" यह प्रश्न कई बार मुझसे किया जा चुका है। मैं समझता हूँ कि अच्छा साथी ढूंढ़ने से नहीं मिलता। माता-पिता भी अच्छे साथी की तलाश नहीं कर सकते। वे भी केवल अमीर, ग़रीब या किसी विशेष प्रकार के साथी की ही तलाश कर सकते हैं। माता-पिता प्राय: लड़की के लिये अमीर घराने के और सदाचारी लड़के की ही तलाश किया करते हैं। हर अमीर और सदाचारी युवक हर लड़की का अनुकूल जीवन-साथी बन सकता है—यही उनकी धारणा रहती है। मैं इस मत से सहमत नहीं हूँ। पहले तो अमीरी-ग़रीबी आपेक्षिक शब्द हैं। फिर, लड़के के घराने की

अपनी शारीरिक ज़रूरतों को पूरी कर सके। जीवन-साथी की मानसिक भूख को अमीरी से कोई तृप्ति नहीं मिलती। होता इससे विपरीत ही है। धनी घरानों में धन का महत्त्व साथी के अस्तित्व को बहुत क्षुद्र बना देता है। जहां धन होता है वहां साथी भी बहुत होते हैं, सेवक भी होते हैं और खुशामदी भी। उनकी सदा भीड़-सी लगी रहा करती है। उन सेवकों, मुसाहबों की भीड़-भाड़ में जीवन-साथी का स्थान बहुत उपेक्षित-सा हो जाता है। मैं कई धनी घरानों के युवकों को जानता हूँ। उनकी पत्नियां बड़ी सुन्दर और बहुत शालीनतासम्पन्न हैं। कोई साधारण व्यक्ति उनसे बात करके भी अपने को धन्य मान सकता है। किन्तु, इन धन-ग्रस्त युवकों को उनकी परवाह ही नहीं होती। उनका समय शहर की क्लबों में ताश खेलने और नृत्य-घरों की नर्तकियों के साथ बीतता है। ऐसे घरों में पत्नियों को जीवन का अर्थ केवल रोटी-कपड़े से है—आश्रय तो मिल जाता है, लेकिन जीवन का साथी नहीं मिलता। मैंने अनेक बार इन पत्नियों के मुख से सुना है कि "इससे तो ग़रीबी की ज़िन्दगी हज़ार बार अच्छी थी।" ग़रीबी में साथी की कद्र होती है। दोनों को एक दूसरे की चाह होती है। कदम-कदम पर एक दूसरे के सहारे की ज़रूरत महसूस होती रहती है। हाथ में हाथ लिये दोनों को अपने कठिन मार्ग पर आगे बढ़ना पड़ता है। पत्नी अपने हाथ से रोटी बनाकर न खिलाये तो पति भूखा रह जाय और पति अपने हाथ से कमाकर न लाय तो घर का दीपक न जले—इतनी लाचारी दोनों को एक दूसरे के प्राणों का अवलम्ब बना देती है। पति के प्राण पत्नी में और पत्नी के प्राण पति में रहते हैं। इतनी बड़ी अँधेरी दुनियां में उनका दूसरा कोई आधार नहीं होता। जहां यह बेबसी होती है वहां ही प्रेम का स्रोत बहता है।

इसीलिए मुझे उन लड़कियों के मां-बाप की मूर्खता पर दुख होता है जो अपनी भोली लड़कियों के लिये अपने से बहुत अमीर घरानों के द्वार खटखटाते हैं। जो लड़कियाँ अपने लिये साथी का चुनाव करते हुए उसके धन को तराजू में तोलती हैं वो दूसरे पलड़े में अपने सुखों का मोल लगाती हैं। अपने जीवन के सुख को पराये धन के बट्टों में तोलना मूर्खता की पराकाष्ठा है। पिछले ज़माने में वीर-पूजा होती थी। आजकल धन-पूजा चल पड़ी है। धन की चमक से चकाचौंध होकर उसमें कूद पड़ना आग की भट्टी में कूदना है। धन की अधिकता और जीवन-साथी में स्वाभाविक वैर है।

'सदाचार' नाम से जिन विशेष गुणों की परख की जाती है वह परख भी सच्ची नहीं होती। मैं समझता हूँ कि २०-२५ वर्ष की उम्र तक कोई भी युवक ऐसा दुराचारी नहीं हो सकता कि वह किसी लड़की के जीवन-साथी बनने के अयोग्य हो जाय। भूलें सभी से होती हैं। किसी से कम, किसी से अधिक। उन भूलों के आधार पर किसी को दुराचारी मान लेना उन सब भूलों से बड़ी भूल है। होता यह है कि आचार-सम्बन्धी बातों में लोग बड़े चौकन्ने रहते हैं। ऐसी एकाध घटना को उपन्यास का रूप दे देना उनके बाँये हाथ का खेल होता है। इसमें उन्हें बड़ी दिलचस्पी होती है। तिल का ताड़ बन जाता है। निर्दोष बातें भी साज़िशों का रङ्ग पकड़ लेती हैं। कुछ लोग जलन से और कुछ लोग संकीर्णतावश किसीके हर काम का अर्थ उल्टा लगाकर उसे दुराचारी बना देते हैं। मेरा विश्वास है कि प्रायः सभी युवक स्वस्थ विचारों वाले होते हैं। स्वभाव से ही मनुष्य सदाचारी होता है। उसे शुद्ध हवा में साँस लेना और ऊँचे विचारों में उड़ना अच्छा लगता है। वह वीरता और बलिदान के कार्यों से प्रेम करता है। वह साहसी, उत्साही और सहिष्णु होता है।

आदर्शों के लिए उसके मन में पूजा के भाव होते हैं। ये गुण उसकी आत्मा में बीज रूप से सदा रहते हैं। कहीं बाहिर से उनके बीज लाकर मनुष्य-हृदय में खेती नहीं करनी पड़ती। बाद में जीवन की अवस्थायें, परिस्थितियाँ मनुष्य-प्रकृति में विकार ले आती हैं। मनुष्य दुराचारी हो जाता है।

फिर भी मेरा विश्वास है कि युवावस्था तक ये विकार कभी भी मनुष्य के स्वभाव का अंग नहीं बनते। इसलिए किसी भी युवक को दुराचारी मानकर 'परित्यक्त' घोषित नहीं किया जा सकता। आजकल तो कुछ स्वतन्त्र और उदार विचार वालों को भी दुराचारी कह दिया जाता है। आज भी ऐसे लोग हैं जो लड़कियों को शिक्षा देना चरित्र के लिए घातक समझते हैं। जिनकी दृष्टि में परदे की प्रथा अच्छी है। मुँह ढककर चलने में ही सतीत्व की रक्षा मानते हैं। ये लोग जब किसी लड़के-लड़की को हँसता-बोलता देख लें तो उन्हें चारों ओर पाप की छाया-मूर्त्तियाँ दिखाई देने लग जाती हैं। मनुष्य-चरित्र पर इतना अविश्वास करना स्वस्थमना व्यक्ति के लिए स्वाभाविक नहीं है। लेकिन परिस्थितियों ने या परम्परागत संस्कारों नें जिन लोगों को इतना संशयशील बना दिया है उनका दृष्टिकोण युक्तियों से बदला नहीं जा सकता। हमें उनको भला-बुरा नहीं कहना चाहिए लेकिन उनके संकीर्ण मार्ग का अन्ध-अनुसरण करने से भी इन्कार कर देना चाहिए।

जिस युग में हम रहते हैं वह बुद्धि-युग है। चार आदमी जिसे दुराचारी कहते हैं वह संभव है ऐसा ही हो, लेकिन यह भी संभव है कि यह आरोप सर्वथा निराधार हो। सब संभा-

वनाओं की परीक्षा करके ही हमें ऐसी किंवदन्तियों पर विश्वास करना उचित है।

यदि उसमें कभी चरित्र-संबन्धी निर्बलता आई है—तो भी वह जीवन-साथी बनने के अयोग्य नहीं हो जाता। मनुष्य की शक्तियाँ जब अनुकूल मार्ग में जाने की सुविधायें नहीं पातीं तो प्रतिकूल मार्ग में चल पड़ती हैं। मस्तिष्क जब निर्माण कार्य में प्रवृत्त नहीं होता तो विनाश कार्य में प्रवृत्त हो जाता है। ऐसी प्रतिकूलताओं में चलते हुए ही मनुष्य दुश्चरित्र होता है। उसके आदर्शों का स्वप्न जब संसार की कठोरताओं से भङ्ग हो जाता है तो उसका मन विक्षिप्त हो जाता है। टूटे हुए दिल का कोई साथ नहीं देता। सच्चा साथ न पाकर वह झूठे दिल-बहलावों में डूब जाता है। निराश मन ही दुश्चरित्र होता है। निराशा के बादल दूर होने पर उसका चरित्र फिर चमक सकता है। सच्चे साथी के पाते ही उसका हृदय फिर ऊँचे आदर्शों को अपना सकता है।

कई बार विवाह में अच्छा जीवन-साथी मिलते ही युवक का जीवन बदल जाता है। सूर्य की किरणों को छूकर जिस तरह फूलों की कलियाँ खिल उठती हैं उसी तरह मनुष्य की अध-खिली शक्तियाँ विकसित हो उठती हैं। यह विकास ही सच्चे साथ का सूचक है। ऐसी अवस्था में तुम्हें कितना गौरव अनुभव होगा—कितना आत्म-परितोष मिलेगा? —एक डूबते जीवन को सहारा देकर तुमने उसको सदा के लिए उपकृत कर दिया। वह कभी इस उपकार को नहीं भूलेगा। तुम्हारी कुर्बानी उसे सदा तुम्हारे प्रति प्रेमाकुल बनाये रखेगी। कुर्बानी की नींव पर खड़ा

हुआ प्रेम का महल कभी डगमग नहीं होता। प्रेम का रास्ता ही कुर्बानी का रास्ता है।

मुझे मालूम है तुम्हारे में कुर्बानी की योग्यता है। इसके लिये जिस चरित्र-बल की आवश्यकता है वह तुम्हारे में भरपूर है। साहस और सहिष्णुता की भी तुममें कमी नहीं। दुनिया से अलग रास्ता बनाने में तुम्हें डरना नहीं चाहिए। दुनिया तो केवल सरलतम मार्ग चलना जानती है। लेकिन, दुनिया कठिन रास्तों पर चलने वालों की सराहना करना भी जानती है। कठिनाइयों को गले लगाने वाले ही यशस्वी बनते हैं। वही प्रेम और पूजा के भागी बनते हैं।

साथी का चुनाव करना है तो ऐसे साथी का चुनाव करो जिसे तुम्हारा साथ उन्नति और उत्कर्ष के नये मार्ग पर डाल दे। तुम वह पारस मणि बन जाओ जो पाषाण को स्वर्ण बना देती है। स्त्रियों में पुरुषों की अपेक्षा अधिक आत्म-बल होता है। पुरुष स्वभाव से लोभी और बहिर्मुखी होता है। स्त्रियाँ सन्तोषमयी और अन्तर्मुखी होती हैं। किसी को सच्चरित्र बना देना तो उनके लिए बहुत साधारण बात है।

•

समान शील-स्वभाव के युगल ही सुखी दाम्पत्य जीवन निभा सकते हैं—इस विश्वास पर भी मुझे बहुत संदेह है। मैं किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व में दूसरे से इतनी समानताओं की कल्पना नहीं करता कि वे दोनों उन समानताओं के बल पर ही जीवन में समता रख सकें। ना ही मैं किन्हीं दो व्यक्तियों में इतनी विभिन्नता देखता हूँ कि वही दोनों की विषमता का कारण बनी रहे। दोनों का शील-स्वभाव कितना ही बेमेल हो, मनुष्य होने की ईश्वरकृत समता में तो दोनों ही बंधे होते हैं।

दोनों में एक-सी आधारभूत प्रवृत्तियाँ होती हैं। परस्पर आकर्षण भी दोनों में सहज होता है। इतनी समानताओं के होते हुए छोटी-छोटी विषमताओं को तूल देना तभी होता है जब किसी स्वार्थवश दोनों एक साथ नहीं रहना चाहते। या उनमें से एक दूसरे को ग़ुलाम बनाकर रखना चाहता है। उनमें प्रेम के स्थान पर घृणा ने स्थान ले लिया है।

मेरी धारणा यह है कि घृणा पहले आती है और विषमताओं की अनुभूति बाद में चुभने लगती है। विषमताओं के ही कारण कभी घृणा नहीं पैदा होती। विषमताओं की विद्यमानता में भी प्रेम रह सकता है, समता रह सकती है। प्रेम में विषमताओं से भी प्रेम हो जाता है। विषमता तो दूर, दुर्गुणों से भी प्रेम हो जाता है।

यह भी सच नहीं है कि समान रुचि के स्त्री-पुरुष में ही प्रेम होता है। स्त्री-पुरुष का प्रेम व्यावहारिक व व्यवसायिक रुचि की अपेक्षा नहीं करता। उन सबसे बड़ी रुचि दोनों के पारस्परिक मिलन की रुचि है—जो सबमें एक-सी रहती है। शेष रुचियाँ पीछे रह जाती हैं।

यदि रुचि की समानता साथी के चुनाव में सहायक हो तो एक ही काम में लगे स्त्री-पुरुषों का ही मेल हुआ करे। इसके विपरीत हम यह देखते हैं कि समव्यवसायी स्त्री-पुरुष आपस में शादी नहीं करते। इसमें भी कारण है। पुरुष अपने घर में आकर अपने व्यवसाय की कशमकश को भूल जाना चाहता है। घर में उसकी चर्चा भी बुरी लगती है। उसके लिये घर का स्वर्ग दुनिया के घात-प्रत्याघातों से भिन्न कल्पना लोक में बसा होता है। स्त्री को भी वह संसार के स्पर्श से दूर पवित्र देवी समझकर पूजता है। संसारी समानतायें या विषमतायें उसके प्रेम-जगत् को स्पर्श नहीं करतीं।

अतः साथी के चुनाव में मैं समरुचि होने की शर्त्त को विशेष महत्त्व नहीं देता। सच तो यह है कि इस चुनाव में किसी भी शर्त्त को बहुत महत्त्व नहीं देना चाहिये। साधारणतया स्वस्थ शरीर और स्वस्थ मन वाले कोई भी स्त्री-पुरुष पति-पत्नी सम्बन्ध को सफलता के साथ निभा सकते हैं।

विवाहित-जीवन की सफलता साथी के चुनाव पर नहीं बल्कि विवाह के उपरान्त दोनों की मनःस्थिति पर ही निर्भर है। वैसे भी, चुनाव द्वारा निर्धारित सम्बन्धों की अपेक्षा प्राकृत सम्बन्ध अधिक स्थायी और गहरे रहते हैं। पिता-पुत्र, भाई-बहन, भाई-भाई के सम्बन्ध चुनाव से नहीं बनते। प्रेम सम्बन्धों में चुनाव का कहीं भी स्थान नहीं है। मैं और आप एक ही मातृभूमि की सन्तान हैं; हमारा यह सम्बन्ध भी चुनाव का परिणाम नहीं है। मनुष्य जाति में भी जन्म लेना मेरी इच्छा से नहीं हुआ।

सृष्टि का कोई भी महत्त्वपूर्ण कार्य मनुष्य के चुनाव से नहीं हो रहा। संसार के सभी महत्त्वशाली सम्बन्ध प्राकृत सम्बन्ध हैं। क्यों न पति-पत्नी के संबन्ध को भी प्राकृत सम्बन्ध मानलिया जाय और इसमें यथासंभव कम हस्तक्षेप किया जाय? क्यों न इस संबन्ध को भी वही ऊँचा दर्जा दिया जाय जो अन्य प्राकृत संबन्धों को प्राप्त है। चुनाव का अधिकार लेकर हम उसका महत्त्व कम करते हैं। छोटी-छोटी समानताओं की तराज़ू पर तोलकर हम उसका मूल्य कम करते है—उसे सस्ता बनाते हैं।

विवाह के प्राकृत संबन्ध मानने का यह अर्थ नहीं है कि उसे सुखकर बनाने के लिए यत्नसाध्य कौशल से काम न लिया जाय। प्राकृत संबन्ध भी सर्वत्र सुखदायी नहीं होते। पिता पुत्र

भी स्वार्थवश एक-दूसरे के वैरी हो जाते हैं। इतिहास के कई पृष्ठ पिता-पुत्र के खून से रंगे हुए हैं। भाई-भाई का वैर तो जग-विख्यात है ही। इन संबन्धों को सुखकर रखने के लिये भी ईमानदारी और व्यावहारिक कुशलता की आवश्यकता है।

विवाह को सफल बनाने के लिये भी प्रयत्न करना पड़ता है, कौशल से काम लेना पड़ता है। उसकी चर्चा तब करूँगा जब तुम्हारे विवाह की बात पक्की हो जायगी।

इस पत्र में तो मैं तुम्हें यही बतलाना चाहता था कि जीवन-साथी के बिना जीवन की यात्रा नहीं कटती। मनचाहे साथी की प्रतीक्षा में जवानी की अनमोल घड़ियाँ नष्ट मत करो। वही 'मन का मीत' बन जायगा जिसे तुम मन में जगह दोगी। उसका चुनाव माता-पिता पर छोड़ दो। माता-पिता पर छोड़ना भी भाग्य पर छोड़ना है। इन सम्बन्धों में भाग्य का फैसला ही अन्तिम होता है। विश्व के सभी महत्त्वशाली सम्बन्ध भाग्य से बनते हैं। अन्य प्राकृत सम्बन्धों की तरह विवाह को भी प्राकृत सम्बन्ध मान लो।

जब तुम्हारे विवाह की बात निश्चित हो जायगी तो अगला पत्र लिखूंगा।

तुम्हारा हितचिन्तक

....

जीवन साथी

खण्ड : २

"अपनी सारी शक्ति के साथ मैं कहता हूँ कि पति-पत्नि के बीच भी कामजन्य आकर्षण अस्वाभाविक है। विवाह का उद्देश्य पतिपत्नि के हृदय को हीन भावनाओं से शुद्ध करके उन्हें भगवान् के निकट ले जाना है।"

—गांधी जी
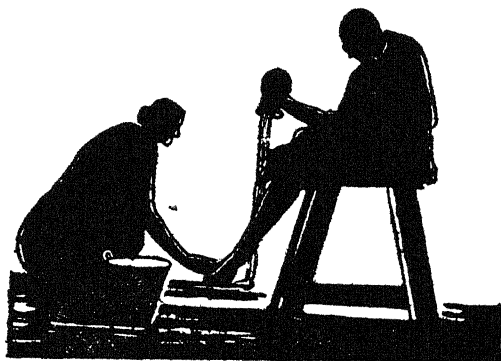
विवाह की मानसिक तैयारी पत्र ६

पारिवारिक प्रेम सांसारिक जीवन के समस्त कल्याणमय मार्गों का प्रारम्भ और संस्कृति के विकास का स्रोत है।

* * *

[देवता का प्रतिष्ठापन ; दहेज में निरुपयोगी वस्तुओं का संग्रह ; चमकीले साज-सामान निरंकुश भोग की लालसा को भड़काते हैं; मिलन की पहली रात ; विवाह के बाद कुछ सप्ताहों का कार्यक्रम; मधुमास का उपयोग]

प्रिय कमला,

तुम्हारा वह पत्र मिला जिसमें तुमने लिखा है "मेरे भाग्य का निर्णय हो गया, सगाई हो गई।" विवाह को भाग्य-निर्णय कहना अनुचित नहीं। सम्पूर्ण जीवन की सफलता इस पर निर्भर रहती है। इस निर्णय में मुख्य भाग तुम्हारे माता-पिता ने लिया है, यह जानकर भी सन्तोष हुआ। किन्तु मुझे निश्चय है कि अन्तिम निर्णय से पूर्व उन्होंने तुम्हारी सहमति प्राप्त कर ली होगी। भावी पति की एक झलक तो तुमने देखी ही होगी और उनकी शिक्षा-दीक्षा की भी पूछताछ कर ली होगी।

एक झलक में रूपरंग की परीक्षा तो नहीं हो सकती—फिर भी यह रसम बुरी नहीं। कुछ चेहरों की बनावट पहली नजर में ही इतनी अरुचिकर लगती है कि दूसरी बार देखने को मन नहीं चाहता। प्रथम दृष्टि में प्रीति हो सकती है तो अप्रीति भी हो सकती है। इस अप्रीति को प्रेम में बदलना असंभव कार्य है। जीवन भर इस संघर्ष को जारी रखना कभी भी सुखकर नहीं हो सकता। यह कुछ क्षण की पहली मुलाकात कम-से-कम ऐसी दुर्घटनाओं से अवश्य पति-पत्नी की रक्षा कर सकती है। इस भेंट के बाद दोनों अपने मन की बात माता-पिता से कह सकते हैं और माता-पिता अपनी सन्तान की इच्छा के विरुद्ध नहीं चलते।

यह भेंट प्रायः मौन ही होती है और होती भी माता-पिता की निगरानी में कुछ क्षण की है। इसलिये इसमें एक दूसरे को जानने-पहचानने का तो अवसर होता ही नहीं है। जब तक लड़के-लड़कियों के स्वतन्त्र चुनाव की परिपाटी नहीं चलती—तब तक के लिये यह मध्यम मार्ग भी उचित ही है। इस पहली भेंट के कारण भी कई युवक-युवतियों का जीवन जन्मभर के नारकीय संघर्ष से बच गया है।

सगाई होने का मतलब यह है कि आज से तुमने किसी को अपने सुख-दुख का एकमात्र साथी मान लिया है; जीवनभर के लिए मान लिया है। एक मूर्त्ति को अपने हृदय-मन्दिर में प्रतिस्थापित कर लिया है। उसके लिये तुम्हारी आत्मा के द्वार खुल गये हैं। शरीर और मन से तुमने उसके आगे आत्मार्पण कर दिया है।

यही आत्मार्पण प्रेम की निशानी है। प्रेम जीवन का अर्पण चाहता है। जीवन का अर्पण जीवन से भी अधिक प्रिय वस्तु के लिये किया जाता है। तुम्हारा साथी आज से तुम्हें अपने जीवन से भी अधिक प्रिय हो गया है।

ऐसी ही दिव्य भावनाएँ तुम्हारे साथी के मन को तरंगित कर रही हैं। उसकी आत्मा तुम्हारे प्रेम के प्रकाश से जगमगा उठी है। उसके मन की तारें तुम्हारे संगीत से झनझना उठी हैं। उसके रोम-रोम में तुम्हारे सौन्दर्य का सुवास भर गया है। वह तुम्हें पाकर आज अपने को दुनिया का बादशाह मानने लगा है।

एक दिन पहले यहाँ सब सुनसान था—एक दिन बाद दो दिलों की दुनिया में ऐसा संगीत भर गया कि दुनिया के सब वाद्य फीके पड़ गये। जिसके साथ रहने की कल्पना से शरीर और मन इतने पुलकित होते हों, उसके संग रहना कितना सुखद होगा!

इस स्वप्न में ही सारा जीवन बीत जाय तो मनुष्य जीवन का माधुर्य देवताओं की ईर्ष्या का विषय बन जाय। पति-पत्नी का आजीवन साथ यदि प्रारम्भिक काल की मधुरताओं से भरपूर रहे तो सारे त्रिलोक का राज्य भी उसके सामने फीका पड़ जाय।

इस स्वप्न को टूटने न देना। इसकी मिठास में कमी न होने पाये। तुमने अभी यह स्वप्न ही देखा है। तुम्हारा स्वप्न बना रहे—यही ईश्वर से प्रार्थना है। लेकिन प्रार्थनाओं के बल पर गृहस्थ की नाव नहीं चलती। लहरों की थपेड़ों से बचते हुए गृहस्थ की महानदी को पार करना बड़े कौशल और पुरुषार्थ का काम है, पग-पग पर कठिनाइयाँ आती हैं। ठोकरें खानी पड़ती हैं। मैं चाहता हूँ कि तुम्हारी कठिनाइयाँ कुछ आसान

हो जायं। इसीलिये ये पंक्तियाँ लिख रहा हूँ। मेरा अनुभव और अध्ययन तुम्हारे मार्ग को कुछ भी सरल बना सकेगा तो मैं अपना प्रयत्न सफल मानूंगा।

अब वाग्दान के बाद विवाह की तैयारियाँ शुरू हो गई होंगी। तुम्हारे विवाह का दहेज बन रहा होगा। तुम्हारे माता-पिता तुम्हारे लिये मोतियों और हीरों के आभूषण बना रहे होंगे। सोने-चांदी की तारों से सजी साड़ियाँ खरीद रहे होंगे। सिंगारदान और इत्रदान के नये-नये नमूनों के पार्सलों से घर भर गया होगा। माता-पिता के मोह की इन निशानियों का अर्थ यह कभी न समझना कि विवाह की माला रत्नजटित आभूषणों से पिरोई जाती है या विवाह का उपवन शीशियों में बन्द इत्रों से सुवासित होता है।

कच्ची उम्र की लड़कियां इस नये साजबाज को देखकर यह समझने लगती हैं कि आज से उनकी आत्मा पर माता-पिता ने जिस कठोर संयम का अंकुश रखा हुआ था वह उठ गया है। आज से उन्हें अपने मन पर लगाम रखने की आवश्यकता का अन्त हो गया है। विवाह की स्वीकृति मिलते ही उन्हें भोग को प्रोत्साहन देने वाले विचारों को मन में लाने या उनका चिन्तन करने की छूट मिल गई है। माता-पिता द्वारा भोग प्रधान वस्तुओं का घर में प्रतिदिन संग्रह होना उनके मन में यही प्रभाव डालता है। इसमें माता-पिता का ही दोष है—किन्तु उसका कुफल भोगना पड़ता है सन्तान को।

तुम्हारे मन में साहस हो तो तुम अपने माता-पिता को धन के इस अपव्यय से बचा सकती हो। दहेज की प्रथा का प्रारम्भ इसलिये हुआ था कि कन्या को माता-पिता की संपत्ति का उत्तरा-

धिकारी होने का अधिकार प्राप्त नहीं था। दहेज के रूप में ही उसे दातव्य धन दे दिया जाता था। लड़कियों को भी उत्तराधिकार मिलने पर इस प्रथा की अनिवार्यता नहीं रहेगी। हर्ष की बात है कि लड़कियों को भी जायदाद में भागीदार होने का कानून शीघ्र ही बनने वाला है। उससे पूर्व भी, मेरा विश्वास है कि समझदार लड़कियों को अपने माता-पिता से आग्रह करके इसके वर्त्तमान रूप को बदलवा लेना चाहिये। वह दहेज व्यर्थ के कीमती पत्थरों या कपड़ों के रूप में न देकर यदि धन के रूप में ही दिया जाय तो उसका सदुपयोग हो सकता है।

मेरा अनुभव है कि दहेज की चीजों का अधिकांश केवल दिखावट और शोभा के ही प्रयोजन में नष्ट हो जाता है। चाँदी के बर्तन और जरी की साड़ियां विवाह की निशानी बन कर या तो जन्म भर तालों में बन्द रहती हैं अथवा अगली शादियों में हस्तान्तरित होती रहती हैं। मैंने कई घर देखे हैं जिनकी रसोई में लोहे की एक पतीली भी टूटी-फूटी ही मिलेगी लेकिन दो मजबूत तालों वाले सन्दूक में चांदी की प्यालियां दरजन दो दरजन पड़ी होंगी। पत्नी के शरीर पर बदरंग फटी-उधड़ी-सी साड़ी होगी लेकिन सन्दूक में सोने के सितारों से सजी कीमती साड़ियों के जोड़े चैन से पड़े होंगे। उन वस्त्रों की चमक-दमक ही पति-पत्नि की वर्त्तमान स्थिति के अनुकूल नहीं होती। इसलिये वे उन्हें नहीं पहिनते। उन दमकती साड़ियों की अपेक्षा मामूली धोतियां उनके लिये अधिक उपयोगी होतीं।

मैं यह नहीं कहता कि विवाह की तैयारियों में चमकीले आभूषणों और कपड़ों का स्थान ही न हो, किन्तु मेरी राय में इन्हें इतना महत्त्व देना लड़की की मानसिक अवस्था में एक

विकार-सा पैदा कर देता है। लड़कियां आभूषणों को निरा आभूषण ही नहीं, शरीर की सजावट का सामान समझती हैं। इत्र और सुवासित पाउडरों के संग्रह का काम भी उनकी धारणा को पुष्ट करता है। उनका यह विश्वास दृढ़ हो जाता है कि उन्हें न केवल अपने मनोविकारों को निरंकुश बनाने की छूट मिल गई है बल्कि उनकी दबी आग को, भोग की प्रवृत्तियों को प्रज्वलित करने का उत्साह भी दिया जा रहा है। उन्हें यह प्रतीति होने लगती है कि आज से उनका शरीर किसी के भोग के लिये तैयार किया जायगा।

इसका इशारा पाते ही उनके रोम-रोम में आकांक्षा के अगणित दीप जल उठते हैं। विवाह-विधि संपन्न होते ही वह उस आकांक्षा की चरम सीमा तक पहुँचने की इन्तजार करने लगती हैं।

यह आकांक्षा पहले केवल अपने जीवन-साथी के निकट आने की होती है। जिसे उसने अपने मन का देवता बनाया है उसके निकट सशरीर रहने की उत्सुकता ही उसे पुलकित कर देती है।

लेकिन, कामान्ध पुरुष उसकी इस उत्सुकता का दुरुपयोग करते हैं। प्रथम मिलन में ही वे अपने कामज्वर को शान्त कर लेते हैं। लड़कियां कभी इस प्रसंग के लिये शरीर व मन से तैयार नहीं होतीं।

काम-विज्ञान की जिन पुस्तकों में यह लिखा है कि प्रथम रात्रि में ही स्त्री-पुरुष का सहवास हो जाना चाहिये—उन पुस्तकों को फाड़ कर फैंक देना ही उचित है। मनुष्यता ही नहीं—पशुता भी इसके लिये इजाजत नहीं देती।

विवाह के बाद एकान्त मिलन की पहली रात का गृहस्थ जीवन में बड़ा महत्त्व रहता है। वह रात एक दूसरे को जानने,

पहचानने और यह प्रण करने की रात है कि हमारा संबन्ध केवल आत्मा का सम्बन्ध है। हम सुख-दुख के सच्चे साथी रहेंगे। हम एक-दूसरे के उत्कर्ष में कभी बाधक नहीं होंगे—सदा सहायक रहेंगे। हम एक-दूसरे की भूलों को क्षमा करते हुए अपनी सहानुभूति सदा एक दूसरे के लिये जागृत रखेंगे।

विवाह की वेदी पर अग्नि को साक्षी रखकर और हजारों लोगों की उपस्थिति में तुमने जो प्रण किये थे वह केवल एक रसम अदा की थी। पुरोहित के शब्दों को बिना उनका अर्थ जाने दोहरा दिया था। पहली रात के एकान्त मिलन में उन प्रतिज्ञाओं का स्मरण करो। इस समय केवल अपने प्रेमी को साक्षी रख कर उनका ध्यान करो। उसकी आँख से आँख मिला कर एक बार फिर इन वचनों को दोहराओ "मैं तुम्हारे सुख-दुःख की सदा संगिनी रहूँगी।" वह भी यही प्रतिज्ञा दोहरायेगा। इस प्रतिज्ञा में कितना रस है, कितना आश्वासन है, यह तुम्हारी आत्मा का उल्लास प्रकट करेगा।

पहली रात के मिलन के लिये मैं एक सलाह और अवश्य दूँगा। तुम्हारे शयन-कक्ष में तुम्हें एक पुष्प-शय्या तैयार मिलेगी। तुम्हारे पति की बहनों व उनकी सहेलियों ने अगणित पुष्पमालाओं से उसे तैयार किया है। सारा कमरा उन फूलों की सुगन्ध से महक रहा होगा। सुगन्धि में मादकता होती है। शायद तुम्हारे मन-मदन के स्वागत के लिये ही यह समारोह किया गया है। लेकिन तुम्हें इस मादकता में अपने शरीर व मन को डुबो नहीं देना। यह फूलों की सेज तुम्हारा वधस्थल नहीं है। इस पर इस तरह न बैठना जिस तरह बलिदान का पशु यज्ञ की सुसज्जित वेदी पर चढ़ता है। पुराने जमाने में सोने-चांदी से सजाकर पशु का वध किया जाता था। उसे पशु-

मेध यज्ञ कहते थे। विवाह कोई स्त्री-मेध यज्ञ नहीं है। लेकिन होता यह है कि रत्न-जटित वधू जब पुष्प-शय्या पर मूक भाव से बैठ जाती है तो पुरुष उसे केवल अपनी कामना शान्ति का स्वाभाविक साधन समझ लेता है।

शय्या पर जड़पत्थर की तरह बैठ जाना वधुओं के लिये उचित नहीं है। उन्हें झूठा संकोच छोड़ कर अपने नव-परिचित पति से उसी तरह बातचीत करनी चाहिये जिस तरह किसी नये मित्र से की जाती है। मनोरंजक वार्त्तालाप से सारे वातावरण में नई स्फूर्त्ति भर जायगी। मेरा तो विश्वास है कि युवक के साथ उसकी नव-विवाहिता वधू जब मित्रवत् व्यवहार करेगी, दिलचस्प बातों में लग जायगी तो उसका मन अधिक स्वस्थ रहेगा। काम के लिए वह इतनी शीघ्रता से प्रवृत्त ही नहीं होगा। मानसिक उल्लास मिलने के बाद शारीरिक भोग की उत्कंठा ही नहीं रहेगी उसे।

मैं उन विचारकों से सहमत नहीं हूँ जो स्त्री-पुरुष के प्रत्येक सम्बन्ध में यौन-आकर्षण का बीज देखते हैं। उन्हें तो भाई बहन और माता-पुत्र के सम्बन्धों में भी वासना का अंश दिखाई देता है। इसके विपरीत मेरा तो विश्वास है कि पति-पत्नी के आकर्षण में भी वासना की अपेक्षा निर्मल प्रेम का ही महत्त्व अधिक है। जिस दम्पति के बीच वासना का आकर्षण निर्मल प्रेम की अपेक्षा अधिक प्रबल होगा उसका स्थायित्व सदा संदिग्ध बना रहेगा। उसके बीच मनोमालिन्य की मात्रा अधिक रहेगी।

यहाँ मैं तुम्हें यह उपदेश नहीं दूँगा कि तुम अपने हृदय से वासना का मूलनाश कर दो या तुम्हारे पतिप्रेम में कामना का अंश भी नहीं होना चाहिये फिर भी यह अवश्य कहूँगा कि पति-पत्नी में भी कामनारहित प्रेम संभव है। वासना के बिना

भी दोनों एक-दूसरे को चाह सकते हैं। विवाह का उद्देश्य वासनाओं की परितृप्ति नहीं बल्कि वासनाओं को निर्माण के महत्कार्य में लगाना है।

विवाह के तुरन्त बाद के सप्ताहों में तुम प्रेम को वासना-रहित बनाने का जितना यत्न करोगी उतना ही उसे स्थायी बनाने में सफल होगी। यह समय बड़ा नाज़ुक होता है। इन दिनों यदि वासनाओं की आग में घी की आहुति दे दी जाय तो उनकी लपटों में मनुष्य-हृदय की कोमल भावनायें जलकर राख हो जाती हैं। भावनाओं की पतली डोर से ही दो दिल बंधे होते हैं। डोर के टूटते ही दिलों के मनके पृथ्वी पर बिखर जाते हैं। कामनाओं का चुम्बक शारीरिक संयोग का जनक हो सकता है, आत्मिक संयोग का नहीं। वासनाओं का आकर्षण बहुत ही क्षणिक होता है। परितृप्ति ही उसके क्षय का कारण बन जाती है।

विवाह का अर्थ जीवन-साथी का मिलन न होता तो मैं इस क्षणिक सुख के आकर्षण से तुम्हें सावधान करने की इतनी आवश्यकता न समझता। क्षणिक सुख के लोभ से विवाह करना उतनी ही मूर्खता है जितनी कि एक बूंद प्यास के लिये कुएँ में छलांग मारना। यह मार्ग ही क्षणिक सुख का नहीं है। उसकी राह तो दूसरी है।

तुमने जीवन-संगी पाने के लिये विवाह किया है इसीलिये तुम्हें विवाह को आजीवन सुखी रखने के उपायों पर कुछ लिख रहा हूँ। यह लिखने की आवश्यकता और भी बढ़ गई है, जब

से 'हनीमून' मनाने की प्रथा चल पड़ी है। विवाहित दम्पति को संसार की आँखों से दूर, एकान्त में सैरविहार की स्वतंत्रता ही 'हनीभूत' की यह कल्पना माना जाता है। 'हनीमून' की यह कल्पना विनाश से भरी है। अनुभवहीन युवक-युवती अपने यौवन का सम्पूर्ण मूलधन इस भोग की पहली ही बाजी में हार देते हैं। वर्षों के परिश्रम से बाँधी हुई वासनाओं का द्वार खोल दिया जाता है—जिसके ज्वार में नैतिकता, सदाचार, संयम आदि सभी मानवीय गुण बह जाते हैं। भोग के क्षणिक चमत्कार में उसे अपने पुराने संयत जीवन का सम्पूर्ण कार्यक्रम एक धोखा लगने लगता है। उनकी मानसिक अवस्था कुछ से कुछ हो जाती है। सज्जनता शालीनता, और मनुष्यता की पोशाक को केंचुली की तरह उतार कर, वह मुक्तभोगी युवक पशुवृत्तियों को प्राकृत मानकर, उनका निर्लज्ज पोषक बन जाता है।

हनीमून की इस परिपाटी का पोषक न होते हुए भी मैं हनीमून की मूल भावना का समर्थक हूँ। मेरे विचार में विवाह के बाद पति-पत्नी को कुछ दिनों के लिये कोलाहल-भरी दुनिया से दूर किसी एकान्त में अकेले निवास करने का अवसर अवश्य देना चाहिये। इस एकान्तवास में दोनों एक दूसरे के बहुत निकट हो जायँगे।

किन्तु यह एकान्त सच्चे अर्थों में एकान्त होना चाहिये। किसी पर्वतीय प्रदेश की छोटी-सी कुटिया या किसी गाँव के पास की कोई झोंपड़ी—इसके लिये आदर्श स्थान है। यहाँ न तो कोई सेवक साथ में हो ना ही होटल की सुविधायें हों। दोनों मिलकर अपना काम आप करें। यह प्रदेश अजनबी-सा हो तो और भी अच्छा है जिससे पड़ेसियों की सहायता पर भी वे निर्भर न रहें।

ऐसे निर्जन में ही दोनों घर बनाने की शिक्षा ले सकेंगे और ऐसे एकान्त में ही दोनों को मिलकर प्रकृति के विशाल सौन्दर्य की उपासना का अवसर मिलेगा।

संयुक्त परिवार का भय — पत्र ७

अन्योन्य समुपष्टम्भादन्योन्यापाश्रयेण च ।
ज्ञातव्य: सम्प्रवर्धन्ते सरसी वोत्पन्युत ॥
—महाभारत

* * *

सरोवर के कमल की तरह स्वजनों का भी, परस्पर साहाय्य और परस्पर सहयोग से ही उत्कर्ष होता है ।

[प्रेम के बदले प्रेम अवश्य मिलता है ; स्त्रियों से ही विद्वेष की चिंगारी सुलगती है ; अग्नि की वही लपटें घर को भस्म कर देती हैं ; पति की प्रसन्नता किसमें ; यदि अलग होना पड़े; इतर भागीदार]

प्रिय कमला,

तुम्हारे पत्र की कुछ पंक्तियां पढ़ने के बाद ही मैं तुम्हें सगाई की बधाइयां और नसीहतें लिखने बैठ गया था। बाद में देखा तो उसकी अन्तिम पंक्तियों पर नज़र गई। उसमें तुमने लिखा है कि "मुझे ऐसा लगता है कि मैं अपने भावी पति के साथ तो सुख से रह सकूंगी लेकिन ससुराल जाने से मुझे डर लगता है।

मैंने सुना है कि उस घर की ननदें बड़ी तेज़ स्वभाव की हैं। मैं उनका तिरस्कार सहन नहीं कर सकूंगी।" तुमने मुझसे इस सम्बन्ध में राय पूछी है।

तुम्हारी समस्या अनोखी नहीं है। यह समस्या आजकल हर घर की समस्या बनी हुई है। हमारे सामाजिक जीवन में जो परिवर्त्तन आ रहे हैं वे संयुक्त परिवार की प्रणाली के अनुकूल नहीं हैं। सच तो यह है कि संयुक्त आयव्यय की सुविधाओं के उठने के बाद पारिवारिक संयुक्तता को बनाये रखना बहुत कठिन काम हो गया है। फिर भी, मैं मानता हूं कि जहां तक हो सके इसे निभाने का यत्न करना चाहिये।

वे तुम्हें तिरस्कार से क्यों देखेंगी ? उनको तुमसे जलन क्यों होगी ? अभी से तुम ऐसी कल्पनायें क्यों करने लगी हो ? ऐसी आशंकायें व्यर्थ ही तुम्हारे मन को विषाक्त कर देंगी। इन सुनी-सुनाई बातों पर विश्वास न करो। कोई किसी से अकारण द्वेष नहीं करता। प्रायः कल्पित भय या सन्देह ही द्वेष के कारण बन जाते हैं। प्रेम का उत्तर कभी घृणा से नहीं मिलता। प्रेम के बदले प्रेम अवश्य मिलता है लेकिन प्रेम दिखावे का नहीं, दिल का होना चाहिये।

प्रेम के इस गहरे तथ्य को कच्ची उम्र की दुलहिनें नहीं समझ पातीं। ससुराल आते ही कलह शुरू हो जाता है। आदर्श घरों की बात छोड़ दें तो प्रायः सब संयुक्त रहने वाले घरों में कलह के बादल छाये रहते हैं। कलह का बीज प्रायः दहेज की चीज़ों के बटवारे से प्रारम्भ होता है। ननदें बहू की साड़ियों में से अच्छी से अच्छी साड़ियां चुनने की कोशिश करती हैं। बहू अपनी पसंद से साड़ियां लाई है। ननदों की

छीना-झपटी पर वह जल उठती है। कलेजे में एक चुभन-सी होती है। प्रत्यक्ष तो कुछ नहीं बोलती परन्तु दिल में ननदों को शत्रु मान लेती हैं। मेरी राय में बहू के दहेज में से कोई भी चीज़ पति-परिवार के किसी भी व्यक्ति को नहीं लेनी चाहिये। उस पर बहू का ही अधिकार रहना उचित है।

पहले-पहल यह कलह प्राय: स्त्रियों में ही सीमित रहती है। परिवार का पुरुष समुदाय उसमें भाग नहीं लेता। बहू को भी ससुर से इतनी शिकायत नहीं होती जितनी सास से। सास भी अपने पुत्र को लाड़ला बनाये रखती है, लेकिन बहू को नागिन कहती रहती है। जिठानी भी देवर से तो कुछ नहीं कहती, हंस कर बोलती रहती है लेकिन देवरानी के लिये दिल ही दिल में विष घोलती रहती है। देवरानी भी जेठ से तो परदा करती है, उनका मान करती है लेकिन जिठानी से दिन में कई बार दो-दो हाथ हो जाती है। ननद भी भाई पर तो जान देती है लेकिन भावज के लिये यही कहती रहती है "जाने कहां से यह गंवार पल्ले पड़ गई। इसका भी क्या कसूर। है ही छोटे घर की।" बहू भी अपने पति को तो कहती है यह देवतास्वरूप है, किन्तु उन्हीं की बहन को कुलटा समझती है। वह यही कहती है कि "सास ने अपनी लड़कियों को बिगाड़ दिया है। उन्हें अपने घर बसने ही नहीं देती। जब देखो अपने मायके आई रहती हैं। बसें भी कैसे ? इनके पति इनसे तंग है। वे तो चाहते हैं कि ये बलायें यहां से टली रहें।"

धीरे-धीरे यह ज़हर पुरुष समुदाय की ओर भी फैलने लगता है। जिठानी-देवरानी की 'तू-तू, मैं-मैं' में एक-दूसरे के पतियों पर भी छींटे पड़ने शुरू हो जाते हैं। जिठानी कहती है "ज़िमीदारी

का सारा काम तो बड़े बाबू के हाथ है, छोटे बाबू करते ही क्या हैं। दिन भर पड़े रहते हैं। तू उन्हें लिये बैठी रहती है।"

देवरानी कहती है "मेरा खर्चा ही क्या है। अकेली जान हूँ। जिसके चार-चार बच्चे हों चिन्ता तो उसको हो।"

रात को पति के सिरहाने बैठ कर बहू अपनी जिठानी की चुगली करती है—"मालूम है जिठानी क्या कहती थी? छोटे बाबू तो मुफ्त की खाते हैं।"

"सचमुच ऐसा कहती थी?"

"हाँ, पूछलो उसी से।"

"मैं भाई साहब से पूछँगा।"

"जब पूछो तो यह भी पूछ लेना कि जमींदारी का जो रुपया आता है वह सब का सब कहां जाता है। मुझे तो तीज त्योहार पर जो रुपये मिलते हैं वे भी जिठानी की तिजोरी में ही जमा रहते हैं।"

"बात तो ठीक है। आखिर जमींदारी का रुपया भाई साहब के अकेले का तो नहीं। मैं यह भी पूछूँगा।"

"इसमें पूछने की क्या बात है। भावज के तो नित्य नये जेवर बनते हैं और हम कहें तो जवाब मिलता है, सोना जरा सस्ता हो जाय तो बना देंगे।"

इधर छोटी बहू अपने नये ब्याहे पति को यह सुनाती है और उधर बड़ी बहू अपने पति को कुछ और ही कहती है। रात होते ही परिवार के प्रत्येक सदस्य का कमरा अच्छा खासा मन्त्रणा-गृह बन जाता है। जिठानी अपने पति को सुनाती है—

"देखो जी! मैं तुम्हें लाख बार कह चुकी हूँ, यह दरिया-दिली अच्छी नहीं। छोटी बहू के लिये बाजार से कुछ-न-कुछ

चला आता है। दिवाली पर इतनी महंगी साड़ी देने की क्या ज़रूरत थी। बहू तो ओछे घर की हैं। वह इस उदारता को क्या पहचानेगी। जो दिया सो दिया अब कुछ देने की ज़रूरत नहीं। ज़मींदारी से आता ही क्या है। मेहनत तो तुम करते हो और पैसा उड़ाती हैं छोटे बाबू की लाडली बहू।"

कुछ दिन बाद लड़ाई रंग पकड़ती है। देवरानी अपने पति को रोते-रोते सुनाती है—

"तुम तो घर से बाहर रहते हो। मुझे ही सब बातें सुननी पड़ती हैं। आज जिठानी जी कह रहीं थीं कि ज़मींदारी की आमदनी से घर का खर्चा नहीं चलता, कहीं नौकरी कर लो। हमें नौकरी के लिये भेजकर ही ये लोग दम लेंगे।" नतीजा यह होता है कि भाई-भाई लड़ बैठते है। बरसों का लगा बाग उजड़ जाता है। मां की गोद का सहारा छूट जाता है।

भाइयों का यह कलह यहाँ तक समाप्त नहीं हो जाता। माता-पिता से मिलने में भी आपत्ति होने लगती है। छोटी बहू अपने पति को समझाती है—

"तुम तो मां-बाप पर जान देते हो, मगर मां-बाप तुम्हें कब पूछते हैं। काके का जन्म हुआ था तो भी बस, दो दिन के लिये आये थे। तुम मानो न मानो, सारी जायदाद बड़े बाबू को ही दे जायंगे। ज़ेवर और रुपया तो रहता ही उनके पास है।"

बहू को पति के किसी भी रिश्तेदार का घर आना अच्छा नहीं लगता। 'जगह कम है नौकर नहीं है, मुन्ने की तबीयत ठीक नहीं,' किसी-न-किसी बहाने उन्हें दूर ही रखती है। हाँ, अपने मायके से कोई आ जाय तो सिर पर उठा लेती है। उसके लिये जगह भी काफ़ी हो जाती है, मुन्ने की तबीयत भी ठीक हो जाती है और सब सुख सुविधाओं का द्वार खुल जाता है।

पीहर वाला आये तो चीनी की तंगी से चाय नहीं बनती, असल घी न मिलने से रोटी का चुपड़न बन्द है, चावल राशन में मिलते नहीं और मोटर की बैटरी ठण्डी पड़ जाती है।

तुम्हें ससुराल जाकर सबसे प्रेमपूर्वक बर्ताव रखना चाहिये। अब वही घर तुम्हारा घर होगा। उसे ही अपनाना होगा। तुम जिस सचाई से तुम अपने माँ-बाप और अपने सगे भाई बहनों से प्रेम करती हो, उनका ऊँच-नीच बर्ताव सहन करती हो, तीखे तेज वाक्य सहती हो—फिर भी उनको अपनाये रहती हो, उसी तरह यदि अपने पति के परिवारवालों को अपनाओगी तो कभी ईर्ष्या द्वेष की चिंगारियाँ नहीं उठेंगी।

पूरे विश्वास के साथ तुम्हें उनके बीच रहना होगा। अपने भाई-बहनों से भी कई बार तुम्हारी कहा-सुनी हो जाती है। कुछ देर के लिये विषबुझे बाणों की बौछार भी होती है। लेकिन दिलों की खाई इतनी गहरी नहीं पटती कि भरी न जा सके। इसके विपरीत सास-बहू या ननद-बहू की दो चार कड़वी बातें भी ऐसे ताम्रपत्र पर लिखकर अमर कर दी जाती हैं कि पुश्त-दर-पुश्त उनका ज़हर चलता रहे।

स्त्री को प्रेम, क्षमा, उदारता और सहिष्णुता की साकार प्रतिमा कहा जाता है। बहिन बनकर वह भाई के लिये प्रेम का अक्षय सरोवर अपने हृदय में रखती है, पत्नी बनकर वह पति की प्रसन्नता पर जीवन की बड़ी से बड़ी निधि का हंसते २ त्याग कर देती है और मां बनकर तो अपने सारे जीवन को सन्तान के लिये मिटा देती है। ऐसी त्यागमयी, ममतामयी स्त्री किसी की बहूरानी, ननद या सास बनकर क्यों नहीं प्रेम का प्रतिदान दे सकती—यह प्रश्न मेरी समझ में नहीं आता।

प्रतिदान की यह कमी बहू की ओर से ही नहीं होती। सास और ननदें भी बहू को अपनाने में बड़ी कृपणता से काम लेती

हैं। यह कृपणता स्त्रियों के स्वभाव में प्रकृतिगत नहीं है; कुछ सामाजिक कारणों से उनके स्वभाव का अंग बना गई है। लेनदेन का मामला, या बटवारे का प्रश्न आते ही हमारे घरों की लड़कियां बहुत सावधान हो जातीं हैं। धन-लोभी पुरुष भी तंगदिल होते हैं। लेकिन उन्हें अपनी उपार्जन शक्ति पर गर्व होता है। वह गर्व उनमें से कुछ को अतिशय कृपण होने से बचा लेता हैं। स्त्रियों को यह गर्व करने की सुविधा प्राप्त नहीं है। धन की चाह सभी को होती है। लोभ की मात्रा भी साधारणतया सभी के मन में समाई हुई है। उसी मात्रा के अनुपात से व्यक्ति भी कृपण या अकृपण होता है।

मेरा अभिप्राय यह है कि कुछ हद तक हमारी आर्थिक लालसा या स्त्रियों की अर्जन-परवशता ही इस कटुता का कारण है। इस अर्थप्रधान युग में ऐसी कटुताओं की वृद्धि ही होगी। इनमें न्यूनता की कल्पना नहीं हो सकती। तुम्हें केवल इतनी ही राय दे सकता हूं कि इन कटुताओं से बचने में ही जीवन की शान्ति है, सुख है।

एक बात तो निश्चित समझ लो। तुम्हारे पति की प्रसन्नता इसी में होगी कि तुम उसके सम्पूर्ण परिवार का अंग बनकर रहो। तुम्हें स्वयं इसमें बड़ी सुविधा होगी। सास ननद के प्यार में तुम अपने मां-बाप की बिछुड़न भूल जाओगी। हंसते-खेलते दिन बीतेंगे। दुख की घड़ियों में सहानुभूति मिलेगी और हंसने-खेलने को साथ मिलेगा। अलहदा घर बसाना बड़ी जिम्मेदारी का काम है। पति के बाहर जाने पर सब सूनासूना मालूम होगा। उपार्जन के लिये पति को विदेश भी जाना पड़ता है। इस लम्बे वियोग को काटने के लिये तुम्हें फिर अपने माता-

पिता का आश्रय लेना पड़ेगा। कष्ट के अन्य अवसरों पर भी तुम अपने मां-बाप को लिखोगी। तुम्हारा पति तुम्हारे माता-पिता के उपकारों से दबना सहन नहीं करेगा। तब तुम पड़ोसियों या सहेलियों का अवलम्ब लोगी।

यहीं तक ही इस दुखद अध्याय का अन्त नहीं हो जायगा। वह समय भी आयगा जब तुम अपने पति के माता-पिता या भाई-बहन को घृणा की दृष्टि से देखने लगोगी। तुम्हारा सम्बन्ध उपेक्षा का संबन्ध नहीं है। इन संबन्धों के रिक्तस्थान को प्रेम से नहीं भरा जाता तो घृणा के काले नाग वहां अपना फन फैलाने लगते हैं। यह घृणा देर तक दबी नहीं रह सकती। शब्दों में या व्यवहार में वह प्रकट होकर रहती है।

ज़रा सोचो, पति के आदरणीय माता-पिता को घृणा करके तुम पति के सम्पूर्ण प्रेम पर किस तरह अधिकार पा सकती हो? घृणा और प्रेम एक साथ नहीं रह सकते। पति का मन अपने मां-बाप से कुछ देर के लिये विमुख होकर भी उनका प्यार पाने को सदा आतुर रहेगा। तुम्हारा अतुल प्रेम और महान् बलिदान भी उसे मां-बाप से विमुख नहीं कर सकेगा। उसके माता-पिता ने भी उसके लिये बलिदान किये थे। माता के स्नेह को अपनी तराजू पर तोलने की कोशिश मत करना। इस तुलना से पति को प्रसन्नता नहीं होगी।

मेरी सलाह तो यही है कि तुम अपनी आशंकाओं को दूर कर दो। ससुराल में जाकर यदि तुम्हें सास-ननद का व्यवहार अप्रीतिकर हो तो भी पति की प्रसन्नता का ध्यान रखकर संयम से काम लो। प्रेम का मार्ग कांटों से भरा होता है। पति तुम्हारी कुर्बानी की कद्र अवश्य करेगा। तुम्हारा दुःख उससे छिपा नहीं रहेगा। सास-ननद का अन्याय उसे तुम्हारे पक्ष में कर देगा। तुम्हें अपने पति की प्रसन्नता की चाह है तो तुम्हारी सास को

भी अपने पुत्र की प्रसन्नता का ध्यान है। वह भी उसके बुढ़ापे का सहारा है।

किसी भी अवस्था में तुम्हारी ओर से सास के लिये कोई अपमानजनक शब्द नहीं निकलना चाहिये। परीस्थितियों से वाधित होकर तुम्हें अलहदा घर बसाने को लाचार होना पड़े तो भी उनका आशीर्वाद लेकर ही तुम अलग होना।

कई बार स्थान की दूरी हृदयों को पास ले आती है। पास रहते हुए भी दिल दूर रहते हैं और दूर रहते हुए भी दिल पास रहते हैं। एक-दूसरे की कठिनाइयों को समझने का यत्न करना चाहिये। तुम्हारे पति पर सास का भी अधिकार है। उसने उसे जन्म दिया है। उस अधिकार का मूल्य समझते हुए ही पति को उसकी माता से अलग करने की कोशिश करना।

एक बात और, पति के सामने सास की कटु आलोचना नहीं करना। कटु आलोचना विषबुझा बाण है। आलोचक के दिल का जहर लेकर ही वह बाहर आता है। किसी की आलोचना से प्रभावित होकर कोई अपनी राय नहीं बदलता।

मैंने तुम्हें जो कुछ कहा है, वह किसी विशेषज्ञता के दावे पर नहीं कहा। तुम स्वयं यह सब जानती हो। कोई नई बात कहने का दावा नहीं भरता मैं। जो कुछ तुम्हारे अन्तर में है उसी को प्रकाश में लाने का यत्न करता हूँ।

विवाह के सम्बन्ध में तुम मुझसे अपनी शंकाओं को मेरे सामने निःसंकोच रख सकती हो। विवाह अब केवल स्त्री-पुरुष का निजी सम्बन्ध नहीं रहा है। स्त्री-पुरुष की विकार वासनाओं को प्राकृत रीति से शान्त करना करना भी विवाह का उद्देश्य नहीं रहा है। केवल सन्तानोत्पत्ति के अभिप्राय से विवाह का

प्रयोजन मानना भी युक्तिसंगत नहीं है। विवाह के लक्ष्य में इन सब प्रयोजनों का समावेश होता है लेकिन इतने तक ही विवाह का क्षेत्र सीमित नहीं रह गया है।

विवाह का उद्देश्य तो अब सामाजिक जीवन के उत्कर्ष में इस तरह मिल गया है कि विवाह को हम मनुष्य के सारे सामाजिक जीवन का हृदय भी कह दें तो अनुचित नहीं होगा। विवाह ने स्त्री-पुरुष के प्रेम को कला का रूप देकर सामाजिक संस्कृति के निर्माण में और सामाजिक जीवन के पोषण में पूरा भाग लिया है।

इसीलिये उत्तरीय ध्रुव से दक्षिण ध्रुव तक भूमंडल का कोई भी भाग एक-निष्ठ विवाह की प्रथा से रिक्त नहीं है। ईश्वर की ओर से मनुष्य को प्रेम का जो वरदान मिला था उसे मनुष्य की कलात्मक बुद्धि ने विवाह का रूप देकर अपना चमत्कार दिखलाया है। मनुष्य-बुद्धि के इस चमत्कार में भी ईश्वरीय प्रेरणा ही निवास करती है। ईश्वर को यह मंजूर न होता तो यह संस्था सदियों के लंबे समय तक जीवित नहीं रह सकती थी।

हम सबका कर्तव्य है कि हम इस संस्था की नींव को मजबूत करने की प्राणपण से चेष्टा करते रहें। इस सम्बन्ध को यथासंभव स्थायी बनाना ही हमारा लक्ष्य है।

तुम्हरा हितचिन्तक

....

कुछ प्रश्न   पत्र ८

यादृक् गुणेन भर्त्तास्त्री संयुज्येत यथाविधिः ।
तादृक् गुणा सा भवति समुद्रेनैव निम्नगाः ॥

*   *   *

पति जिन गुणों के साथ स्त्री के जीवन में आता है, स्त्री उन गुणों को अपने में धारण कर लेती है, जैसे सागर नदियों को ।

[क्या काम-विज्ञान की उपयोगिता है ? क्या पति को सब भेद बता दें ? क्या कला का अभ्यास छोड़ना होगा ?]

प्रिय कमला,

तुमने अपने पत्र में जिन बातों की चर्चा करके मेरी राय पूछी है उनके सम्बन्ध में संक्षेप से लिखता हूं। जैसे-जैसे विवाह की तिथि निकट आती जायगी तुम्हारी शंकायें बढ़ती जायंगी। शंकायें होना स्वाभाविक है। इसका अभिप्राय है कि तुमने विवाह के प्रश्न को गंभीरता से हल करने का निश्चय किया है। और तुम वैवाहिक प्रश्नों का चिन्तन भी करती हो। कुछ पुराने

लोग वैवाहिक जीवन की बातों पर चिन्तन करना भी पाप समझते थे। उनका युग बीत गया। अब विज्ञान का युग है। मनुष्य अपनी आँखों से देख-भाल कर अपने रास्ते का चुनाव करना सीख गया है।

किसी पाश्चात्य विद्वान की वैवाहिक जीवन-संबन्धी पुस्तक का हवाला देते हुए तुमने पूछा है कि—'यह बात कहां तक सच है कि वैवाहिक जीवन का सुख युवक युवती की काम-संबन्धी आवश्यकताओं की तृप्ति पर आश्रित है।'

यह प्रश्न आजकल तुम्हारे ही नहीं प्रत्येक पढ़े-लिखे युवक-युवती के मन में उठता है। इसका उत्तर ढूँढ़ने के लिये वे काम-विज्ञान की पुस्तकों का पारायण प्रारम्भ कर देते हैं। फिर भी उन्हें अपने प्रश्न का उत्तर नहीं मिलता। प्रत्येक पुस्तक काम सम्बन्धी आवश्यकताओं की इतनी विविध और विस्तृत सूचियां पेश कर देती हैं और उनके ऐसे पेचीदे हल पेश कर देती है कि जिज्ञासु का मन या तो नये-नये कौतूहलों से भर जाता है या वह थक-हार कर अपने प्रयत्न को बन्द कर देता है।

मैंने भी काम-विज्ञान के बड़े-बड़े ग्रन्थ पढ़े हैं और उन सब को पढ़ने के बाद मेरा विश्वास हो गया है कि मैंने व्यर्थ ही अपना समय नष्ट किया। एक बात की खुशी मुझे अवश्य हुई। वह यह कि मैंने अपनी कच्ची उम्र में इन पुस्तकों को नहीं पढ़ा था। उस उम्र में ये पुस्तकें मेरे मन में विचित्र कौतूहल पैदा कर सकती थीं। मैं इस तिलस्मी दुनियां के कौतुकों से दूर रहा—इसके लिये मैं अपने रूढ़िवादी अभिभावकों का कृतज्ञ हूँ। मैं चाहता हूँ कि कोई भी युवक अपनी प्रौढ़ावस्था से पूर्व इन

पुस्तकों के जाल में न फंसे। तुम्हें भी मैं सलाह दूँगा कि इनके आकर्षक मुखपृष्ठों के नीचे केवल विष ही विष भरा है।

तुम्हारे प्रश्न का उत्तर तो इतना ही है कि वैवाहिक जीवन का सुख युवक-युवती की काम-संबन्धी आवश्यकताओं पर बहुत कम निर्भर करता है। ये आवश्यकतायें प्रत्येक औसत दर्जे के स्वस्थ युवक व युवती में प्राय: सामान्य ही रहती हैं। प्रकृति ने इनमें विशेष विविधता पैदा नहीं की। ये आवश्यकतायें इतनी प्राकृत हैं कि मनुष्य को उनकी तृप्ति के लिये विशेष विचार द्वारा किसी शैली के आविष्कार की आवश्यकता ही नहीं है। वैवाहिक जीवन का सुख उनकी तृप्ति या सामंजस्यता से सर्वथा भिन्न है। उसके लिये मानसिक सामंजस्यता अपेक्षित है। बल्कि मेरा तो यह विश्वास है कि काम-संबन्धी सामञ्जस्य भी मानसिक सामञ्जस्य का अनुगामी ही है। मानसिक अतृप्ति ही कामसंबन्धी अतृप्ति को जन्म देती है। जहां सच्ची सहानुभूति होगी, परस्पर प्रेम होगा वहाँ स्वयं काम-संबन्धी अनुकूलता पैदा हो जायगी। सच मानिये, बाजारु कामशास्त्र-संबन्धी साहित्य केवल विषयी पुरुषों के मानसिक विलास का साधन है। उनका परित्याग करना ही श्रेयस्कर है।

•

जो दूसरा प्रश्न तुमने पूछा है उसका उत्तर भी कठिन नहीं है। एक अन्य युवक ने तुमसे प्रेम किया था। माता पिता के विरोध के कारण वह तुम्हारा जीवन-साथी नहीं बन सका। अब भी उसके हृदय में तुम्हारे लिये प्रेम है। तुमने पूछा है कि इस प्रेम-प्रसंग की चर्चा भावी पति से कर दी जाय या नहीं?

उसके रहते जब तुमने दूसरे साथी को विवाह के लिये स्वीकार किया है तो यह निश्चय करके ही किया है कि वह प्रेम-प्रसंग

अब समाप्त हो चुका है। तुम्हारा मन भी अब साफ़ है। उसकी याद तुम्हें सताती नहीं है। हर अवस्था में तुम्हें इस प्रसंग की चर्चा अपने भावी साथी से कर ही देनी चाहिये।

जिसे तुमने साथी स्वीकार किया है उसके सामने तुम्हारा जीवन दर्पण के समान साफ़ होना उचित है। अनजाने में कोई बात छिपी रहजाय तो दूसरी बात है लेकिन जानबूझ कर उससे कुछ भी छिपाना पाप है। 'पाप' शब्द का प्रयोग मैंने इस प्रयोजन से किया है कि इसे तुम मामूली भूल न समझना। भूल कभी जानबूझ कर नहीं की जाती। जानते-बूझते बुरा काम करना ही पाप करना है। जीवन-साथी के साथ तुम्हारा संबन्ध पवित्र संबन्ध है। उसमें असत्य को स्थान नहीं मिल सकता। असत्य कभी स्थायी नहीं होगा। एक जीवन तो क्या, एक दिन भी वह नहीं टिकेगा।

व्यवहार-नीति भी इसी का समर्थन करती है। बीती हुई बातें भी सदा के लिये नहीं बीत जातीं। जीवन के मार्ग में बिखरे हुए साथी भी कभी-कभी मिलते ही रहते हैं। कभी उस 'निराश प्रेमी' ने तुम्हारे आगे फिर प्रेम-अभिनय शुरू कर दिया या प्रेम-पत्र भेज दिया तो पति को उसकी चेष्टाओं का कौनसा आधार बताओगी। पति के मन में यदि यह सन्देह घर कर गया कि तुमने जानबूझ कर इस प्रेम-प्रसंग की बात छिपाई थी तो वह तुम्हारे चरित्र पर सन्देह करने लगेगा। सन्देह का यह बीज तुम्हारे विवाहित जीवन को बरबाद कर डालेगा।

इसलिये मैं तुमसे आग्रह करूंगा कि आज से यह प्रण करलो कि तुम अपने जीवन-साथी से कुछ भी छिपाओगी नहीं।

तुम्हें शायद यह डर है कि तुम्हारे पुराने प्रेम-प्रसंग की बात सुनकर तुम्हारे भावी पति विवाह के निश्चय में परिवर्त्तन न करदें। इसमें सन्देह नहीं कि कुछ पुरुष बहुत अनुदार और

इन मामलों में बहुत नासमझ होते हैं। कुछ तो बड़ी से बड़ी भूल को भी प्रेम के वश क्षमा कर देते हैं और कुछ ऐसे होते हैं जो सुनी-सुनाई बातों को दिल में गांठ बांध कर रख लेते हैं। तुमने तो कोई भूल भी नहीं की। भूल हो गई होती तो भी मैं यही सलाह देता कि वह पति के कानों तक पहुंचा दी जाती।

जिसके प्रगट होने का परिणाम भविष्य में विवाह-विच्छेद होने का भय हो सकता है, उसे विवाह से पूर्व ही प्रकट कर देना बुद्धिमानी है। सचाई को देर तक छिपाया नहीं जा सकता छिपाने का प्रयत्न करना भयानक अधर्म है। यह भय तुम्हें जीवन भर चैन की सांस नहीं लेने देगा।

इस प्रसंग में तो तुम्हारी निर्बलता का कोई आभास भी नहीं है। मैं तो कहूँगा कि अपनी निर्बलताओं को भी उसके सामने रखदो। यदि तुमने कोई पाप किया है तो भी उसे स्वीकार करलो। उसे यह कहने का मौका न मिले कि उसके साथ धोखा हुआ है। माता-पिता का कर्त्तव्य है कि वे अपने लड़के-लड़की की सब निर्बलतायें भी सामने रखदें। अन्यथा विवाह के बाद छोटी-छोटी बातें 'भेद' बन कर खुलती हैं। परिणाम विवाहित जीवन का सर्वनाश होता है।

•

एक प्रश्न तुमने और पूछा है। तुम्हें नृत्य का शौक है। विवाह के बाद भी तुम इसका अभ्यास जारी रखना चाहती हो। तुम्हें डर है कहीं तुम्हारा पति इसे जारी रखने की अनुमति न देगा तो क्या होगा। तुमने पूछा है कि क्या इस सम्बन्ध में तुम्हारे माता-पिता द्वारा भावी पति की स्वीकृति अभी से प्राप्त कर लेना उचित होगा।

तुम्हारी रुचि यदि साहित्य या संगीत की ओर होती तो शायद तुम्हें यह प्रश्न तंग नहीं करता। नृत्य-कला का रूप उनसे कुछ भिन्न है। साहित्य में शब्दों द्वारा और संगीत में स्वरों द्वारा हृद्गतभावनाओं को अभिव्यक्त किया जाता है। उन्हें सुन्दर सरस रीति से अभिव्यक्त करना ही कला है। नृत्य में शरीर के अंगों से वह अभिव्यक्ति होती है। अभिव्यक्ति के माध्यम की यह भिन्नता दोनों में बहुत भेद कर देती है। तुम्हारे शरीर और मन को अपना समझने वाला इसमें आपत्ति कर सकता है। यदि वह उदार विचार का होगा तो आंपत्ति नहीं करेगा। फिर भी उसकी इच्छा यही होगी कि तुम अपने शरीर के माध्यम द्वारा भावनाओं को सार्वजनिक रूप से अभिव्यक्त करने का काम न करो।

इसका कारण यह नहीं है कि वह तुम्हारे शरीर पर अपना स्वामित्व समझता है, एकाधिकार मानता है, बल्कि यह भी हो सकता है कि साधारण जनता प्राय: मनोरंजन के लिये ही नृत्य देखती है और वासनापूर्ण नृत्यों को ही पसन्द करती है। मनोरंजनप्रिय जनता भावना की अपेक्षा भावनाओं की अभिव्यक्ति के माध्यम शरीर से ही अधिक आकृष्ट हो जाती है और प्रदर्शन को सफलता देने के लिये नर्त्तक या नर्त्तकी भी देखने वालों की रुचि का ध्यान रखकर शारीरिक मुद्राओं और अंग विशेष को ही महत्त्व देने लगते हैं। लोकप्रियता का लोलुप कलाकार भी इस प्रलोभन से बच नहीं पाता।

यह ठीक है कि इसमें दोष जनता का है किन्तु, कलाकार को भी इस दोष का दुष्परिणाम भोगना पड़ता है। उसकी आत्मा दु:खी हो जाती है। उसके साथी, उसके आत्मीयजनों को भी दुख होता है। तुम्हारे पति को भी इससे वेदना होगी, इससे ग्लानि होगी। आत्मिक ग्लानि का भार सहते हुए भी जो कला-

कार जनता का सन्तोष करने में तत्पर रहते हैं वे सस्ती लोकप्रियता पाने के लिये ही ऐसा करते हैं। वह कला की साधना नहीं, झूठी वाहवाही पाने का यत्न है। इसलिए मेरी तो राय है कि उस नृत्यकला की साधना को पत्नी बनने से पहिले ही अन्त कर दो जिसका प्रदर्शन रंगमंच पर या सार्वजनिक सभाओं में होता है। कला की रीति से उसका अभ्यास भले ही जारी रखो। घर में, सहेलियों में, भगवान की पूजा में तुम उसका उपयोग कर सकती हो।

मैंने यह सलाह तुम्हें इसलिये दी है कि मुझे आजतक लाखों में एक भी ऐसा उदारमना पति नहीं मिला है जो अपनी पत्नी को रंगमंच पर नृत्य करते देखना पसन्द करता हो।

यह ठीक है कि अभी तक तुम्हें अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करने के लिए नृत्य का सहारा लेना पड़ता है किन्तु पत्नी बनने के बाद, माता बनने के बाद किसी सहारे की जरूरत नहीं रहेगी। तुम्हारी भावनायें सम्पूर्ण रूप से तुम्हारे नारीत्व में और मातृत्व में अभिव्यक्त हो जायंगी। जो अभाव तुम्हें कभी-कभी खटकता है, तुम्हारी नसों में चंचलता भर देता है, अंगों में सिहरन और दिल में छटपटाहट ला देता है, वह पत्नी और माँ बनते ही अखंड तृप्ति में बदल जायगा। ईश्वर की सब से ऊंची कला तुम्हारी गोद में होगी। तुम्हारी सम्पूर्ण रचनात्मक प्रवृत्तियां उसमें केन्द्रित होकर अपने लक्ष्य को पा लेंगी। परितृप्ति और परिपूर्णता की चरमसीमा पर पहुँचकर तुम्हें नृत्य-कला का शायद स्मरण भी न रहे। इसलिये ऐसी शकाओं से मन को विचलित मत करो।

नृत्य के संबन्ध में अंग्रेजी के एक प्रसिद्ध लेखक ने बड़ी

मनोरंजक बात लिखी है—

'They who love dancing too much seem to have more brains in their feet than in their head.'

—Terence.

जिन्हें नृत्य का अतिशय अनुराग है उनकी प्रतिभा सिर में नहीं पैरों में रहती है !

तुम्हारा हितचिन्तक

....

पूर्ण मिलन — पत्र ९

" विवाह का आदर्श दो हृदयों की प्रेम भावना तक ही सीमित नहीं । यह तो विश्वव्यापी प्रेम के मार्ग में एक पड़ाव मात्र है ...... । विवाह में पत्नी को पति के व्यक्तित्व में अपना व्यक्तित्व विलीन करके निस्वार्थ सेवा में तत्पर रहना चाहिये ।"

—गांधी जी

[यह एक क्षण की पहिचान—सदा स्थाई; सदा नवीन । निकटता नहीं; पूर्ण मिलन । शरीर, मन की स्वस्थता । अन्ध भक्ति नहीं, मानसिक समता । परस्पर अनुरूपता]

प्रिय कमला,

जब यह पत्र तुम्हारे हाथों में पहुँचेगा तब तुम्हारे हाथ मेंहदी से रंगे जा चुके होंगे । तुम्हारी कलाई में प्रेम की जंजीरें बंध चुकी होंगी । किसी की रत्न-जड़ित अंगूठियां तुम्हारी पतली-पतली अंगुलियों को लांघकर मुस्करा रही होंगी ।

मैंने कहा था कि किसी दिन कोई व्यक्ति तुम्हारे पंखों को अपने प्रेम की डोर में बांध लेगा। तब तुम यह कहना भूल जाओगी कि मैं इस तारों-भरे आकाश में अकेली उड़ना चाहती हूँ। बोलो, अब उन फड़फड़ाते पंखों को समेटकर किसी के प्यार के पिंजड़े में चैन से बैठना कितना अच्छा लगता है।

सच कहना, ऐसा लगता है न कि जिस अमृत को पाने के लिये आत्मा व्याकुल होकर सब दिशाओं में दौड़ रही थी वह मिल गया। शत-शत योजन दूर उड़ान करने वाली आंखें जिस अनोखी चीज़ को ढूँढ रही थीं उसे अचानक ही पा लिया। एक-दो दिनों में ही कितना अपनापन आ गया है इस अजनबी के साथ तुम्हारे दिल में मानों सदियों से एक दूसरे को पहचानते थे। अपनत्व की भावना में इतनी ओतप्रोत हो गई हो तुम कि उसके दिल की धड़कन में भी तुम्हें अपने ही दिल की आवाज़ सुनाई देने लगी है।

उसकी आंखों में तुम्हारी दुनिया बस गई है। और तुम्हारी मुस्कान में उसका संसार खिल उठा है। उसके होंठ हिलने से पहिले ही तुम उसकी बात सुन लेती हो, और उसकी आंखों के इशारे से पहले ही तुम्हारे बाग़ की कलियां खिलखिला कर नाचने लगती हैं। एक दिन में ही यह सब हो गया। एक क्षण ने ही तुम्हारी दुनियां बदल दी।

प्रकृति के सब महत्वपूर्ण काम इसी तरह क्षण भर के जादू में आकस्मिक रूप से हुआ करते हैं। एक क्षण में ही सूर्य पर्वत के शिखर से निकल कर विश्व के अंधकार को उजियाला कर देता है और एक ही क्षण में पृथ्वी के मार्ग से गरम सोतों का सागर फूट कर सारी पृथ्वी पर भूचाल ला देता है। क्षणिकता

के इस चमत्कार ने ही दुनियां को रंगीन बनाया हुआ है। यदि एक ही क्षण ने तुम्हारे जीवन को भी नये रंग में रंग दिया तो आश्चर्य की बात नहीं है।

यह न समझना कि जो तुम्हें इतना अचानक मिला है यह अचानक ही छिन भी जायगा। यह तो जीवन भर तुम्हारे साथ रहने के लिये है। जो कुछ तुम्हें अनुभव हो रहा है वह तो केवल प्रारम्भिक अनुभव है। अभी तो इस यात्रा पर तुमने अपने जीवन साथी के साथ प्रस्थान ही किया है। विवाह तुम्हारे प्रेम-जीवन का चरम विन्दु भी है और यही प्रयाण-स्थल भी। यह यात्रा ऐसी है जिसकी हर मंजिल नया पड़ाव होता है और जो हर पड़ाव से नई यात्रा की तरह समारोहों से शुरू होती है।

इसकी नवीनता का स्रोत तुमसे बाहिर किसी झील या पर्वत-शिखर पर नहीं है। वह तो तुम्हारे अपने अन्तर में ही स्थित प्रेम की अनुभूति में है—जिस अनुभूति का रहस्य-भरा कम्पन प्रत्येक युवक युवती के हृदय में भरा होता है और जो उन दोनों के परस्पर आकर्षण की शक्ति के रूप में प्रकट होता रहता है। प्रेम-भावनाओं का यह सदा प्रवहमान निर्झर किसी में समर्पित होने, किसी में तल्लीन होने की चाह से तब तक बहता रहता है जब तक वह किसी के अथाह प्रेम-सागर में अपने अस्तित्व को मिटा नहीं देता।

आत्मार्पण या पूर्ण मिलन की यह कामना यह प्यास कई रूपों में अभिव्यक्त होती है। विवाह में उसके सब रूपों का एक साथ समावेश हैं। इसीलिये विवाहित प्रेम को सच्चा प्रेम मानते हैं। विवाहित स्त्री-पुरुष के मिलन को ही पूर्ण मिलन माना गया है। अन्य तरह के मिलन सर्वांगी नहीं होते, आंशिक होते हैं।

आंशिक मिलन में कामनायें अधूरी और प्यासी रह जाती हैं। पूर्ण मिलन तभी होता है जब शरीर, बुद्धि और आत्मा तीनों का इतना प्रगाढ़ मिलन हो जाय कि सब कामनायें पूर्णकाम और सब तरह की प्यास पूर्ण परितृप्ति में बदल जाय।

विवाह का आधार इसी पूर्ण मिलन को सफल बनाना है। संसार का दूसरा कोई भी सम्बन्ध ऐसा नहीं है जिससे मिलन की इतनी पूर्णता की जा सके। मित्र, भाई, पिता, आचार्य कोई भी व्यक्ति स्त्री व पुरुष की इस प्राकृतिक आवश्यकता की पूर्त्ति नहीं कर सकता। इसकी पूर्त्ति केवल पति-पत्नी भाव से संयुक्त स्त्री पुरुष ही कर सकते हैं।

पत्नी बनने के बाद तुम्हें पत्नी बनने के इस लक्ष्य को सदा याद रखना चाहिये। बहुत लोग इस लक्ष्य को भूल जाते हैं। वे विवाह का लक्ष्य अपनी-अपनी आवश्यकताओं के दृष्टिकोण से निश्चित कर लेते हैं। पुरुषों की धारणा हो जाती है कि वे घर, सन्तान और भोग की सुविधाओं के लिये विवाह कर रहे हैं। स्त्रियां समझती हैं कि वे आर्थिक सुरक्षा के लिये पति का आश्रय पा रही हैं। आर्थिक सुरक्षा का महत्व उनकी दृष्टि में इतना बढ़ जाता है कि दिल से नफ़रत करते हुए भी वे किसी से केवल पैसे के लिये शादी कर लेते हैं। ऐसे विवाह कभी सफल नहीं होते।

जन्म भर साथ रहकर जैसे-तैसे निभा लेना ही विवाह का प्रयोजन नहीं है। निभाने को तो दो शत्रु भी साथ रहना निभा लेते हैं। दो जन्म के वैरी पड़ोसी भी जन्म भर पास-पास रह लेते हैं। विवाह की सफलता इस 'निभा लेने' से ही पूरी नहीं

होती। वहां तो शरीर और आत्मा का पूर्ण मिलन होना चाहिये। केवल निकटता होना पर्याप्त नहीं है। उस निकटता में आन्तरिक सुख की अनुभूति होनी चाहिये।

शारीरिक मिलन में सुख की कामना भी विवाहित जीवन की पवित्र कामना है। याद रखो, जिसने तुम्हें पत्नी रूप से पाया है उसने यह प्रण किया है कि वह किसी भी अन्य स्त्री से शारीरिक सम्पर्क की कामना नहीं करेगा। तुमने भी ऐसा ही प्रण किया है। तुम दोनों ने परस्पर शारीरिक प्रेम निभाना है। एक क्षण के लिये नहीं, एक बरस के लिये भी नहीं, जन्म भर के लिये। इसलिये तुम्हारा शरीर उसकी निधि और उसका शरीर तुम्हारी निधि बन चुका है। तुम्हें उसे इतना स्वस्थ रखना है कि वह तुम्हारी निकटता को सदैव सुखद अनुभव करे। तुम्हारा सहवास उसके लिये इतना आनन्दप्रद हो कि वह जन्म भर के सहवास में वही नयापन अनुभव करता रहे जो प्रथम बार किया था। इस आनन्द में उदासीनता नहीं आनी चाहिए।

मेरा अनुभव है कि बहुत-सी स्त्रियां इस सहवास को केवल अनिवार्य पाप मानकर ही निभाती हैं। बचपन से उन्हें ऐसे घुटे हुए वातावरण में रखा जाता है कि वे प्रत्येक शारीरिक आनन्द को वासनाजन्य मानने लगती हैं। पति के प्राकृत प्रेम को भी वे निष्पाप नहीं मानती। यह उनकी संकीर्ण शिक्षा का दोष है। इससे उन्हें मुक्ति मिलनी चाहिये। मुझे आशा है तुम्हें ऐसा मतिविभ्रम नहीं होगा। शारीरिक आनन्द भी यदि स्वस्थ रीति और सामाजिक संस्कृति की रक्षा करते हुए मिलता है तो वह उतना ही अभीष्ट है जितना आत्मिक आनन्द।

पति की तरह पत्नी का भी यह कर्त्तव्य है कि वह शारीरिक मिलन को सुखद बनाने में सहयोग दे। कोई भी

मिलन दोनों के सक्रिय, सोत्साह सहयोग के बिना पूर्ण नहीं हो सकता। यह मिलन दो निर्जीव वस्तुओं का या एक सजीव, दूसरी निर्जीव वस्तु का नहीं है। दो सजीव शरीर व आत्माओं के मिलन में मुक्त भाव से आदान-प्रतिदान होना उचित है। यह संभव नहीं है कि एक पक्ष केवल देता रहे, सक्रिय रहे और दूसरा निश्चल या निर्जीव पत्थर की तरह केवल ग्रहण करता रहे। पति-पत्नी का सम्बन्ध रानी और भिखारी का नहीं। दोनों को समान रूप से सचेष्ट रहना चाहिये और मिलन के आनन्द में उत्साह दिखाना चाहिये।

आदान-प्रदान की इस सहकारिता के लिये शरीर की स्वस्थता आवश्यक धर्म है। स्वस्थ शरीरों का मिलन ही आनन्दप्रद हो सकता है। मिलन के लिये आकर्षण चाहिये। स्वस्थ, निर्मल और सुन्दर व्यक्ति ही एक दूसरे के प्रति आकर्षित होते हैं।

स्वास्थ्य के सम्बन्ध में मुझे कुछ कहने की आवश्यकता नहीं। स्वास्थ्य के साधारण नियम तुम्हें भी मालूम हैं। स्वस्थ मनुष्य का अभिप्राय कसरती पहलवान से नहीं है। निरोग और प्रजनन में समर्थ होना पर्याप्त है। आखिर स्त्री पुरुष के मिलन का सब से महत्त्वपूर्ण प्रयोजन सन्तानोत्पादन है। सन्तानोत्पत्ति को ही मैं विवाह का एकमात्र लक्ष्य नहीं मानता—किन्तु विवाह की पूर्णता के लिये सन्तान का प्रजनन अनिवार्य है। स्वस्थ सन्तान के लिये स्वस्थ माता-पिता का होना ज़रूरी है।

सौन्दर्य भी स्वास्थ्य के साथ ही होता है। मनुष्य का शरीर ईश्वर की सुन्दरतम रचनाओं में से एक है। प्राकृत अवस्था में उसे सुन्दर होना ही चाहिये। जवानी में कोई भी स्वस्थ

शरीर असुन्दर नहीं होता। रोग या अस्वच्छता ही उसे कुरूप बना सकते हैं। सुन्दरता से पहले निर्मलता की आवश्यकता है। सुन्दर से सुन्दर शरीर अस्वच्छ होगा तो आकर्षणहीन हो जायगा। विवाह में शारीरिक निर्मलता और भी आवश्यक है क्योंकि शारीरिक मिलन का सुखकर होना इसी पर निर्भर करता है।

सुकेशी होना सौभाग्य-चिन्ह है किन्तु केशों की यह लम्बाई या चिकनाई ही अखरने लगेगी यदि उनकी जड़ों में मलिनता ने घर कर लिया होगा। सुवासित इत्रों की सहायता से शरीर की मलिनता को धोया नहीं जा सकता। स्वच्छ पानी से धोया हुआ निर्मल शरीर कभी अप्रीतिकर गन्ध का कारण नहीं बन सकता। और बिना धोया शरीर सैकड़ों इत्रों से भी सुवासित नहीं किया जा सकता।

प्रत्येक दम्पति को चाहिये कि वह विवाह से पूर्व स्वस्थ और स्वच्छ रहने के नियमों की जानकारी हासिल करले। उन नियमों के प्रति कभी उदासीन न हो क्योंकि शरीर को प्रतिदिन स्वच्छ रखने की आवश्यकता है। अपने शरीर को मलिन रखकर कोई पत्नी अपने पति की निकटता प्राप्त नहीं कर सकती। जो निकटता दो आत्माओं में अमिट आत्मीयता को जन्म दे देती है—उससे वह वंचित रह जायगी।

शारीरिक मिलन की तृप्ति तभी पूर्ण हो सकती है यदि मानसिक मिलन भी साथ ही हो। मानसिक निकटता शारीरिक निकटता से भी अधिक आवश्यक है। शरीर का आकर्षण हमें कभी प्रेम की गहराई तक नहीं ले जाता। विवाहित स्त्री-पुरुष में मानसिक सामञ्जस्य होगा तभी दो आत्माओं का सच्च

मिलन होगा। तभी विवाह चिरस्थायी होगा और जीवन भर निभ सकेगा।

मानसिक सामंजस्य से मेरा यह अभिप्राय नहीं है कि तुम स्वतन्त्र विचार करना छोड़कर पति के पद-चिन्हों का अन्धानुकरण शुरू कर दो। सामञ्जस्य दो स्वतन्त्र विचारों का ही होता है। स्वतन्त्र अस्तित्व खोकर कोई भी विचार दूसरे के विचारों को तरंगित नहीं कर सकता। विचारों का मिलन भी आदान-प्रदान की गति चाहता है। विचार-विनिमय भी तभी हो सकता है यदि दोनों का विचार-कोष भरपूर हों और दोनों को लेन-देन की पूर्ण स्वतन्त्रता हो।

जिस तरह दो सर्वथा भिन्न शरीरों के प्रेम-भावना से बद्ध मिलन से पूर्ण मिलन संभव है उसी तरह दो सर्वथा भिन्न विचारों का पूर्ण मिलन भी प्रेम-भावना से बँधकर संभव हो सकता है। मानसिक विषमताओं के जुदा २ पुष्प जब प्रेम-भावना के एक ही सूत्र में पिरोये जाते हैं तो जो पुष्पमाला बनती है वह स्त्री-पुरुष के पूर्ण मिलन की अचूक निशानी होती है।

किन्तु, मानसिक विषमताओं को भुलाकर, मतभेदों को आंखों से ओझल करके, हृदय की गहरी सहानुभूति से अपने साथी को अपनाये रखना आसान काम नहीं है। यह भी एक कठिन कला है। बड़ी साधना, सच्चे दिल और उदार विवेक से ही इस कठिन काम में सफलता मिलती है।

मुझे आशा है तुम यह कठिन काम कर सकोगी। तुमने दुनिया का ऊँच-नीच देखा है। अपनी माता का उदाहरण तुम्हारे सामने हैं। कितनी सहिष्णुता है उनमें! तुम्हारे पिता जी जब मनमानी करने पर उतर आते हैं तब भी वह कुछ नहीं बोलती। किन्तु उसका मौन ही क्या पिताजी को सच्चे रास्ते

पर नहीं ले आता? अपने हठ पर थोड़ी देर रहने के बाद वे स्वयं अपना दोष मान लेते हैं। अपने मतभेद को केवल मौन में दिखलाना दूसरे पर बड़ा अच्छा असर करता है।

वाणी के संयम में तुम बड़ी प्रवीण हो। दूसरे की आलोचना में शब्दों का अप-व्यय नहीं करतीं। अपनी बात वहीं कहती हो जहां उसका मूल्य हो। बिना पूछे सलाह नहीं देतीं।

ऊँची शिक्षा ने तुम्हारे स्वभाव में कूट-कूट कर विनय भर दी है। विनय और विचारों की उदारता—ये गुण तुम्हें मानसिक अनुकूलता बनाने में बहुत सहायक होंगे।

एक बात का और खयाल रखना। पति के निजी मामलों में अनावश्यक जिज्ञासा मत दिखलाना। तुम उसकी अर्धाङ्गिनी हो, उसके आधे की अधिकारिणी हो किन्तु इस अधिकार का प्रदर्शन न करना। तुम्हारे अधिकार-प्रदर्शन के बिना भी तुम्हारा साम्राज्य अविच्छिन्न बना रहेगा। और यदि तुम पति के सब कामों में आधे भाग पर दखल देने लगोगी तो तुम्हारी आतुरता तुम्हें अशान्त बना देगी।

मानसिक अनुकूलता का सबसे बड़ा शत्रु अविश्वास है। विवाह की नाव परस्पर विश्वास के सहारे ही चलती है। जहां विश्वास नहीं होगा वहाँ प्रेम नहीं रहेगा। विश्वास अप्रेम को भी प्रेम में बदल देता है।

मानसिक समता का एक और शत्रु है—जिससे दूर रहना। अपने जीवन-साथी से सब गुणों की खान होने की दुराशायें न करना। उनके प्रेम को ही संसार की सबसे बड़ी निधि समझना। उनके गुण-अवगुणों को न तोलना।

पत्र लम्बा हो गया। प्रेम और विवाह का अर्थ तुम अब स्वयं समझने लगी होगी। जीवन की यात्रा में सच्चा साथी

मिलना ही विवाह की चरम सफलता है। ईश्वर से प्रार्थना है कि जो मधुरता आजकल तुम दो आत्माओं के मिलन में भरी है वह कभी रिक्त न हो। जीवन की विषम यात्रा को सरल बनाने के लिये यह मधुरता ईश्वर की देन है।

तुम्हारा हितचिन्तक

....

जीवन साथी

खण्ड : ३

"घर का प्रेम भारतीय नारी का जीवन है।"

—रवीन्द्र ठाकुर

गृह-प्रबन्ध

पत्र १०

सानन्दं सदनं सुतास्तुसुधियः कांता प्रियालापिनी,
इच्छापूर्त्तिधनं स्वयोषितरतिः स्वाज्ञापरासेवकाः,
आतिथ्यं शिव पूजनं प्रतिदिनं मिष्टान्न मानं गृहे ।
साधोः संग्मुपासतेच सततं धन्यो गृहस्थाश्रमः ॥

* * *

जिस आश्रम में, आनन्द भरा घर, चतुर सन्तान, प्रियवादिनी स्त्री, अभीष्ट धन, स्त्री में रति, आज्ञापालक सेवक, अतिथि-सेवा, ईश्वर-पूजा, सत्संग मिले, वह गृहस्थाश्रम धन्य है ।

[गृहजीवन के दायित्व ; भावुकता ही नहीं, निपुणता भी ; विकसित विवेकयुक्त कन्या ही विवाह की अधिकारिणी है; गृह-व्यवस्था भी कला है ; पौष्टिक भोजन का ज्ञान ; घर की स्वच्छता ; घर की सजावट ; अपना काम अपने हाथों करना चाहिए ; घर का मानसिक स्वास्थ्य ; प्रेम ही घर के मानसिक स्वास्थ्य को ठीक रखता है । वाणी का विष ; स्त्री की अध्यात्म-भावना घर की नींव है]

प्रिय कमला,

यह सच है कि प्रेम वैवाहिक जीवन को मधुर बनाने के लिये आवश्यक हैं, प्रेम ही विवाह का मुख्य आधार है किन्तु, विवाह

का प्रयोजन केवल परस्पर प्रेम की प्यास बुझाना नहीं है। विवाह को व्यक्तिगत आवश्यकताओं की ही पूर्त्ति का साधन नहीं माना जा सकता। विवाह की सामाजिक महत्ता है। तभी समाज ने विवाह को स्वीकृति ही नहीं दी सामाजिक महत्त्व भी दिया है। विवाह पर समाज की मुहर लगाई गई। उसकी सुरक्षा के लिये और स्थिरता के लिये विधि-विधान बनाये गये हैं।

विवाह को यह महत्त्व इसीलिये मिला है कि विवाह ही स्त्री-पुरुष को मिलाकर घर का निर्माण करता है। घर पत्थर की दीवारों का नाम नहीं है। स्त्री और पुरुष के सम्मिलित निवासस्थान को ही घर कहते हैं। केवल सम्मिलित निवास भी घर का निर्माण नहीं करता। वह कुछ ज़िम्मेदारियों को आधार मान कर किया जाता है। गृह जीवन के कुछ दायित्वों को निभाने का प्रण लेकर दोनों इस निवास को प्रारम्भ करते हैं। और इस दायित्व को निभाने का व्रत ही दोनों को सम्मिलित रहने की आज्ञा देता है। दायित्वहीन स्त्री-पुरुष के सम्मिलित निवास की आज्ञा समाज के नियम नहीं देते।

परस्पर प्रेम के सहारे ही गृह-जीवन की नाव नहीं चल सकती। अपने हिस्से के कामों को निभाये बिना घर नहीं बन सकता। घर बनाने के साथ ही पति यह दायित्व लेता है कि वह अपनी पूरी योग्यता और शक्ति से घर के खर्चों को पूरा करने योग्य धन का अर्जन करेगा और पत्नी यह ज़िम्मेदारी उठाती है कि वह पूरी शक्ति और योग्यता से घर का प्रबन्ध करेगी। यदि दोनों अपने दायित्व को दिल से निभाते हैं तो घर की शान्ति कभी भंग नहीं होगी।

केवल भावुकता से भी यह दायित्व पूरा नहीं होता। इस

साझेदारी को अच्छी तरह चलाने के लिये दोनों को अपने कामों में निपुण होना चाहिये। पुरुष का काम है धन कमाना, और पत्नी का काम है उस धन का समुचित रीति से विभाजन, घर की देख-भाल, घर की व्यवस्था।

मेरा विश्वास है कि जो लड़की इस बात को ठीक तरह ध्यान में नहीं रखती वह धोखे में विवाह करती है। उसे शीघ्र ही निराश होना पड़ेगा। केवल प्रेम-प्रदर्शन करके या सजी-धजी रहकर अथवा पति की भोगतृष्णा बुझा कर ही तुम पति की जीवन-संगिनी नहीं रह सकती। तुम अब गृहलक्ष्मी हो। गृह-राज्य की रानी हो। पति के जीवन में स्त्री-समागम ही सब से आकर्षक अभीष्ट नहीं है। उसे घर का आराम भी चाहिये, समय पर स्वास्थकर भोजन भी चाहिये और सामाजिक संस्कृति के अनुकूल घर की प्रतिष्ठा भी चाहिये। विवाहित जीवन के प्रारंभिक दिनों में वह इन बातों को भूला-सा रहता है लेकिन, बाद में इनका महत्त्व ही बढ़ता जाता है।

मेरी राय में अब उसी लड़की को शादी करनी चाहिये जिसमें परिवार की शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक स्वस्थता का ध्यान रखने की बुद्धि विकसित हो चुकी हो। घर संभालने और घर के सब काम करने की निपुणता आ चुकी हो। विवाह से पूर्व लड़कियों को ये काम अपनी माता द्वारा सिखाये जाते हैं। पश्चिम के देशों में तो इस कार्य की शिक्षा के लिये विशेष आयोजना भी हो चुकी है। पत्नियों को सफल गृह-पत्नी बनने की शिक्षा के लिये शिक्षणालय खुल गये हैं। लड़कियों को सुन्दर भोजन बनाने, स्वस्थ माता बनने की शिक्षा तक ही इन शिक्षणालयों का क्षेत्र सीमित नहीं है। पत्नियों के

साधारण ज्ञान का स्तर ऊँचा करने का काम भी इन शिक्षणालयों द्वारा किया जाता है।

इन उपयोगी शिक्षाओं में रुचि न लेकर जो स्त्रियां केवल अपने सौन्दर्य को बढ़ाने और वेशभूषा को आकर्षक बनाने की ही कला का अभ्यास करती हैं वे कभी सुखी गृहिणी नहीं बन सकतीं। जो स्त्री केवल अपने बाह्य सौन्दर्य के आधार पर पुरुष से जीवन भर का सौदा करती है वह कम देकर पुरुष से अधिक की उम्मीद रखती है। दान-प्रतिदान प्रायः समान होते हैं। जो जितने की आशा रखता है उतना ही दान करना चाहिये उसे। थोड़ा देकर बहुत की आशा रखना मूर्खता है। अपने रूप के बदले में वे पुरुष से आजीवन साथ की मांग नहीं कर सकती। ऐसी पत्नि से ऊब कर आदमी सचमुच गृहस्थी से विमुख हो जाता है। ऐसा घर सच्चा घर नहीं हो सकता।

घर की व्यवस्था भी कला है। इस कला की साधना नियमित रूप से होनी चाहिये। हर पत्नी को अपनी निश्चित दिनचर्या बना लेनी चाहिये। पत्नी का पति के शय्या-त्याग से पहले ही उठना उचित है। पत्नी के जागरण के साथ सारे घर में फिर से नये जीवन का प्रकाश फैल जाता है। वह सोई रहेगी तो सारा घर सोया रहेगा। कुछ स्त्रियां मसहरी के अन्दर लेटी-लेटी नौकर को आदेश देती रहती हैं। नौकर जब तक सुबह की चाय तैयार करके मेज़ पर न रखदे तब तक श्रीमती जी गरम गदेलों से नीचे पैर नहीं रखतीं।

मेज़ पर आकर जब चाय पीने लगते हैं तो आप शोर मचाना शुरू करती हैं—चाय में पत्तियां बहुत झोंक दीं तूने, खांड में सुसरियाँ चल रही हैं, प्यालियों के अन्दर मैल लगा

है। केटली को बिना धोये ही उसमें उबलता पानी उड़ेल दिया गया था—यह रहस्य तब खुलता है जब कई लाशें केटली के ऊपर तैरती नजर आती हैं। मिलकर चाय पीने का सब आनन्द इसी चीख-पुकार में मिट जाता है।

दोबारा चाय बनाने का आर्डर होता है। इतने में मेज़ पर अखबार आजाता है। पतिदेव अखबार में आँख गड़ा देते हैं। श्रीमती जी भी अखबार की छीना-झपटी में एक पन्ना हथिया लेती हैं। उन्हें सारे अखबार में इतनी ही दिलचस्पी है कि सोने का भाव चढ़ा या घटा ? कई महीने से गले का हार बनाने की सोच रही थीं लेकिन सोने का भाव चढ़ता ही जाता है। इसी चिन्ता में चाय की बात गुम हो जाती है।

चाय के बाद श्रीमती जी या तो शैम्पू की बोतल लेकर गुसल खाने में दाखिल हो गईं या बिजली का आयरन लेकर अपने जम्परों पर अस्तरी करने लगीं। घर में एक ही पायन्ट है। उस पर रेडियो बजा लो या अस्तरी करलो। पतिदेव रेडियो पर नई खबरें सुनने को उत्सुक हैं परन्तु साड़ी-जम्पर पर अस्तरी करना अधिक उपयोगी काम है।

उधर रसोई में नौकर ने अंगीठी में कोयलों की आधी बोरी झोंक दी और शाक-भाजी को बिना धोये छौंक दिया। कीड़े-मकौड़े भी तले गये। उनसे गरम मसालों का काम निकल गया। फिर भी पत्नी को अभिमान है कि वह शाकाहारी हैं। शाक भी ऐसा बनता है जिसके धोने-काटने में तकलीफ़ न हो। हरी सब्जियों या हरी फ़लियों को छीलने में समय लगता है। उन्हें कई बार धोना भी पड़ता है। इसलिए बैंगन, रतालू, सीताफल या आलू की ही सब्जी प्रायः प्रतिदिन बनाई जाती है। दाल भी नौकर ने कनस्तर के अन्दर हाथ डालकर निकाली और मुट्ठी भर के उबलते पानी में उड़ेल दी। कितने झींगुर और कीड़े-मकौड़े उस

मुट्ठी-भर दाल के साथ ही पक गये, इसका ज्ञान किसी को नहीं होता क्योंकि दाल में कड़छी चलाते हुए पतीले का ढ़कना खोलने की किसी को फुरसत नहीं होती। उसे तो जल्दी से काम निपटा कर बाहर बीड़ी पीने जाना है। बीड़ी के झूठे हाथ से वह फिर शाक-भाजी को हिलाने लगता है। कभी कोई मीठी चीज़ पकती हो तो चख भी लेता है।

जिस घर में भोजन बनाने का काम नौकर के ज़िम्मे होगा वहाँ स्वच्छता का ध्यान नहीं रखा जा सकता। वहां स्वास्थ्य के लिये उपयोगी भोजन बनाने की चिन्ता भी नहीं हो सकती। पत्नी को याद रखना चाहिये कि पति का स्वास्थ्य स्वस्थ भोजन करने से ही अच्छा होगा। दवाइयों में सैकड़ों रुपये बहाने के बाद भी वह काम नहीं हो सकता जो पौष्टिक भोजन करने से हो सकता है। हमारे घरों में एक प्रतिशत पत्नियों को भी इसका ज्ञान नहीं है कि स्वास्थ्यप्रद भोजन कौन से हैं, उनको किस विधि से तैयार करना चाहिये, उनके पौष्टिक तत्वों की रक्षा करने के लिये कौन से उपायों का अवलम्बन करना उचित है? सदियों से चली परम्परा को किसी तरह कायम रखकर ही उन्हें पूर्ण सन्तोष हो जाता है। विज्ञानयुग ने भोजनतत्वों में पौष्टिकता की वृद्धि के लिये जो उपाय बतलाये हैं उन्हें जानने की आवश्यकता ही नहीं समझी जाती। पत्नी को इसका पूरा ज्ञान होना चाहिये। आजकल इस ज्ञान की आवश्यकता बहुत बढ़ गई है। पहले ज़माने में घी-दूध की बहार थी। सस्ते में बढ़िया घी और दूध मिल जाते थे। इनमें पौष्टिक तत्व पर्याप्त मात्रा में होते थे। अब निर्मल दूध-घी का मिलना असंभव है। साधारण स्थिति के लोग पर्याप्त मात्रा में उन्हें खरीद भी नहीं सकते। फलों की

महंगाई भी फलाहार का अवसर नहीं देती। शाक-भाजी के चुनाव पर ही हमारे भोजन की पौष्टिकता निर्भर करती है। चुनाव से भी अधिक उन्हें पकाने की शैली पर ध्यान देना चाहिये। प्रचलित पाकविधि बहुत दोषपूर्ण है। पोषकतत्त्व बिलकुल नष्ट करके ही हम शाक बनाते हैं। इसमें परिवर्तन करना चाहिये।

मुझे कई घरों के पतियों ने कहा है कि वह इस ओर पत्नियों का ध्यान दिलाने की कोशिश पिछले १५ वर्षों से कर रहे हैं किन्तु पत्नियां अपनी रीति-नीति में कोई परिवर्तन करने को तैयार नहीं होतीं। बचपन में उन्होंने जो कुछ अपनी मां से सीखा होता है वही उनके लिये अन्तिम होता है। कोई भी नई बात वह सीखना ही नहीं चाहतीं। वैज्ञानिक खोज ने यह सिद्ध कर दिया है कि सन्तुलित भोजन बहुत महंगा नहीं होता। भारत में १० आना प्रतिदिन में भी ऐसे सन्तुलित भोजन की प्राप्ति हो सकती है। पत्नियों को नये वैज्ञानिक प्रयोगों के प्रति दिलचस्पी उठानी चाहिये। शिक्षा का यह लाभ भी वे न उठायंगी तो कौनसा लाभ उठायंगी ?

घर की स्वच्छता और सजावट में भी पत्नी को अपनी कलात्मक रुचि से काम लेना चाहिये। दिन में एक बार स्वच्छता करना आवश्यक है। किन्तु जरूरी नहीं कि वह समय वही हो जिस समय पतिदेव रेडियो सुनने बैठते हैं या कोई स्वाध्याय करते हैं। वह समय या तो सुबह के नाश्ते से पहिले या दोपहर के नाश्ते के बाद का होना चाहिये। स्वच्छता के पीछे दीवाना होना भी ठीक नहीं। बच्चों वाले घर में चीजें बिखरती ही रहती हैं। उनपर कड़ा अंकुश रखने से

उनकी आज़ादी छिन जायगी। वे समझने लगेंगे कि घर से तो स्कूल ही अच्छा, जहां खुलकर बैठने की तो इजाज़त है। स्वच्छता के नाम पर जहां स्वतन्त्र उठने-बैठने पर भी कड़ी पाबन्दियां लगने लगें, वहां घर की स्वच्छता खटकने लगती है।

घर की सजावट करते हुए भी यह ध्यान रखना चाहिये कि घर का शृङ्गार इतना महत्वपूर्ण न हो जाय कि घर में आज़ादी से उठने-बैठने भी मनाही होने लगे। घर तब तक ही घर है जब तक परिवार के सब सदस्य उसमें आज़ादी से रह सकें। शिष्टता का ध्यान तो रहे मगर स्वतन्त्र रहन-सहन का भय न हो, रोकटोक न हो।

सजावट सादगी के साथ ही होनी चाहिये। सामान में एकरसता प्रतीत होना ठीक है। यह न हो दीवारों पर धब्बे लगे हों और परदे रेशमी लटक रहे हों। फर्नीचर तो टूटा-फूटा हो, सोफे का अस्थिपिंजर बाहर निकल आया हो और ग़लीचे की शान उस पर हँस रही हो! ऐसी विषमता घर की सजावट को भद्दा कर देती है। कई घरों में देखा है, चारों ओर कंगाली का राज्य होगा मगर, रेडियो इतना आलीशान होगा कि देखने वाला दंग रह जाय।

सजावट के सामान का विविध रंगों का होना भी अखरता है। पहिले से पूरी रूपरेखा तैयार करके ही सामान खरीदना चाहिये। कुछ घरों में मेज तो मुग़ली ज़माने की याद दिलाती है बाकी सब आधुनिक होता है। जब जो चीज़ पसन्द आई घर में धकेल दी—यह नीति घर की सजावट को बहुत खर्चीला किन्तु ऊटपटांग-सा बना देती है।

सजावट का सबसे बड़ा उसूल यह है कि सजावट की चीजें

भले ही थोड़ी हों, करीने से रखी हुई हों। सब चीज़ों की जगह बनी हो, जहां जी चाहे न रखदी जांय। बच्चों को इस बात का अभ्यास कराया जाय कि वे जो चीज़ जहां से उठायें वहीं रखदें। इधर-उधर किताबें, कपड़े, जूते बिखेर कर न रखें। पत्नी या माता को यह नहीं करना चाहिये कि वह स्वयं चीज़ें समेटती फिरें, उसे तो बच्चों को सिखाना चाहिये। उनमें आत्म-निर्भरता भरनी चाहिए।

•

मैंने कई घरों में देखा है कि बड़े होने तक भी बच्चों को अपने कपड़े संभालने की चिन्ता नहीं होती। माता ही कपड़ों की तह लगाकर रखदे तो रखदे, माता ही उनकी मेज़ को साफ़ करें तो करदें, नहीं तो वे स्वयं कभी अपनी चीज़ों को करीने से रखने की चिन्ता नहीं करेंगे। ऐसे लाड़ों में पले, बिगड़े नवाब कभी अच्छे पति नहीं बनेंगे। उनकी पत्नियों को ही उनके कपड़ों की चिन्ता करनी पड़ेगी।

यह बात तो किसी हद तक निभ भी जायगी लेकिन जहां लड़कियों में यह लापरवाही भर जायगी वहां क्या होगा? पतियों को इतना अवकाश नही होता कि वे अपने और अपनी पत्नी के कपड़ों को संभालते रहें। जिन पतियों को यह दोहरी ज़िम्मेदारी निभानी पड़ती है वे अपने को सुखी अनुभव नहीं करते। पत्नी का वहां उचित सन्मान नहीं होता।

अच्छे भोजन बनाने और सुन्दर सजावट करने तक ही पत्नी की घरेलू ज़िम्मेदारियों का अन्त नहीं हो जाता। यह तो केवल घर के शारीरिक स्वास्थ्य की देखरेख है। घर की पूर्ण स्वस्थता

के लिये घर के मानसिक स्वास्थ्य को भी बनाये रखना चाहिये। शरीर की स्वस्थता मन की स्वस्थता के लिये अनिवार्य है, किन्तु शरीर स्वस्थ होते हुए भी मन अस्वस्थ हो सकता है। धन-धान्य से भरे घरों में भी अशान्ति की आंधी चल सकती हैं। मैंने बहुत से वैभवपूर्ण घरों में श्मशान के शोले दहकते देखे हैं और बहुत-सी रत्नाभूषण-सज्जित गृह-रमणियों का सुहाग उजड़ते देखा है। इसके विपरीत यह भी देखा है कि चार तिनकों से बने घरों का दीपक सदा जगमगाता रहा है और उनकी ग़रीब पत्नियों के ओठों की मुस्कान कभी बुझी नहीं है।

घर की मानसिक दशा गृहपत्नी के मन की दशा का अनुसरण करती हैं। तुम्हारे दिल में सन्तोष होगा तो घर की दीवारें भी हँसती रहेंगी। तुम्हारे दिल में आंधी होगी तो घर का चिराग़ कैसे ही जलेगा। बाहर के आंधी-तूफ़ान से तो तुम उसकी रक्षा कर सकती हो, लेकिन अपने अन्तर की अशान्ति के झोंकों से उसे कैसे बचाओगी?

मन का सन्तोष या ओठों की मुस्कान तुम्हारी आत्मा की सम्पत्ति है। किसी दाम में भी वह बाहर से उपलब्ध नहीं हो सकती। संभव है किशोरावस्था में तुमने सपने लिये हों। अपने भावी जीवन का कल्पित चित्र बनाया हो। सपने किसके पूरे होते हैं। जीवन के अनुभव ने तुम्हें यदि अब तक यही नहीं सिखाया तो तुमने अभी जीवन से कुछ भी नहीं सीखा। ईश्वर ने तुम्हारे भाग्य में जो अनमोल हीरा लिखा था वह तुम्हें मिल गया। उस अपने हीरे को पत्थर और दूसरों के चमकते पत्थरों को भी हीरा समझकर मन ही मन दुखी होगी तो हाथ का हीरा भी पत्थर हो जायगा।

ईश्वर ने तुम्हें स्वस्थ सुन्दर शरीर दिया है, जवानी दी है। तुम्हारे हृदय के तारों में उसने संगीत भरा है। प्रेम के स्पर्श से उसे प्रस्फुटित करने को प्रेमी तुम्हारे द्वार पर भिखारी बनकर खड़ा है। उसकी आराधना स्वीकार करो। अपने मन के मौन तारों से जीवन का गीत निकलने दो। वह सूर्य की पहली किरण बनकर तुम्हारी अधखिली कलियों को खिलाने आया है। उसकी आत्मा के स्पर्श से अपने जीवन-पुष्प का पूर्ण विकास होने दो।

प्रेम ही घर के मानसिक स्वास्थ्य को ठीक रख सकता है। पति से प्रेम लेने तक ही तुम्हारा प्रेम-व्यवहार समाप्त नहीं हो जाता। प्रेम में देना अधिक और लेना कम होता है। पति की कठिनाइयों को समझना, उन्हें आसान बनाने के लिये अपनी सुविधाओं को तुच्छ समझना ही तुम्हारे प्रेम की निशानी है। जिस घर में एक दूसरे की चिन्ता न करके पति-पत्नी अपनी ही चिन्ताओं में व्यस्त हो जाते हैं वहीं कलह होता है। वहीं घर की शान्ति भंग होने लगती है।

तुम्हें गृहस्थी के कामों की चिन्ता है। जहां तक हो सके पति को घरेलू कामों की चिन्ता से मुक्त रखो। बाज़ार से आटे-दाल की खरीद या बच्चों को डाक्टर के पास ले जाने का काम तुम स्वयं कर सकती हो। गृह-कार्यों का यह अभिप्राय नहीं है कि तुम घर की चारदिवारी के भीतर के ही कामों को करो। फिर भी, यदि तुम्हें इस काम में पति की सहायता लेनी है तो उसकी सुविधा देखकर काम करने को कहो। बहुधा होता यह है कि शाम को पति के आफिस के लौटते ही मूर्ख पत्नियां पति के सामने घर भर की समस्यायें लेकर झींखने बैठ जाती हैं। नाश्ते की प्लेट सामने रखी है और पत्नी जी उबल रही हैं—

"आप तो दफ्तर जाकर सोच लेते हैं कि गृहस्थी के सब

काम निवट गये। यहां आटे का काल है। दालें खत्म हो गई हैं। सब्जीवाला आया नहीं। दूध वाले की भैंस बीमार है। दूध लेने किसे भेजूँ ?"

बनिये की दूकान घर से बाहर दस कदम आगे चौराहे पर है और दूसरा दूध वाला भी सौ-पचास गज पर ही बैठता है। लेकिन घर से बाहर निकलने में श्रीमती जी के पैर की मेंहदी उतरती है। हाथ में थैली लेकर बाहिर निकलना उनकी शान के अनुकूल नहीं। प्लास्टिक के चिकने हैंबेडग में आटे-दाल की समाई नहीं हो सकती। इसलिये पतिदेव ही आयेंगे तो घर में आटा आयगा।

बात इतने में ही खत्म हो सकती थी कि 'ज़रा आटा लिवा लाइये दूकान से' मगर, तब श्रीमती जी को अपनी वाक्‌चातुरी दिखाने का मौका कब मिलता। पतिदेव समझाते-बुझाते हैं तो श्रीमती जी कहती चली जाती हैं—

"मुझे तो आप कुछ दिन की छुट्टी दे दीजिये। न दिन को चैन, न रात को चैन। कोल्हू का बैल भी कुछ देर आराम कर लेता होगा। मैं तो बाज़ आई ऐसी गृहस्थी से। मायके जाकर कुछ दिन आराम कर आऊँगी। फिर उम्र भर तेली के कोल्हू में तो पिसना ही है।"

पति सोचता है क्या मैं भी दिन भर कोल्हू में नहीं पिसता। मैं किसे जाकर सुनाऊं अपनी दुख-गाथा ? स्त्री हंसमुख हो तो उसी से दो बात करके दिल बहला ले। लेकिन यहां बोलना तो उबलते तेल की कड़ाही में पानी डालना है।

वाणी पर थोड़ासा संयम रखने की कोशिश से ही पत्नी इस कटुता को दूर कर सकती है। प्रेम का फूल कड़वे शब्दों की लूह में मुरझा जाता है। शब्दों के विष-बुझे बाणों का घाव कभी नहीं भरता। विष से भरा एक भी शब्द घर के सारे

वातावरण को विषाक्त बना देता है। वह ज़हर जीवन-भर नहीं उतरता। विष की गांठें घर-रूपी शरीर में जगह-जगह पड़ जाती हैं।

घर के वातावरण को स्वस्थ बनाने के लिये पत्नी का गृह-प्रबन्ध-कौशल ही पर्याप्त नहीं है, उसकी अध्यात्म भावना भी आवश्यक है। घर के खर्चों के लिये धन की आवश्यकता होने पर भी पत्नी को धन का लोभ छोड़कर धार्मिक भावना में अपना तन मन रंगना पड़ता है। पत्नी को गृह-लक्ष्मी कहा गया है। उसे गहनों से सजाया जाता है। स्त्री को संसारी मोहों का केन्द्र माना गया है। इन कल्पनाओं का आधार सच्चा नहीं है। धन-वैभव की नींव पर सुखी गृह जीवन का निर्माण नहीं होता, पति-पत्नी की आत्मिक शक्ति ही उसका निर्माण करती है। आत्मबल ही घर का अवलम्ब है। जिन पति-पत्नी के बीच आत्मिक प्रेम होगा वही सुखी-सफल गृह-जीवन व्यतीत कर सकेंगे।

घर की व्यवस्था को ठीक रखने के लिये और भी बहुत-सी बातें हैं जो मैं तुम्हें लिखना चाहता हूँ। उन्हें अगले पत्र में लिखूंगा। यह पत्र यहीं समाप्त करता हूँ।

तुम्हारा हितचिन्तक

....

अतिथि सत्कार पत्र ११

अतिथिर्यियत्र भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्त्तते।
स तस्मै पातकं दत्वा पुण्यमादाय गच्छति ॥

* * *

किसी घर से अतिथि जब निराश वापिस जाता है, तब वह घर के पुण्य बटोर कर ले जाता है और वहां पापों की गठरी छोड़ जाता है।

[निष्काम सत्कार का गौरव ; पूर्व और पश्चिम में भेद ; अजनबी का स्वागत, भाग्योदय का कारण ; सात्विक प्रवृत्तियों का प्रतीक ; व्यवहारिक कुशलता ; शिष्टाचार ; पति-पत्नि का परस्पर शिष्ट व्यवहार ; विवाह से पूर्व और पश्चात् ; घर और बाहर में इतना भेद क्यों ?]

प्रिय कमला,

तुम्हें मालूम है, घर हमारे सम्पूर्ण सांस्कृतिक जीवन का अंग बन गया है। वह तुम्हारा आश्रयस्थल या पति की आरामगाह ही नहीं है। उसकी विश्रान्ति में समाज के अन्य लोगों का भी भाग है। मनुष्यमात्र को उस विश्रान्ति की छाया

में कुछ देर विश्राम करने का अधिकार है। घर के उजाले में समाज के अन्य लोग भी कुछ देर प्रकाश पाने का अधिकार रखते हैं।

तभी गृह-जीवन में अतिथि-सत्कार को बड़ा गौरवास्पद स्थान दिया गया हैं। अतिथि का अभिप्राय केवल जान-पहचान वाले बाहरी आदमी या मित्रों सम्बन्धियों से नहीं है। मित्रों व सम्बन्धियों को तो अतिथि कहना ही नहीं चाहिये। वे तो घर के ही आदमी हैं। उनका सत्कार तो पुरस्कार की भावना से भी हो सकता है। वह निष्काम सत्कार नहीं है। अतिथि वह है जिसका नामधाम, जात-पात या ठौर-ठिकाने का भी ज्ञान न हो। वह बिल्कुल अजनबी और विचित्र देश का भी हो सकता है। उसके स्वागत-सत्कार को ही कामना रहित सत्कार कहेंगे। इसी सत्कार का माहात्म्य आतिथ्य के गौरव को ऊँचा उठाता है।

जिन घरों का द्वार केवल स्वजनों के लिये खुलता है उनमें बाहर का प्रकाश बहुत कम पहुँचता है। उनकी ऊंची दीवारें केवल अपने अन्धकार को ही समेटकर रखती हैं। विश्व में व्याप्त असीम प्रेम और सहानुभूति को स्पर्श करती हुई हवा उन घरों के बन्द वातायनों से टकरा कर वापिस आ जाती है।

वे घर ऊंचे पहाड़ों पर बने उन दुर्गम दुर्गों की तरह हैं जो अपने से इतर सभी मनुष्यों पर अविश्वास करके बनाये गये थे। इनकी रचना मनुष्य की पाशविक प्रवृत्तियों को ही प्रमुख मान कर हुई थी। एक मनुष्य ने दूसरे मनुष्य की हिंसक वृत्तियों से अपनी रक्षा करने के लिये इनका निर्माण किया था।

घर के निर्माण का आधार यह भय नहीं होना चाहिये।

घर की दीवारों से प्राचीर का काम नहीं लेना चाहिये। उसके पवित्र वातावरण में मनुष्यों को देवता बनाने की क्षमता है। घर का राज्य आसपास या दूर के सभी सज्जन व्यक्तियों के लिये पवित्र तीर्थ-स्थान के तुल्य होता है।

आज बहुत कम घर ऐसे हैं जो ऐसे अतिथि का सत्कार करते हैं। दुनिया में छल-कपट इतना बढ़ गया है कि आज तो घर का दरवाज़ा खोलते हुए भी गृहिणी को डर लगता है। घरों के दरवाज़ों में एक झरोखा-सा लगा होता है। उस झरोखे में से देखकर जानी-पहिचानी सूरतों के लिये ही दरवाज़ा खोला जाता है। उसके सत्कार की बात तो अलग, उसे पानी तक पूछने का अवकाश नहीं होता किसी को। गृह-पत्नी उसे जल्दी विदा करने की तरकीबें करती है।

हमारी संस्कृति में घर का आदर्श तो यह है कि प्रत्येक गृहस्थ अपने ग्राम या नगर में सबको अन्न-योजना की सहायता देते हुए ही अपनी क्षुधा शान्त करे। गांवों में अब भी यह भावना जागृत है। गांव के हर गृहस्थ को यह ध्यान रहता है कि उनके गांव में कोई भूखा न रहे। अथवा कोई राही बेघर पड़ा सारी रात न काटे। किसी ग़रीब किसान के घर की दहलीज पर बैठा कोई परदेसी भूखा नहीं रह सकता—लेकिन शहर में कुबेरों की ड्योढ़ी पर अन्न के दो दाने के लिये तरसता हुआ परदेसी मर सकता है।

यह अंग्रेजी शिष्टाचार-पद्धति का दोष है। यह प्रणाली किसी भी अनजान आदमी से बात तक करने से रोकती है। उनके अनुसार विधिवत परिचय हुए बिना कोई व्यक्ति किसी भी दूसरे व्यक्ति से बात नहीं करेगा। उसके सत्कार की तो बात ही

अलग है। उनके घरों में बिना निमन्त्रण पाये कोई नहीं जा सकता। निकट के सम्बन्धी भी बिना बुलाये नहीं जायेंगे। और बुलावा भी विशेष अवसर पर ही दिया जायगा।

हमारे देश में अनिमन्त्रित व्यक्ति का भी खुले दिल से सत्कार किया जायगा। घरवाली स्वयं भले ही भूखी रह ले, अतिथि को भूखा नहीं जाने देगी। स्वयं भूमि पर सो लेगी, लेकिन अतिथि को शय्या देगी। यह ठीक है कि आजकल के कठिन दिनों में ऐसा सत्कार बहुत उदारता से नहीं हो सकता—किन्तु उन कठिनाइयों की आड़ में बिल्कुल रूखा और कृपण होना भी ठीक नहीं। आपका अतिथि भी आज की कठिनाइयों को जानता है।

अनजाने अतिथि का सत्कार कई बार आतिथेय का भाग्य बदल देता है। संकट-काल में की हुई निष्काम सहायता अनेक बार कल्पनातीत फल देती है। एक बार एक सज्जन की गाड़ी मेरे मकान के सामने खराब हो गई। रात का समय था। उसने बहुत कोशिश की लेकिन गाड़ी ठीक नहीं हुई। रात इतनी हो गई थी कि पीछे लौटने के लिये भी सवारी नहीं मिल सकती थी। हमने उसे रात भर घर में ही ठहरने और जलपान करके सुबह गाड़ी ठीक होने पर आगे जाने की सलाह दी। वह इस उपकार से इतना कृतज्ञ हो गया कि जाते समय अपना परिचय-पत्र देते हुए बोला "मेरे योग्य कोई भी काम हो तो बतलाइयेगा।" उसके परिचय-पत्र से मालूम हुआ कि वह एक कालेज का प्रिन्सिपल था। बहुत महीनों बाद हमें अपने बच्चे के दाखिले में कठिनाई हुई। उस समय उसके कार्ड की बात

याद आ गई। और हमारा काम हो गया। वह उस उपकार को भूला नहीं था।

यह तो छोटी-सी बात है। कई बार अनजान अतिथि का सत्कार जीवन भर की आजीविका के प्रश्न को हल कर देता है। व्यापार-व्यवसाय में ऐसी मुलाकातें आशातीत लाभ दे देती हैं।

घर में जब किसी अनजाने को सत्कार दिया जाता है तो फल की इच्छा से नहीं बल्कि सत्कार की भावना से ही दिया जाता है। यह सत्कार गृह-जीवन की सात्विक अभिव्यक्ति का एक प्रतीक-सा है। घरेलू जीवन के मूल में जो प्रेम का अक्षय सरोवर भरा है वही इस निःस्वार्थ दान में प्रवाहित होकर बाहर आता है। यह सत्कार करके गृहपति और गृहपत्नि को जो आत्म-सन्तोष मिलता है वही इसका पुरस्कार होता है।

इस सात्विक सत्कार का प्रकाश पहले घर के आसपास पड़ता है। पड़ोस के सभी लोग उस घर की सहायता को तैयार रहते हैं। किसी कृपण के घर चोरी भी हो जाय तो कोई सहायता नहीं करता। उसकी चीख-पुकार सुनकर भी सब बेखबर से सोये रहते हैं। किन्तु सत्कार करने वाले के सभी मित्र बन जाते हैं। वह सब को अपना बना लेता है। यह लोकप्रियता उसके जीवन को समृद्धि के मार्ग में बहुत जल्दी आगे बढ़ा देती है।

इसलिये अतिथि-सत्कार की भावना को हृदय में सदा जागृत रखना। तुम्हारे विवाहित जीवन को सफल और सबल बनाने में यह भावना बहुत महत्त्व का भाग लेगी।

घर की व्यवस्था को सुन्दर रखने के लिये शिष्टाचार का भी ध्यान रखना। शिष्टाचार व्यवहारिक कुशलता का ही दूसरा नाम है। दुनिया के लोग तुम्हारे व्यवहार से ही तुम्हारा मान करेंगे। तुम्हारा ज्ञान या तुम्हारे मन के अन्तर में छिपी सद्भावनायें व्यर्थ हो जायँगी, यदि तुम्हारा व्यवहार उनकी गवाही नहीं देगा। सद्भावनाओं की सार्थकता उनके प्रयोग में ही है।

शिष्टाचार का यह प्रयोग केवल घर से बाहर के लिए नहीं है। उसका प्रारंभ घर में ही होता है। शिष्टाचार में सभ्यतापूर्ण व्यवहार, मधुर भाषण, सुरुचिपूर्ण पोषाक सभी कुछ अन्तर्गत हैं। जिन कोमल भावनाओं और मधुर व्यवहारों से दो युवक हृदयों का प्रेम प्रारंभ होता है उन्हीं से वह प्रेम पनपता भी है। और वही मधुर व्यवहार उस प्रेम को स्थायी बना सकता है।

विवाह की मुहर लग जाने के बाद पति-पत्नी इतने लापरवाह हो जाते हैं कि कोमल अनुभूतियों की तो बात अलग, व्यवहारिक शिष्टता को भी भूल जाते हैं। विवाह से पहले अपने व्यक्तित्व के सबसे आकर्षक रूप को प्रकट करने वाले युवक युवती ही विवाह के बाद अपने निकृष्ट से निकृष्ट रूप को प्रकट करने लगते हैं।

पहले वे बड़े संकोची, संयत, मृदुभाषी और सौंदर्य के उपासक बनते थे। अब वही फूहड़, मुंहफट और गलीज़ बन जाते हैं। और आश्चर्य यह है कि तब भी उन्हें यह समझ नहीं आता कि उनके विवाहित जीवन में वह रस नहीं है जिसके स्वप्न उन्होंने कौमार्य-जीवन में लिये थे।

यह उदासीनता दोनों पक्षों को घेर लेती है। स्त्रियाँ दिन भर मैले-कुचैले कपड़े पहिने रहती हैं। साज-सिंगार की पोटली तभी खुलती हैं जबकभी बाहर जाना हो। घर में रूखे बाल किये और अटपटी पोषाक पहने सारा दिन बिता देती हैं। साड़ी पर साक-भाजी पड़ी है तो पड़ी रहे। जम्पर की धज्जियां उड़गई हैं तो उड़ जांय। हाथों से प्याज-लहसुन की बदबू आती है तो आती रहे। अब उन्हें किसी की नजर में अच्छी लगने की इच्छा ही नहीं रही। किसी को रिझाने की तमन्ना ही निकल गई। पहिले इत्र से नहाती थीं, अब साबुन से नहाना भी छोड़ दिया। स्वच्छता के नियमों से भी बेपरवाह हो गईं।

यही लापरवाही बातचीत में है। जो जी में आया बक दिया। खरी-खरी सुना दी। संयत भाषा का प्रयोग ही भूल गईं। पढ़ा-लिखा चूल्हे में गया। संस्कारिता ताक में रख दी। गालियों तक नौबत आगई। पतिदेव भी अपने सब गुण भूल गये। घर से बाहर उन्हें शिष्ट व्यवहार के सब नियमों का ध्यान आजाता है किन्तु घर में प्रवेश करते ही वह अपने भद्दे से भद्दे रूप में आजाते हैं।

बाहर की पोषाक बदलते ही फटी पुरानी, मैली पोषाक पहन ली। नहीं तो चिथड़े-चिथड़े हुई गंजी पहने ही घूम रहे हैं। कमर में मैला तौलिया लपेट लिया है। शरीर की स्वच्छता को तो कब का भुला चुके हैं। दाढ़ी बढ़ आई है। खाना खाते हुए कुहनियों तक सारा हाथ दाल भाजी में लपेट लिया है।

सुबह उठे हैं तो ९ बजे तक आँखों की गीड़ साफ नहीं की। रूखे बालों को सँवारने का कष्ट तो किया ही नहीं। घर का नौकर भी उन से अधिक बन-सँवर कर रहता है।

स्त्री से कभी कोमल शब्दों में बातचीत की हो, यह याद नहीं आता। शायद बातचीत किये हुए भी जमाना गुजर गया। साथ बैठकर खाने में अपमान समझते हैं। उसके दिल की व्यथा को जानने का कभी कष्ट नहीं किया। सहानुभूति के दो वाक्य भी नहीं कहे। अपने साथ घूमने ले जाने में शर्म आती है। कभी ले भी जाते हैं तो वह बिचारी १० कदम पीछे रेंगती आती है। पति-देव अकेले आगे आगे चलते हैं।

कहां तक गिनायें? किसी व्यवहार में भी तो शिष्टता का ध्यान नहीं रखा जाता। अशिष्टता की जीती-जागती मूर्त्तियां देखनी हों तो किसी भी घर का दरवाजा खोल लीजिये। ऐसा लगता है जैसे दो असभ्य, जङ्गली स्त्री पुरुष को एक पिंजड़े में बन्द कर दिया हो। उनकी आंखों में साधारण संकोच और लज्जा भी नहीं रहती। मनोवैज्ञानिक अध्ययन करने वाला उन दोनों के बीच तीव्र घृणा का परदा देख सकता है।

आश्चर्य यह है कि साधारण शिष्टाचार के नियमों का दोनों को खूब ज्ञान होता है। इसलिये उन नियमों की ओर तुम्हारा ध्यान दिलाने की आवश्यकता नहीं है। आवश्यकता इस बात की है कि दोनों अपने मन में अपने पुराने प्रेम के नाम पर नहीं तो अपने कुल की मर्यादा, अपनी संस्कारिता के नाम पर ही उन नियमों का पालन शुरु करदें।

मैं विश्वासपूर्वक कह सकता हूँ कि यदि रसमी तौर पर भी वे दोनों शिष्टाचार के नियमों का पालन शुरू करेंगे तो उनके जीवन में रस आयगा और यह भी संभव है कि उनका पुराना प्रेम फिर नये रूप में प्रकट हो सके।

तुम्हारा हितचिन्तक

....

धनोपार्जन और व्यय-व्यवस्था पत्र १२

नात्मानव मन्येत पूर्वाभिरसमृद्धिभिः,
आमृत्योः श्रियमान्विच्छे नैनां मन्येतदुर्लभाम् ॥

* * *

परंपरागत संपत्ति प्राप्त न होने पर भी अपने को निर्धन न मानो। आमरण धन-प्राप्ति के लिये प्रयत्नशील रहो। उसे दुर्लभ मानकर निश्चेष्ट मत बैठो।

[स्त्रियों की आर्थिक पराधीनता ; दिन-रात की गुलामी; स्त्रियों की सेवा का अनादर; विवाह—भागीदारी का व्यापार; अपव्यय का आरंभ कैसे होता है ? बचत का मूलमन्त्र; पत्नी की तृष्णा; पत्नी के मन में स्वार्थ का बीज; योजनाहीन व्यय का परिणाम]

प्रिय कमला,

तुमने पत्र में लिखा है कि "हमारे बीच मामूली बातों पर कभी कलह नहीं होता। एक दूसरे की भावनाओं का हम पूरा आदर करते हैं। हमें एक दूसरे से सच्चा प्रेम है, किन्तु कई बार रुपये-पैसे के मामले में कुछ ऐसी अड़चनें आ खड़ी होती हैं कि उनका

हल नहीं सूझता। घर की व्यवस्था मेरे हाथ है, लेकिन आर्थिक स्वतन्त्रता न होने से मेरे हाथ बंधे हुए हैं। कई बार इतनी लाचारी महसूस होती है कि जी चाहता है या तो उनके हाथ ही घर का प्रबन्ध सौंप दूं या खुद कमाकर ही घर की व्यवस्था करूं।"

यह समस्या तुम्हारी ही नहीं, दुनिया भर की स्त्रियों की समस्या है। और शायद सृष्टि के आदि से चली आई है, सृष्टि के अन्तिम दिन तक रहने के लिये। यही नहीं, इसतरह की सब बातें—जिनका हल केवल मध्यम मार्ग पर चलना है—सदा समस्या के रूप में ही रहेंगी। उनका कोई भी अचूक समाधान नहीं है। प्रतिदिन अपनी विवेक बुद्धि से पति-पत्नी को मिलजुलकर उनका हल करना होगा।

तुम्हारी लाचारी को मैं खूब समझ सकता हूँ। तुम्हें अपने पति से जो कुछ मिलता है घर के खर्चों में चला जाता है। निजी खर्च के लिये तुम्हारे पास कुछ नहीं बचता। कभी किसी सहेली के पास जाना होता है तब भी पति की आज्ञा लेकर जाना पड़ता है। इसलिये नहीं कि उन्हें सहेली के पास जाने में आपत्ति है, बल्कि इसलिये कि आने-जाने में रुपया-दो रुपया खर्च होंगे। इस अतिरिक्त व्यय के लिये तुम्हें पति के सामने हाथ पसारना पड़ता है।

यह मोहताजी अकेले तुम्हारी नहीं है। यह इसलिये भी नहीं है कि तुम्हारे पति की आय बहुत मामूली है। मैंने बड़े संपन्न घरों में भी पत्नियों को पैसे-पैसे के लिये तरसते देखा है। जैसा जी में आये खर्च सकें, इस तरह का कोई निजी धन उनके पास नहीं होता। घर भर में, उनके पास अपने गहने के अलावा,

ऐसी कोई नकदी नहीं होती जिसे वह अपना कह सकें। उनके ट्रंकों में बीसियों कीमती साड़ियां होंगी, सैंडिल के जोड़े होंगे लेकिन अगर उन्हें बाज़ार से अपने मन की आठ आना मूल्य की एक पुस्तक भी खरीदनी होगी तो पड़ोसी से आठ आने उधार लेने पड़ेंगे।

पतिदेव चाहेंगे तो उन्हें सैकड़ों की साड़ियां ला देंगे—लेकिन वे चाहेंगी तो एक रूमाल भी अपनी पसन्द से नहीं खरीद सकेंगी। आसपास के मित्रों या दूकानदारों से उधार मांगने के अतिरिक्त उनके पास कोई चारा नहीं होगा।

विवाह दो समकक्ष स्त्री-पुरुष के साहचर्य से होता है। जहां एक को अपने अधिकार से एक पाई भी खर्च करने की स्वतन्त्रता न हो वहां समकक्षता कहां रह सकती है? इस अवस्था में पत्नी का काम खरीदे हुए ग़ुलाम का सा रह जाता है। पत्नियों को घर का कठोर से कठोर काम करना पड़ता है। काम के घंटों की मर्यादा भी नहीं होती। दूकान या कारखाने के मज़दूर भी निश्चित समय तक ही काम करते हैं। पत्नी की ग़ुलामी २४ घंटों की है। उसके काम में कुछ दिनों के विराम की गुंजाइश भी नहीं। पतिदेव अवकाश पर होंगे तो काम का भार दुगना हो जायगा। कभी कभी मां के घर जाकर उन्हें कुछ विराम मिलता है। किन्तु वहां भी बूढ़ी मां के कामों का भार कम नहीं होता।

दुख यह है कि इतने कठोर परिश्रम के बाद भी उसकी कोई नैतिक या वैधानिक स्थिति नहीं मानी जाती। विधान भी उन्हें 'आश्रित' मानता है। वैधानिक परिभाषा में उनकी गणना बच्चों के साथ 'आश्रित वर्ग' में ही होती है।

इस अपमान को धोने के लिये कुछ पत्नियां स्वयं धनोपार्जन

में लगने का विचार करती हैं। यह विचार प्रायः विचार तक ही सीमित रहजाता है। पहले तो उन्हें अपने पतिदेव की स्वीकृति नहीं मिलती। फिर, स्त्रियों के लिये धन कमाने के रास्ते भी बहुत कम हैं। पुरुषों ने धन कमाने का काम अपने हाथों में लिया हुआ है। स्वतन्त्र रूप से आजीविका कमाने का मार्ग स्त्रियों के लिये बड़ा पथरीला मार्ग है।

जहां स्त्री कमाकर लाती है वहां भी आधे की हिस्सेदारी प्राप्त नहीं कर पाती। पुरुषों की मानसिक अवस्था ऐसी होगई है कि वे स्त्रियों की आय का कोई भी भाग लेना अपने पौरुष पर कलंक समझते हैं। यदि दोनों की आय को एक ही जगह रखकर घर का खर्च चलाया जाय तो भी कई क्रियात्मिक कठिनाइयां आती हैं। पुरुष अपनी आमदनी को एकमात्र व्यापारिक कार्यों में ही लगाना चाहता है। व्यापारिक जीवन के मित्रों के स्वागत-सत्कार में भी कुछ खर्च करना पड़ता है। सङ्कट काल के लिये भी बचाना चाहिये। इन सब की व्यवस्था का निर्णय पुरुष अपने हाथ में ही रखेगा। स्त्री के हाथ में इस निर्णय का अधिकार नहीं देगा।

इस पेचीदा समस्या का हल केवल पुरुष की विवेक बुद्धि पर आश्रित है। उसे पत्नी की सेवाओं के प्रति कृतज्ञ होना चाहिये। मां-बहन और पत्नी के रूप में स्त्रियां पुरुष की जो सेवा करती हैं उसका कुछ भी पुरस्कार स्त्री को नहीं मिलता। हम अपने वीर पुरुषों की स्मृति में ऊंचे-ऊंचे स्मारक बनाते हैं किन्तु उनकी सफलता के लिये स्वयं को मिटा देने वाली पत्नियों का नाम तक नहीं लेते। पत्नियों के बलिदान को याद दिलाने वाली एक भी मूर्त्ति हमने स्थापित नहीं की। स्मृति-चिन्ह बनाना तो दूर, हम कभी उनकी सेवाओं के प्रति कृतज्ञता भी प्रकाशित नहीं

करते। कभी प्रशंसा के दो शब्द भी पति के श्रीमुख से नहीं निकलते।

पुरुष की कृतघ्नता इस हद तक पहुँच गई है कि हम स्त्रियों को निजी खर्चों के लिये थोड़ा-बहुत स्वतन्त्रतापूर्वक खर्च कर लेने का अधिकार भी नहीं देते। यह अन्याय की पराकाष्ठा है। प्रत्येक पत्नी को घर के खर्चों के अलावा जेब-खर्च का पैसा अवश्य मिलना चाहिये। पति की आय पर पति का ही नहीं सम्पूर्ण परिवार का अधिकार है। आय थोड़ी हो या बहुत, जिस तरह पति को अपने जेब-खर्च की ज़रूरत है, पत्नि को भी है। पति अपने परिवार के पोषण के लिये परिश्रम करता है तो पत्नी भी तो पति का पोषण करने के लिये तन-मन से मेहनत करती है। वह पति को परिश्रम के योग्य बनाती है—ठीक उसी तरह जिस तरह सेना का रसद-विभाग या परिचर्या-विभाग युद्ध में गये अगले दस्तों को युद्ध करने के योग्य बनाता है। घायलों की सेवा करता है। पिछले महायुद्ध में ब्रिटेन के प्रधान मन्त्री मि० चर्चिल प्रायः कहा करते थे कि "ब्रिटेन का युद्ध जर्मनी के रणांगन में ही नहीं बल्कि ब्रिटेन के कारखानों में लड़ा जा रहा है।" कौन नहीं जानता कि युद्ध की सफलता का श्रेय सैनिकों को ही नहीं देश के मजदूरों को भी मिला था। वे युद्ध-सामिग्री बनाने में तन मन नहीं लगाते तो सैनिक कुछ भी नहीं कर सकते।

विवाह की आर्थिक कठिनाइयों को दूर करने में भी पुरुष का उतना ही भाग है जितना युद्ध के मैदान में गये सैनिकों का होता है। इससे अधिक की मांग करना पतियों की ज़्यादती है। विवाह भी एक भागीदारी का व्यापार है। दोनों भागीदारों

को अपने काम पर गर्व होना चाहिये और यह समझना चाहिये कि एक दूसरे की सहायता के बिना यह व्यापार नहीं चल सकता।

जो पति इस सचाई को भूल जाते हैं उन्हें अपनी पत्नियों से भी सच्चे सहकार की आशा नहीं रखनी चाहिये। पत्नी भी उनकी भावनाओं का आदर करना छोड़ देती है। पति की अयुक्तियुक्त कृपणता पत्नियों को फिजूलखर्च बना देती है। मितव्ययी होने का जब उन्हें कोई इनाम नहीं मिलता तो वे बेपरवाह अपव्ययी हो जाती हैं। वे सोचने लगती हैं कि सारी कंजूसी वे अपनी ही जान पर क्यों करें? पति का खर्च शाही ढंग से हो रहा है। पति के मित्रों पर भी सैकड़ों स्वाहा हो रहे हैं। उसे एक-एक पैसे के लिये हाथ पसारना पड़ता है। संकट-काल के लिये उसके पास एक पाई भी जमा नहीं है। तब वह या तो लापरवाह हो जाती है या छल-कपट से अपने पास कुछ पूंजी जमा करने के निमित्त दांव-पेच शुरू कर देती है। कौन स्त्री कौन से मार्ग को ग्रहण करेगी यह उसके स्वभाव पर निर्भर करता है।

कुमुद के पति को १०००) रुपये मासिक मिलता है। किन्तु कुमुद के हाथ कभी १०) का नोट भी नहीं रहा। पतिदेव कभी-कभी दफ्तर जाने से पहले २) दे जाते हैं। वे शाकभाजी के काम आते हैं। बाकी सब खर्चों का हिसाब पतिदेव स्वयं करते हैं। नौकर की तनखाह भी पतिदेव देते हैं। उसकी नियुक्ति भी उन्हीं के हाथ है। परिणाम यह है कि नौकर कुमुद की बात नहीं मानता। उसे घर में कुमुद की स्थिति अपनी स्थिति से बेहतर नहीं लगती। वह जानता है कि वह एक वेतनभोगी नौकर है और कुमुद अवैतनिक नौकरानी। शायद अपने दर्जे को ही वह ऊंचा समझता है।

एक हज़ार रुपया पानेवाले की पत्नी होकर भी वह भिखारिन से ज्यादा नहीं। रोज़ मांगकर ही उसे घर के खर्च चलाने पड़ते हैं। पहिले तो उसे हाथ पसारने में संकोच होता था। अब संकोच छोड़ दिया है। मांगने पर ही कमर कस ली है। जितनी देर पतिदेव घर में रहते हैं मांगने का क्रम जारी रहता है। और मांगती भी पांच के पचास है। नौकर को भी खुले हाथ देती है। वह बीच में रुपये दो रुपये खा ले तो भी परवाह नहीं करती। उसकी जेब से तो नहीं जाता। बच्चे के एक सूट की जरूरत है तो दस के लिये ज़िद करती है। अपने लिये साड़ी की मांग आये दिन पेश कर देती है। यहीं से अपव्यय प्रारम्भ होता है।

उसे मालूम है जो वह हाथ से खर्च कर लेगी उसी में उसका भाग है। बचत से उसे कुछ भी नहीं मिलेगा। बचत के धन में उसका कोई भाग नहीं होगा। बचत में भाग रखने का एक ही उपाय है—गहने बनवा लो। किसी न किसी बहाने गहनों की मांग चालू रहती है। पतिदेव यह नहीं कह सकते कि गहनों लायक पैसा नहीं है। क्योंकि तब पतिदेव को अपनी आय का ब्योरा देना पड़ेगा। उन्हें अपने खर्चों का हिसाब पेश करना पड़ेगा। पत्नी के सामने हिसाब देना वह अपनी शान के अनुकूल नहीं समझते। हिसाब कभी रखा ही नहीं। जितना आया खर्च कर लिया। दावतों में उड़ा दिया। उन दावतों का हिसाब पत्नी को कहां तक बतायें। आखिर उसका मुख बन्द करने के लिये गहने बनवाने पड़ते हैं। अन्दर—बाहर दोनों ओर अपव्यय चल पड़ता है। बाहर मित्रों की दावतों में और घर में गहनों में। नतीजा यह होता है कि संकट-काल के लिये कुछ बचता नहीं। रोगी होने पर भी कर्ज़ लेकर डाक्टरों के बिल चुकाने पड़ते हैं।

इसके विपरीत—सुधा का पति केवल ३५०) कमाता है। जो कुछ लाता है सुधा के हाथ में दे देता है। सुधा मितव्ययिता से खर्च करके २०) २५) रुपये बचा लेती है। गहनों की उसने कभी मांग नहीं की, साड़ी के लिये पैसे नहीं मांगे—क्योंकि जो कुछ बचता है उसमें उसका भाग है। वह जानती है कि गहनों की सूरत में रुपया रखने की बजाय सरकारी कागज़ में रुपया लगाना लाभप्रद है। १०-१२ साल में वह धन डेवढ़ा हो सकता है। गहनों की रकम तीन-चौथाई रह जायगी।

सुधा को पुरानी साड़ी पहनने में भी आपत्ति नहीं। उसका सन्तोष नई साड़ी में नहीं बल्कि उस सुरक्षा में है जो उसे मितव्ययिता से बचाये धन से मिलती है।

सुधा समझदार स्त्री है। कुमुद मूर्ख है। किन्तु सुधा को समझदार और कुमुद को मूर्ख उनके पतियों ने ही बनाया है। जिस घर में स्त्री को पति की आय में पूरी तरह भागीदार नहीं बनाया जायगा वह घर सदा अशान्त रहेगा। कोई भी स्त्री स्वभाव से फिजूलखर्च नहीं होती। गहनों का प्रेम भी उनमें प्राकृत नहीं है। पतियों की अहंमन्यता और कृपणता ही पत्नियों में ये दुर्गुण पैदा कर देती है। ऐसी पत्नियां पति की जेब से रुपया निकलवाने की नई-नई तरकीबें सोचा करती हैं। सब से पहले वह अपने रूप-यौवन को ही हथियार बनाती हैं। पति को रिझाने के लिये आवश्यकता से अधिक शृंगार करने लगती हैं। सच जानना—आजकल की पत्नियों के अतिशय शृंगार के पीछे प्रायः यही भावना छिपी होती है। कितना पतन है? कितनी लज्जा की बात है। किन्तु, यह सच है। सोलह आना सच है।

जवानी के दिन ढलने के बाद इन स्त्रियों के हाथ, सन्तान के प्रति पति का प्रेम हथियार बन जाता है। बच्चों की आवश्यकताओं को बढ़ा-चढ़ा कर वे पति की जेब से मनमानी रक़म लिया करती हैं। उनका यही विचार होता है कि बच्चे पर व्यय हुए धन में उनका भी भाग रहेगा। ऐसी ही स्त्रियां हैं जो लड़के-लड़कियों की शादियों में अधिक से अधिक रुपया खर्च करने पर पति को मजबूर करती हैं। मुझे ऐसे घर मालूम हैं जहां पति को ज़मीन-जायदाद बेच कर भी पत्नी की इस मांग को पूरा करना पड़ा है। कर्ज़े के भारी बोझ से दबकर भी उन्हें यह धन खर्च करना पड़ता है।

यह सन्तान-प्रेम नहीं स्वार्थ है। बच्चे के नाम पर अपनी झूठी प्रतिष्ठा को कायम करने का नीचतापूर्ण कार्य है। मुझे ऐसे पतियों पर दया आती है। किन्तु, यह भी उनके ही मूर्खता-पूर्ण कामों का परिणाम है। यदि वे पहले ही अपनी आय में पत्नी को भागीदार बना लेते तो यह अपव्यय नहीं होता।

मैं ऐसे अनेक पतियों को जानता हूँ—जो सन्तान की शिक्षा, शादी आदि अवसरों पर पत्नि का दबाव मान कर शक्ति से अधिक व्यय करने के बाद कंगाल हो गये हैं। वृद्धावस्था में उन्हें सन्तान का आश्रय लेना पड़ा जो सन्तान की शादी के बाद इतना अपमानजनक हो गया कि उन्हें आत्महत्या करके ही शरीर का अन्त करना पड़ा।

कुछ दिन पहले बम्बई में एक ६० साल के वृद्ध ने समुद्र में डूबकर मरने का निश्चय किया था। पुलिस ने उसे समुद्र से निकाल लिया। आत्महत्या का कारण पूछने पर अदालत में उसने बताया कि अपने पुत्रों को सब कुछ देने के बाद वह केवल उनसे १०-१० रुपया माहवार लेता था। पुत्रों ने वह रक़म

देनी भी बन्द कर दी। पुत्रों की इस कृतघ्नता पर वह दुखी होकर मरना चाहता था।

वृद्धावस्था में पति-पत्नी का इस तरह मोहताज होना ठीक नहीं। उन्हें अपने पास कुछ धन अवश्य संचित करके रखना चाहिये। संपूर्ण संचय को सन्तान की शादी पर लगवा देना प्रायः माता की इच्छा से होता है। बहुत-सी स्त्रियां मां बन कर पत्नी की ज़िम्मेदारियों को भूल जाती हैं। वे सन्तान की अनुचित मांगों को पूरी करने के लिये भी पति को भारी संकट में डाल देती हैं। पत्नी-प्रेम मातृ-प्रेम के आगे झुक जाता है।

इन अवस्थाओं में भी प्रायः स्वार्थ की ही प्रेरणा होती है। माता समझने लगती है कि पुत्रों का अवलम्ब पति के अव-लम्ब से अधिक पुष्ट है। उसे बूढ़े पति से विरक्ति हो जाती है। वह समझने लगती है, जिस व्यक्ति ने उसे जवानी में अपना सच्चा भागीदार नहीं बनाया; अपनी कमाई का हिस्सा खुशी-खुशी नहीं दिया वह बुढ़ापे में क्या देगा। अपने पुत्रों पर उसका भरोसा बढ़ जाता है। यह स्वाभाविक भी है। किन्तु यह बात पति-पत्नी के लिये बड़ी दुर्भाग्यपूर्ण है। इस दुर्भाग्य से बचने का उपाय पति के ही हाथ में है। उसे अपनी कमाई को अपना ही नहीं समझना चाहिये। उस पर स्त्री का भी पूरा अधिकार है। वह साझे की कमाई है। दोनों को मिल कर उस आय के उचित व्यय का प्रबन्ध करना चाहिये।

व्यवस्था वहीं हो सकती है जहां पहले से योजना बनाई जाय। आमदनी के उचित तरीके ढूंढने में जितना परिश्रम किया जाता है उससे एक चौथाई भी यदि उस आमदनी के खर्चे की योजना बनाने में कर लिया जाय तो इस समस्या का हल

स्वयं हो जाय। आमदनी कम हो या अधिक योजनापूर्वक ही उसके व्यय की व्यवस्था होनी चाहिये।

योजनाहीन व्यय का परिणाम यह होता है कि कई बार हम आवश्यक खर्चों में भी कमी कर देते हैं और अनावश्यक खर्चों में रुपया बहा देते हैं। मितव्ययिता भी कला है। कुछ लोग थोड़ी आमदनी में भी अमीरी ढंग से रह लेते हैं। और कुछ लोग उससे दूनी आमदनी में भी कंगाली का जीवन बिताते हैं। अपनी रुचि और परिस्थितियों को देखकर हर घर में व्यवस्था बननी चाहिये। जो इस व्यवस्था बनाने के योग्य न हों वे विवाहित जीवन के अयोग्य हैं। उन्हें विवाह करना ही नहीं चाहिये।

हमारे घरों में ऐसी अव्यवस्थित स्त्रियों व पुरुषों की संख्या कम नहीं है। मैं जानता हूँ, ऐसी सैकड़ों स्त्रियां है जिनकी अलमारियां कीमती साड़ियों से भरी हुई हैं लेकिन उन्हें यही शिकायत है कि आज पहनने की साड़ी नहीं सूझती। हज़ारों रुपये की आमदनी है लेकिन मौके पर डाक्टर की फीस अदा करने को रुपया नहीं मिलता। ऐसे भी आदमी है जो वेतन मिलने के पांच दिन बाद कंगाल हो जाते हैं। सारा महीना कर्ज़ लेकर बिताना पड़ता है।

ऐसे अव्यवस्थित चित्त के स्त्री-पुरुष कभी विवाहित जीवन को सफल नहीं बना सकते। आर्थिक सुव्यवस्था सफल विवाह का आधारभूत गुण है।

तुम्हें चाहिये कि अपने पति को इस व्यवस्था का महत्त्व समझाओ। उनके मन में तुम्हारे प्रति सच्चा प्रेम होगा तो वे तुम्हारी बात को कभी नहीं टालेंगे।

मितव्ययिता के लिये मैं फ्रैंकलिन का एक वाक्य दोहराना पर्याप्त समझता हूं : "Beware of little expenses, a small leak will sink a great ship" छोटे खर्चों में मितव्ययी होओगी तो बड़े खर्चे खुद बच जाएंगे।

तुम्हारा हितचिन्तक

....

स्त्रियाँ और धनोपार्जन पत्र १३

[यह व्यवस्था का प्रश्न है, सिद्धान्त का नहीं ; धनोपार्जन का मार्ग बहुत पथरीला है ; धनोपार्जन और तुम्हारा व्यक्तित्व ; ऊँचे रहन सहन की लालसा विघातक है ; स्वयंजीवी पति पत्नी के जीवन में कड़वापन । पुरुष के स्वाभिमान पर ठेस ; नवीन आश्रयों की खोज । पत्नी के लिए यह सम्भव ही नहीं.......; विवाह स्वयं व्यवसाय है । पति के व्यवसाय में यथाशक्ति सहयोग दो ;]

प्रिय कमला,

पिछले पत्र में तुमने एक बहुत महत्वपूर्ण प्रश्न पूछा है; क्या पत्नी को स्वतन्त्र रूप से धन कमाने का कोई अधिकार नहीं ?

मालूम होता है तुम पति की परिमित आय से सन्तुष्ट नहीं हो। तुम्हारे मन में ऊँचे रहन-सहन की इच्छा जाग गई है। जिस मकान में तुम रहती हो वह शायद उतना भव्य नहीं, जितना तुम्हारी बहन का है। उसमें नये ढंग का बाथरूम नहीं है। ड्राइंग रूम के लिये तुम बढ़िया सोफा लेना चाहती हो। चाय की प्यालियां उतनी सुन्दर नहीं है जितनी बड़े होटलों में होती हैं। साड़ियां भी कई बरस से तुम नहीं ले पायीं। वही विवाह वाली पुराने फैशन की साड़ियाँ अभी तक चल रही हैं। अब नये फैशन के बार्डर और 'प्रिन्ट' आ गये हैं। तुम उन्हें

बड़ी दूकानों के 'शो केस' में देख आई हो। तुम्हारे पति की आय में से तुम इतना नहीं बचा पाती कि ये सामान खरीदे जा सकें। इसलिये अपनी आय भी चाहती हो।

ऊँचे रहन-सहन की इच्छा बहुत स्वाभाविक है। आखिर मनुष्य इस ऊँचाई तक पहुँचने के लिये ही स्वास्थ्य की चिन्ता छोड़कर भी दिन रात पिसता है। तुम्हारे पति वकील हैं—कचहरी में भली बुरी बात सुनते हैं—रात को देर तक बैठे मोटी-मोटी किताबों से माथा भिड़ाते हैं। किसलिए? ऊँचे रहन-सहन के लिये ही तो। ऊँचे रहन-सहन की इच्छा ही हमारी सभ्यता की सब से बड़ी प्रेरणा है। भौतिकवाद में यही मनुष्य जीवन का सबसे पवित्र आदर्श है। मैं इसका मान करता हूं। तुम्हारे मन में भी यही आदर्श जागा है। तुम भी ज़माने के साथ जीना चाहती हो। यह जीवन की निशानी है। अपनी अवस्था से तुम्हें असन्तोष है। तुम उस अवस्था को उन्नत करने में सहायक बनना चाहती हो। पति के काम में हाथ बटाना चाहती हो। यह इच्छा भी बड़ी स्वाभाविक प्रतीत होती है। सहकारिता की इच्छा ही विवाह की मूल भावना है।

फिर भी तुमने मुझ से पूछा है। तुम्हें सन्देह है कि इस कार्य में समाज की अनुमति नहीं मिलेगी। संभव है तुम्हारे पतिदेव ने भी सहमति न दी हो। उन्होंने कहा होगा :—

"मुझे ऊँचे रहन-सहन की भूख नहीं। मेरे लिये यह सीधा-सादा घर ही स्वर्ग है। तुम इस घर की रानी हो। मैं नहीं चाहता कि तुम धन कमाने की कशमकश में पड़ो। तुम्हारा फूलसा कोमल शरीर इस संघर्ष में कुम्हला जायगा। संसार के छल-कपट तुम्हारे दिल को मसोस कर रख देंगे।"

तुम्हारे मनमें आया होगा कि तुम्हारे पति कोमलता की झूठी दुहाई देकर तुम्हारे स्वतन्त्र-धनोपार्जन के अधिकार को छीनना

चाहते हैं। वे भी दूसरे स्वार्थी पतियों की तरह तुम्हें घर की दासी बनाकर रखना चाहते हैं। तुम्हारा मन विद्रोही हो उठा होगा। तुमने सोचा होगा तुम भी पढ़ी लिखी हो। कमा सकती हो। माता पिता ने पढ़ाई में हजारों रुपये खर्च किये हैं। तुमने रातों जागकर अपने को शिक्षित बनाया है। क्यों न इस योग्यता का उपयोग किया जाय। पुरुष लोग इससे बहुत कम योग्य होने पर भी इतना कमा लेते हैं और गर्व से सिर ऊँचा करके रहते हैं। मैं भी वैसा ही करूँगी। पति को मुझ पर अंकुश रखने का कोई अधिकार नहीं है.......आदि आदि।

मुझे पत्र लिखने से पहिले ही यदि तुम अपने मन में कुछ निश्चय कर चुकी हो, तो भी मैं तुम्हारे प्रश्न का उत्तर दूंगा। धन कमाने का तुम्हें अधिकार है। घर की गाड़ी चलाने के लिये यदि यही एक मार्ग रह गया है तो इसमें भी हानि नहीं। किन्तु घर की भलाई के मार्ग का निश्चय तुम्हारे और पति, दोनों की सलाह से होना चाहिये। विद्रोह से नहीं। अन्यथा इस विद्रोह का बड़ा दाम चुकाना पड़ेगा। विद्रोह किसी सिद्धान्त के प्रश्न पर ही सजता है। तुम्हारे धनोपार्जन का प्रश्न तो व्यवस्था की सुविधा का प्रश्न है; सिद्धान्त का नहीं। निरे व्यवस्थात्मक प्रश्न को इतना तूल देना ठीक नहीं।

घर की व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाने के लिये हमारे पुरखों ने सोचा था कि पुरुष और स्त्री अपनी २ योग्यतानुसार कार्य विभाजन करलें। किसी भी हिस्सेदारी के कार्य में अधिकार क्षेत्र का बटवारा आवश्यक होता है। जो भागीदार जिस विभाग के काम में अधिक योग्य होता है उसे वही विभाग सुपुर्द कर दिया जाता है। इस विभाजन का अभिप्राय यह नहीं

होता कि वह हस्तान्तरित विभागों के संचालन में असमर्थ है बल्कि यह होता है कि वह उनकी अपेक्षा अपने अधीन के कामों में विशेष दक्षता रखता है। पुरुष की प्राकृत शक्तियां उसे धनोपार्जन या बाहरी कामों के अधिक योग्य बनाती हैं। स्त्री की प्राकृत शक्तियाँ उसे घरेलू कामों को संभालने के, अपेक्षाकृत अधिक योग्य बनाती हैं।

यह विभाजन समाज के औसत स्त्री-पुरुष की योग्यताओं को देखकर किया था। इसमें अपवाद भी हो सकते हैं। इसका बिल्कुल विपर्यय भी हो सकता है। जिन घरों में सेवक रसोइये होते हैं वहां स्त्री की अपेक्षा पुरुष सेवक ही अच्छी रसोई बना सकते हैं। स्त्रियां भी लड़ाई के मैदान में तलवार चलाने वाली हुई हैं। साम्राज्यों का संचालन उनके हाथ में रहा है। किन्तु उन उदाहरणों को अपवाद ही मानना पड़ेगा।

तुम भी अपवाद बनकर कोई अनोखा काम करने की हिम्मत रखती हो तो कोई शक्ति तुम्हें रोक नहीं सकती। किन्तु केवल ऊँचे रहन-सहन की इच्छा इतनी बड़ी प्रेरणा नहींहै कि तुम अपवाद बनने का यत्न करो। तुम्हारे इस यत्न से घर के कार्यों में जो विभाजन निश्चित हो चुका है वह भंग हो जायगा। तुम्हें अपना काम घर के नौकरों पर छोड़ना होगा। अथवा तुम्हारे पति को उनकी चिन्ता करनी पड़ेगी। अपनी व्यवसायिक चिन्ताओं के साथ एक चिन्ता और बढ़ जायगी। मनुष्य की शक्तियां तो परिमित ही होती हैं। वकालत व्यवसाय को उत्कर्ष देने में जो समय और शक्ति का व्यय होता है वह जब घर के काम में लगाना पड़ेगा तो व्यवसाय को क्षति अवश्य पहुँचेगी।

मुझे निश्चय है कि उस क्षति की पूर्त्ति तुम अपने धनोपार्जन के प्रयत्न से नहीं कर सकोगी। आजीविका कमाना उतना आसान नहीं जितना तुम समझती हो। केवल ऊँची पढ़ाई के

बल पर धन कमाने का दावा भरती हो। यह भ्रम है। धन संग्रह की पाठ विधि विश्वविद्यालयों की पुस्तकों में नहीं है। अपनी शिक्षा के बल पर ही तुम धनोपार्जन नहीं कर सकोगी।

यह धन कमाने का रास्ता इतना पथरीला है कि सचमुच तुम्हारे पति के शब्दों में तुम्हरी फूलसी देह कुम्हला जायगी। हो सकता है तुम देह की चिन्ता न करो। अनथक परिश्रम के लिये कमर कस लो। लेकिन आजकल धनोपार्जन परिश्रम से नहीं, टेढ़े-तिरछे रास्तों से होता है। इन रास्तों पर चलना बरसों के अभ्यास से आता है।

तुम्हारे लिये वे रास्ते अभी बिल्कुल अनजाने हैं। तुम्हारी आत्मा उन पेचीदा रास्तों पर चलने की गवाही नहीं देगी। यह संघर्ष तुम्हारी कोमल भावनाओं को नष्ट कर देगा। तुम्हारे पति को यही भय है। वे अपने जीवन-साथी में आत्मा की कोमल अनुभूतियों का उत्तम भंडार चाहते हैं। उनका नाश होने पर तुम्हारा नारीत्व, तुम्हारा मातृत्व नष्ट हो जायगा। चाँदी के कुछ टुकड़े पाकर भी तुम अपने वास्तविक धन से कंगाल हो जाओगी।

धनोपार्जन की आत्मनिर्भरता तुम्हारे अन्दर आत्मविश्वास और आत्मप्रतिष्ठा के भावों की वृद्धि करेगी—यह धारणा भी अविचार पूर्ण है। पति द्वारा अर्जित धन में भी तुम्हारा उतना ही स्वामित्व है जितना घर के स्वामित्व में पति का है। इस स्वामित्व को तुमने भीख मांगकर नहीं लिया—अधिकारपूर्वक लिया है। समाज तुम्हारे इस अधिकार को मानता है। पति

भी मानता है। तब तुम्हें अपने अधिकार में सन्देह क्यों होता है ? कुछ पति यह अवश्य समझते हैं कि वे स्त्री को आश्रय देकर भिक्षा देते हैं किन्तु समाज ऐसे पतियों को अच्छा नहीं समझता। कुछ पत्नियां भी तो ऐसी हैं जो पति को घर की सुविधायें देकर बड़ा उपकार किया मानती हैं। यह मानसिक अवस्था केवल विकृत व्यक्तियों की है।

तुम तो बहुत समझदार हो। यह न समझो कि तुम्हारे व्यक्तित्व का विकास केवल तुम्हारी कमाने की योग्यता से होगा। धनोपार्जन की योग्यता मनुष्य के व्यक्तित्व-निर्माण में इतना भाग नहीं लेती जितना उसके अन्य मानवीय गुण। स्त्री का व्यक्तित्व सफल पत्नी और माता बनकर ही पूर्णता को प्राप्त होता है।

स्वयं धन कमाकर ऊँचे रहन-सहन की लालसा ने हमारे कई घरों में अशान्ति की आंधी चलादी है। मेरे एक मित्र हैं 'नरेश'। उनकी पत्नी का नाम तो था सावित्री पर प्यार से वह उसे 'सावी' कहकर बुलाया करते थे। विवाह के बाद दोनों ने मिलकर प्यार का घोंसला बनाया। अपने घर को वह इसी नाम से याद करते थे। सचमुच वह प्यार का घोंसला था। तिनकों से बना घोंसला संगमरमर के पत्थरों से बने किलों से अधिक सुन्दर होता है। उस घोंसले में जलता हुआ प्यार का दीपक राजसी प्रसादों के झाड़ फानूस से ज्यादा प्रकाश देता है।

कई वर्ष प्यार का यह दीपक आंधी झोकों के आघात से बिना डोले जलता रहा। लेकिन, एक दिन नरेश के मित्र ने 'सावी' के मन में ऊँचे रहन-सहन की इच्छा का विष भर

दिया। 'सावी' के कंठ में कोयल की झंकार थी। उसने रेडियो में गाकर धन और यश पैदा करने का प्रलोभन दिलाया।

'सावी' का नाम अखबारों में छपा। उसके सुरीले गाने पर 'हज़ारों' के सिर झूम गये। 'सावी' को पैसा भी मिला और यश भी। नरेश ने पत्नी की इच्छा में रुकावट नहीं डाली। 'सावी' भी नियमित रूप से पैसा लाने लगी। सजावट ऊँचे दर्जे की हो गई। नये ढंग का फ़र्नीचर आगया। परदों की शोभा से घर जगमगा उठा। 'सावी 'उन्हें देखकर फूली नहीं समाती थी। लेकिन नरेश की आंखों में उदासी थी। उसके 'अहंभाव' पर ठेस पहुंची थी। उसे अपनी असमर्थता पर दुःख था। उन नए परदों और नये फ़र्नीचर को जब भी वह देखता था तो यही अन्तर-ध्वनि आती थी कि "तू अपनी गृहस्थी का भार उठाने के भी योग्य नहीं। घर के खर्चों को चलाने में भी पत्नी का सहारा ले रहा है।"

'सावी' जब बाहर से आती थी तो रेडियो स्टेशन के डायरेक्टर और अन्य गायकों की चर्चा करती थी। नरेश को अपनी बातें कहने का अवसर ही नहीं मिलता था। कई बार 'सावी' को रेडियो स्टेशन से लौटने में देर हो गई तो नरेश को खुद ही खाना बनाना पड़ा। कई बार घर में अकेले चुपचाप बैठा रहता। यह अकेलापन बड़ा खतरनाक है। इस अकेलेपन के लिये जीवन का साथी ढूंढ़ा जाता है। साथी होने पर भी यह अकेलापन निभाना पड़े तो विवाह की व्यर्थता सामने आ जाती है।

पुरुष थका हुआ घर आता है। किसी के प्रेम में दुनियाँ की ऊँच-नीच और सफलता-असफलता के संघर्ष को भूल जाना

चाहता है। एकछत्र राजा की तरह घर में वह अपने मन की जिन्दगी बिताना चाहता है। यह अभिमान पुरुष के मनका भोजन है। इसकी पूर्त्ति भी होनी ही चाहिये।

यह अभिमान तभी पूरा होता है जब पुरुष को यह अनुभव हो कि उसके पुरुषार्थ से ही घर का काम काज चल रहा है। अपने भाग के दायित्व को पूरा कर सकने का सन्तोष उसे अवश्य होना चाहिये। स्त्री को भी अपने भाग को पूरी तरह निभा सकने का सन्तोष आवश्यक है। किन्तु बाँहिर के कामों में लगकर स्त्री भी अपने गृह जीवन के उत्तरदायित्व को नहीं निभा सकती।

दोनों का ही मन असन्तुष्ट रहने लगा। दोनों अपने को अपराधी मानने लगे। दिलों का संबध टूट गया। बात बात में ताने बाजी होने लगी। जीवन में अजीब रूखापन छा गया। एक थकान सी भर गई नस-नस में। दोनों ही थके रहते थे।

•

तब दोनों ने अपने आसपास के साथियों में आसरे की तलाश की। नरेश की मित्रता हो गई उसके ही कालेज में काम करने वाली एक स्त्री 'मीरा' से और 'सावी' को सहारा मिला रेडियो के स्टेशन डायरेक्टर का।

'सावी' एक दिन जरा देर से आई। घर में आकर देखा कि मीरा सितार लेकर बजा रही थी। नरेश कुछ गुनगुना रहा था। दोनों खोये से बैठे थे। सावी को देख कर दोनों चौंक गये।

'मुझे आपके रङ्ग में भङ्ग करने का दुःख है' कहकर सावी ने व्यंग किया।

नरेश ने भी उत्तर दिया—'क्यों ? क्या डायरेक्टर साहब के साथ कुछ देर और बैठने की इच्छा थी ?'

बात बढ़ गई। नौबत यहां तक आगई कि नरेश ने सावी को छोड़ दिया। 'मीरा' से विवाह कर लिया। शादी के बाद 'मीरा' ने अध्यापन कार्य छोड़ दिया था। उसके इस त्याग ने नरेश को और भी प्रभावित किया था।

यह उदाहरण अकेला नहीं है। शायद ही कोई पत्नी स्वयं कमाकर प्रसन्न हुई हो। अच्छा यही है कि ऊंचे रहन-सहन का लालच छोड़कर पत्नी पति की कमाई में ही सन्तोष करे। अन्यथा उसका धनोपार्जन घर के विनाश का कारण बन जाता है।

सच तो यह है कि पत्नी के घरेलू काम ही इतने अधिक होते हैं और उनमें इतनी तन्मयता की आवश्यकता होती है कि उसे घर से बाहिर जाने का अवकाश ही नहीं होता। कामों की अधिकता न हो तब भी घर में पत्नी की उपस्थिति अनिवार्य हो जाती है।

यदि वह किसी बाहर के काम से धनोपार्जन करना चाहती है तो उसे अपना पूरा ध्यान उस काम में देना होगा। व्यवसायिक जीवन भी सफलता के लिये पूरी शक्ति की आकांक्षा रखता है। आधे दिल से तो छोटा से छोटा काम भी पूरा नहीं होता। पत्नी के लिये यह संभव ही नहीं है कि वह गृह-जीवन के दायित्वों को निभाते हुए बाहिर के काम कर सके। यदि कोई पत्नी यह उद्योग करती है तो वह दोनों को अधूरा करती है। उसे कोई भी काम पूरा करने का सन्तोष नहीं मिलता।

आफिस में ४-५ घन्टे बैठकर टाइप कर देना या टेलिफोन की तारें जोड़ देना आदि कुछ काम ऐसे अवश्य हैं जो शिशुहीन मातायें नियत समय पर कर सकती हैं क्योंकि इन कामों में तन्मयता की कोई आवश्यकता नहीं। किन्तु, किसी भी दायित्वपूर्ण रचनात्मक कार्यों में पूरी तन्मयता की आवश्यकता होती है। ऐसे कामों की सफलता में ही मानसिक सन्तोष मिलता है। इन कामों में लगी स्त्रियों की संख्या शायद अंगुलियों पर गिनी जाने योग्य होगी।

•

मेरा तो विश्वास है कि किसी भी उद्योग-धन्धे में कोई भी लड़की उसी को अपना जीवन-व्यवसाय बनाकर नहीं लगती। विवाह से पूर्व योग्य वर मिलने तक का समय बिताने के लिये ही वह उसमें लगती है। मैं अपने देश की ही बात नहीं कहता। अमेरिका या युरोप में भी यही होता है। विवाहित जीवन ही उनके लिये सर्वश्रेष्ठ जीवन-व्यवसाय होता है। मैं ऐसी सैकड़ों लड़कियों के जीवन से परिचित हूँ जो केवल समय-यापन के लिये उद्योग-धन्धों में लगी हैं। वे उस दिन की ही प्रतीक्षा में हैं,जब कोई योग्य आदमी उनसे शादी करके घर में बसाएगा। अपने काम से उन्हें विशेष प्रेम नहीं है।

इसका यह अभिप्राय नहीं कि पत्नी को घर के बाहिर के कामों में दिलचस्पी ही नहीं लेनी चाहिये। अथवा घरेलू कामों के अलावा किसी काम में हाथ नहीं डालना चाहिये। घर के दायित्व को निभाते हुए यदि वह अपनी रुचि के किसी काम को

घर बैठकर ही कर सकती है तो अवश्य करे। पति के काम में सहायता कर सकती है तो सबसे अच्छा है।

तुम भी अपने पति के काम में सहायता करो। उनकी फाइलों को तरकीब से जोड़कर या उनके दस्तावेजों को टाइप करके उनका हाथ बटा सकती हो। दूसरों के दफ्तर में जाकर यही काम करने से घर में ही क्यों न करो।

तुम्हारा हितचिन्तक

....

रति सुख　　　　　　　　　　　　पत्र १४

कुसुम धर्माणो हि योषित: सुकुमारोपक्रम:
स्त्रियां स्वभाव से फूलों के समान कोमल होती हैं।

प्रजनार्थं स्त्रिय: स्रष्टा: सन्तानार्थंच मानवा: ॥
पुरुष और स्त्री के विवाहित जीवन का उद्देश्य प्रजोत्पादन ही है।

पाशविक विषय-वासना के अर्थ किया हुआ विवाह अपवित्र सम्बन्ध है।

—गांधीजी

प्रिय कमला,

तुमने अपने पिछले पत्र में लिखा है कि, "मैंने कहीं पढ़ा है 'स्त्रीणामष्टगुणा: काम:'—स्त्री में पुरुषों की अपेक्षा आठ गुणा कामेच्छा अधिक होती है—स्त्रियों का जीवन ही उनके काम संबन्धी जीवन की सफलता पर निर्भर है। मुझे तो ऐसा अनुभव नहीं होता। मेरा अनुमान है पुरुषों ने यह लिखकर स्त्रियों पर व्यर्थ ही लांछन लगाया है। मुझे तो पुरुष में ही अधिक कामा-

तुरता प्रतीत होती है। आप खूब सोच समझ कर इसका उत्तर दीजिये। कहीं मैं अन्य स्त्रियों से पृथक् तो नहीं हूँ। संभव है मेरी ही प्रकृति असाधारण हो।"

डरो मत। तुम असाधारण नहीं हो। तुम्हारी प्रकृति भी अन्य स्त्रियों के ही समान है। 'स्त्रीणामष्टगुणः कामः' का अर्थ यदि यह है कि स्त्रियों में रति सुख पाने की इच्छा आठ गुणा होती है, तब मैं इस बात से सर्वथा असहमत हूं। मेरी निश्चित धारणा है कि १०० में से ८० प्रतिशत विवाहित स्त्रियां ऐसी होती हैं जो रति सुख को विशेष महत्व नहीं देतीं। और उन ८० में से भी ५० प्रतिशत जरूर ऐसी हैं जो प्रजनन क्रिया में सर्वथा निष्क्रिय रहती हैं—उदासीन रहती हैं। और कुछ तो ऐसी भी हैं जो इससे अरुचि भी रखती हैं।

यह अवस्था केवल हमारे देश की स्त्रियों की ही नहीं है। हमारे देश में लड़कियों पर माता-पिता का कठोर अनुशासन रहने तथा स्त्री को पुरुष से हीन समझने के कारण यह धारणा और भी प्रबल हो गई है कि स्त्रियों को रति सुख से सर्वथा उदसीन रहना चाहिये। किन्तु अन्य देशों की स्त्रियां भी इस धारणा की शिकार हुई हैं।

आज से लगभग ६० वर्ष पूर्व इंग्लैण्ड के प्रमुख चिकित्सक डाक्टर एकशन (Doctor Action) ने, जो उस समय स्त्री-पुरुष सम्बन्धी मनोविज्ञान का भी विशेषज्ञ माना जाता था यह लिखा था: "The majority of women happily for society, are not much troubled with sexual feelings." अर्थात्, सौभाग्य की बात है कि हमारे देश की बहुसंख्यक स्त्रियां ऐसी हैं जिन्हें कामेच्छा कभी सताती ही नहीं।"

आधी शताब्दी पूर्व सभी विचारकों का यही मत था। स्त्रियों के मन में रति सुख की इच्छा का जागृत होना पाप

समझा जाता था। उनका धर्म यही समझा जाता था कि वे केवल पति की कामेच्छा को शान्त करने के लिये आत्मार्पण करें। अब उन विचारों में परिवर्त्तन आ गया है। किन्तु, वह परिवर्त्तन केवल विचारों में है। क्रिया में अभी तक वही धारणा काम कर रही है। हमारे देश की निरक्षरता ने इसे और भी विकृत रूप दे दिया है। अशिक्षित समाज में आज भी विवाह के उपरान्त पत्नी को केवल समर्पित होने का अधिकार है। इच्छा करने की स्वतन्त्रता केवल पति को है। परिणाम यह होता है कि पुरुष की निष्ठुर प्रवृत्तियां स्त्री को बिल्कुल उदासीन और निष्क्रिय बना देती हैं। पति स्त्री की भावनाओं को जब बार-बार कुचलता है और आक्रान्त करता है, तब स्त्री में रति कार्य के प्रति विरक्ति के भाव आ जाते हैं।

कोक के 'रति रहस्य' में यही भाव प्रकट किये गये हैं—

"सहसा वाप्युपक्रान्ता कन्या चित्तमविन्दता
भयं त्रासं समुद्वेगं सद्यो द्वेषं च गच्छति"

अर्थात् पुरुष के निष्ठुर व्यवहार से कन्या का मन भय उद्वेग और विरक्ति के भावों से भर जाता है। वह पुरुष, द्वेषिणी भी हो जाती है। एक अंग्रेज लेखक Wills ने इन्हीं भावों को व्यक्त करते हुए लिखा है:—

"So brutal are men that they very often drive their chaste and ignorant young wives from them for ever by raping them on their bridal night."

अर्थात् पुरुष ऐसे पशु होते हैं कि वे पहली रात की भेंट में ही पवित्र पत्नी से बलपूर्वक भोग करके उसके मन में सदा के लिये 'भोग' के प्रति विरक्ति पैदा कर देते हैं।

यह विरक्ति आज की पत्नियों की बहुत बड़ी समस्या बन गई है। इसका उपाय तो केवल यह है कि विरक्ति के कारणों

को दूर किया जाय। पति अपनी पत्नी की भावनाओं का मान करे, कोमल उपचारों से उसकी स्वीकृति प्राप्त करे। उनकी चर्चा प्रसंग आने पर करूंगा। यहां तो तुम्हारे प्रश्न का उत्तर देते हुए यही बात दोहराता हूँ कि 'स्त्री में रति सुख की इच्छा पुरुष से आठ गुणा अधिक होती है' यह बात सर्वथा झूठ है।

स्त्रियों की कामेच्छा को अतिरंजित करके पश्चिम के आधुनिक विचारक भी बहुत-सी असम्बद्ध बातें कह गये हैं। फ्रायड मनोविज्ञान का बहुत बड़ा विचारक हुआ है उसने स्त्रियों की मनोवैज्ञानिक विशेषताओं का उल्लेख करते हुए अन्त में लिखा है:—

"That is all I had to say to you about the psychology of women. You must not forget however that we have only described women as far as their natures are determined by their sexual function. The influence of this function is of course very far reaching, but we must remember that an individual woman may be a human being apart from this".

सारांश यह कि: "मैंने अभी तक स्त्री का मनोवैज्ञानिक अध्ययन करते हुए उन्हीं अवस्थाओं का जिक्र किया है जहां उनकी प्रकृति का निरूपण उनके प्रजनन-कार्य से होता है। इस कार्य का प्रभाव बहुत गहरा है—किन्तु यह स्मरण रखना चाहिये कि कोई स्त्री इस प्रभाव से रहित...अपवाद रूप भी हो सकती है।"

मेरा विश्वास है कि फ्रायड ने स्त्री की प्रकृति के निरूपण में प्रजनन-कार्य को अनावश्यक महत्त्व दिया है। और इसके प्रभाव से रहित स्त्रियों को 'अपवाद' कहकर भी भूल की है।

उनका कहना है कि इसका प्रभाव बहुत गहरा होता है। 'प्रजनन कार्य' का अर्थ यदि केवल संयोग के क्षणिक कार्य से है तो मैं उनके कथन से सर्वथा असहमत हूं। स्त्री-प्रकृति के निरूपण में उस कार्य का बहुत कम महत्त्व है।

फ्रायड के विचार से सहमत होने का अर्थ यह होगा कि विवाहित पति-पत्नी का सुख केवल रति सुख पर आश्रित है। और यह भी कि रति-कार्य की परितृप्ति से ही पति-पत्नी की मानसिक अनुकूलता बनती है।

पश्चिम के अन्य कई विचारक भी यही मानते हैं। उनका कथन है "The root of love is sex" अर्थात् 'यौन-आकर्षण ही प्रेम का मूल है।' भारतीय दृष्टिकोण इसके सर्वथा विपरीत है। हमारा विश्वास है कि मानसिक अनुकूलता का ही विवाह में अधिक महत्त्व है। उसके साथ काम संबन्धी जीवन में स्वयं अनुकूलता आ जायगी। कुछ नये मनोवैज्ञानिक भी इसी मत के हो गये हैं। उनके सामने ऐसे बहुत उदाहरण हैं जिनसे स्पष्ट है कि स्त्री के मन में पुरुष के प्रति प्रेम होगा तभी वह रति-कर्म में सुख अनुभव करती है, अन्यथा नहीं। तुम चाहो तो ऐसे सैकड़ों उदाहरण 'Psychology of sex' पुस्तक में पढ़ सकती हो।

इन पुस्तकों को पढ़ने के बाद मेरा यह विश्वास और भी दृढ़ हो गया है, कि स्त्री का हृदय भोग नहीं प्रेम चाहता है। हमारे स्मृतिकारों ने जब यह लिखा था: "स्त्रीणामष्टगुणः कामः" तब भी उनका अभिप्राय 'काम' शब्द से भोग कामना या विलास से नहीं होगा-अपितु प्रेम की कामना से होगा। आज भी बहुत लोग हैं जो विवाहित प्रेम को केवल भोग या विलास मानते हैं। उन्होंने ही उपर्युक्त वाक्य का

अनर्थ कर डाला। 'स्त्री में पुरुष की अपेक्षा आठ गुणा अधिक प्रेम है' यह बात मेरे विचार से सच है।

उसके जीवन में प्रेम की महिमा निर्विवाद है। उसका विकास ही प्रेम में होता है। जीवित रहने के लिये आवश्यक भोजन की प्राप्ति या अन्य अल्पतम प्रसाधनों की पूर्त्ति होने के बाद पुरुष का मन लोकेषणा की ओर प्रवृत्त हो जाता है किन्तु स्त्री का मन केवल प्रेम की ओर झुकता है। प्रेम की प्रवृत्ति दोनों में है किन्तु स्त्री में उसकी प्रधानता है। प्रकृति ने स्त्री के जीवन का कार्यक्रम ही ऐसा बनाया है कि वह प्रेम की परिधि से बाहर नहीं जा सकती। अभी वह अपनी आयु का एक चौथाई हिस्सा भी नहीं गुज़ारती कि उसकी गोद अपनी सन्तान से भर जाती है। माता बनकर उसे सारी उम्र सन्तान का भरण-पोषण करना पड़ता है।

यह मातृत्व ही उसके स्त्रीत्व का चरम लक्ष्य है। इसकी रहस्यमयी पुकार ही उसमें पुरुष-प्रेम का बीज बोती है। मानसिक विकारों से पराभूत होकर नहीं बल्कि निर्माण की इच्छा से प्रेरित होकर ही वह पुरुष प्रेम की उपासना करती है। पुरुष को देवता मानती है और आत्मा की संपूर्ण भावनाओं के साथ समर्पित होती है।

इस समर्पण में वासना की मलिन छाया देखने वाले अपने दृष्टि-दोष को दूर करने का प्रयत्न करें तो अच्छा है।

विवाह को भोग का आज्ञापत्र कहना विवाह की सम्पूर्ण कल्पना को विषाक्त बनाना है। पति-पत्नी के बीच केवल दैहिक भोग की इच्छा उसी तरह दूषित है जिस तरह अन्य स्त्री-पुरुष के बीच भोगेच्छा। जब दो आत्माएँ मिलकर एकात्म होती हैं तब भोग की इच्छा स्वयं निर्मूल हो जाती है। यह बात मैं भावुकतावश नहीं कह रहा। मनोवैज्ञानिक सत्य भी

यही है। भोग में शोषण की कामना का अंश है। आत्मिक मिलन में शोषण के विपरीत केवल प्रतिदान है। दोनों परस्पर विरोधी भावनाएँ हैं।

भोग वहीं होता है जहाँ भोक्ता और भोग्य में विषमता हो। कोई भी मनुष्य अपना भोग नहीं करता। अपने से प्रेम तो सब को होता है किन्तु भोग की भावना नहीं होती। जो वस्तु अपनी आत्मा के निकट आती जायगी उसके प्रति भोग की इच्छा कम होती जायगी क्योंकि वह निकट आते हुए अपनी ही आत्मा का अंग बनती जायगी।

जर्मनी के जग-विख्यात विचारक फ्रिट्ज़ ने इस सम्बन्ध में बहुत विचारपूर्ण बात कही है:—

"The experience of sex with the self as object is weaker and less electrifying. Not that we love ourselves less, but we do not experience ourselves as sexually differentiated"

अर्थात्—मनुष्य के लिये आत्मरति का अनुभव विशेष उत्तेजक नहीं होता। इसका कारण यह नहीं है कि हमें अपने से अनुराग नहीं—बल्कि यह है कि हमें अपने ही व्यक्तित्व में यौन-आकर्षण योग्य विभिन्नता का अनुभव नहीं होता।"

यौन आकर्षण के लिए पर्याप्त विभिन्नता की अपेक्षा है। भोगेच्छा भी परकीय वस्तु की ही तीव्रतम होती है। वह वस्तु जितनी निकट आती जाती है—भोग का आकर्षण उसके प्रति कम होता जाता है। जब वह इतनी निकट आ जाय कि दूरी का अनुभव ही न रहे—तब भोग का आकर्षण रह ही नहीं सकता। पति-पत्नी के रूप में भी स्त्री-पुरुष की एकात्मता हो जाती है। अतः उनका परस्पर वासनाग्रस्त होना दूषित ही नहीं अप्राकृत भी है।

इसका यह अभिप्राय नहीं कि पति-पत्नी का शरीर-संग होना ही बुरा है। दोनों जीवन-संगी हैं। यह कैसे संभव है कि उनका शरीर-संग बुरा है। शरीर और आत्मा से दोनों एक दूसरे के हो चुके हैं। इस निकटता को बनाए रखना उनके जीवन का अंग हो गया है। इस निकटता को कोई दूषित नहीं कह सकता।

पुरुषों की भावना प्रायः यह रहती है कि भोग के लिये निकट आते हैं, प्रेम की प्रेरणा से नहीं। स्त्री प्रेम की निकटता चाहती है। उसे प्रेमपूर्ण अन्य व्यवहारों का सुख भी उतना ही तृप्ति जनक है जितना रति सुख। उसके प्रेम में एकरसता है—तारतम्य है। उसके स्वभाव में भावनायें ही प्रधान कार्य करती हैं। वह सम्पूर्ण भावनाओं से पुरुष को प्रेम करती है। पुरुष को चाहिये कि वह उसकी कोमल भावनाओं का मान करते हुए ही उसका प्रेम प्राप्त करे।

हमारी प्राचीन पुस्तकों में लिखा है "कुसुम धर्माणो हि योषितः"—स्त्रियां फूलों के समान होती हैं। उन्हें अपने निष्ठुर पौरुष से नहीं बल्कि मृदु व्यवहार से प्रसन्न करना चाहिये। स्त्रियां पुरुषों में पौरुष और शौर्य की पूजा करती हैं। किन्तु शौर्य का प्रयोग उनकी सुरक्षा में होना चाहिये न कि उन्हीं के पराभव में।

तुम्हारा हितचिन्तक

....

जीवन साथी

खण्ड : ४

“पति और पत्नी दो नहीं, एक हैं—एक ही रक्त-मांस के। भगवान् ने ही उन्हें सयुक्त किया है।”

—बाइबल

परस्पर अनुरूपता

पत्र १५

[आत्मिक मिलन ; प्रेम पहला पड़ाव नहीं, अन्तिम मंज़िल ; भावनात्मक परिपक्वता अनिवार्य ; गृहस्थ में आत्मपरता क्यों ? संयम से संतुलित मन वाले आदर्श पति-पत्नी]

प्रिय कमला,

विवाहित जीवन की सफलता योग्य जीवन साथी के चुनाव पर नहीं बल्कि स्वयं को सफल-जीवन-साथी बनाने की योग्यता पर निर्भर करती है; साथी कैसा है इस पर नहीं, बल्कि 'हम कैसे हैं' इस प्रश्न के उत्तर पर। लोग प्रायः सारी शक्ति चुनाव पर लगा देते हैं। वे यह भूल जाते हैं कि विवाह दो साथियों का सम्बन्ध है, जिनमें से एक वे स्वयं हैं।

कुछ ऐसे हैं जो सारी बात भाग्य पर छोड़ देते हैं। ये दोनों ही दृष्टिकोण दोषपूर्ण हैं। विवाह दोनों के प्रयत्न से बनता है। उसे सफल-असफल बनाने में मनुष्य का अपना ही हाथ है। विवाह की गाड़ी दोनों पहियों पर चलती है। दोनों को एक साथ, एक ही तन्मयता से उसे सफलता की ओर आगे बढ़ाना है। दोनों परस्परापेक्षी हैं। पत्नी का साथ होने से ही पति का पतित्व है और पति का साथ होने से पत्नी का पत्नीत्व है।

यह बात सुनने में बड़ी मामूली लगती है लेकिन ऐसी

मामूली सचाइयों की उपेक्षा ही जीवन को जटिल बना देती है। इस सत्य के कारण ही यह सच है कि अच्छी पत्नी बनने के लिये केवल अच्छी स्त्री होना पर्याप्त नहीं है जिसे आम लोग किसी के लिये भी 'आदर्श पत्नी' बनने योग्य बताते हैं। अच्छी पत्नी वह है जो अपने पति के लिये अच्छी है। इसी तरह अच्छा पति वही नहीं बनेगा जो विवाह से पूर्व लड़कियों में बहुत लोकप्रिय होगा—बल्कि वह बनेगा जो अपनी—केवल अपनी पत्नी के लिये अच्छा होगा।

स्थायी और सुखी विवाहों का आधार पति पत्नी की आदर्श अनुरूपता पर है। एक पति के लिये जो पत्नी अनुरूपता की साकार प्रतिमा, अमृतवेल है वही दूसरे के लिये विषवल्लरी बन जाती है। इस अनुरूपता-प्रतिरूपता के सामंजस्य में दोनों की काम सम्बन्धी अनुरूपता बहुत कम भाग लेती है। उसका भाग अवश्य है—किन्तु बहुत कम। कई बार तो वह इतना कम होता है कि उनके विवाहित जीवन की सफलता काम सम्बन्ध के बिना भी संपन्न हो जाती है।

मैं ऐसे अनेक व्यक्तियों को जानता हूं जो पिछले २० वर्षों से कभी सहवास न करते हुए भी सफल विवाहित जीवन बिता रहे हैं। उनका पारिवारिक जीवन सुखी है। पति-पत्नी दोनों एक दूसरे से प्रसन्न हैं, दोनों के चेहरों पर मुस्कान है। एक दूसरे के सुख-दुख में बिल्कुल अपना ही सुख-दुख मानते हैं। मन में कभी मलिनता नहीं आती। एक दूसरे का आदर करते हैं। काम सम्बन्धी आकर्षण का सर्वथा परित्याग करके भी दोनों को एक दूसरे के बिना दुनियां सूनी लगती है। इस आत्मिक

मिलन में उन्हें पहिले से भी अधिक उल्लास अनुभव होता है। वे आदर्श जीवन-साथी हैं।

यदि पत्नी अपने पति को अपने व्यवहार से आश्वस्त करा सके कि उसका पति उसकी दृष्टि में आदर्श पति है और पति भी अपनी पत्नी के आदर्श पत्नी होने की अनुभूति करा सके तो समझना चाहिये कि दोनों सुखी और सफल जीवन-साथी हैं। उनका वह सुख आयु के साथ बढ़ेगा ही, घटेगा नहीं।

यह उत्तरोत्तर वृद्धिशील, उम्र के साथ बढ़ने वाला प्रेम ही सच्चा प्रेम है। प्रेम नाम से जिन रोमांचकारी भावनाओं का आम तौर पर स्मरण किया जाता है वह विवाहित जीवन के प्रथम कुछ पहरों या दिनों में ही निःसार हो जाती हैं। प्रेमाधीन हो जाना कठिन नहीं है। इसमें कुछ भी यत्न नहीं करना पड़ता। यह घटना स्वतः हो जाती है। किन्तु प्रेम के दीपक को जीवन के आंधी-तूफानों में भी सदा जलाये रखना, उसकी ज्योति को मन्द नहीं होने देना—यह काम है जिसे करने के लिये कुछ योग्यता अपेक्षित है। तुम्हें भी योग्य बनना है।

•

अतः, प्रेम को विवाहित जीवन की सोपान न समझकर लक्ष्य मानना, पहला पड़ाव न मानकर आखिरी मंज़िल मानना। यह दृष्टिकोण तुम्हें अपने विवाहित प्रेम को अमर बनाने के लिए आजीवन यत्नशील रखेगा। विवाह तुम्हारी जीवन-साधना का ही एक काम है। उसे अपनी साधना से जैसा भला-बुरा बनाओगी वह बन जायगा। हर समय तुम्हें ऐसी परिस्थितियां बनानी हैं जिनमें प्रेम को विकास मिले। अन्यथा वह विकास असम्भव हो जायगा। मानवीय जीवन में "जैसा था वैसा" कभी नहीं रहता। प्रगति या अवनति—दोनों में से चुनना पड़ता है। जिसका

विकास नहीं होगा वह मुरझा जायगा। विवाह पर भी यही सच लागू होता है। जो विवाह प्रेम में विकसित नहीं होते वे उपेक्षा और घृणा की घाटी में गिरकर बरबाद हो जाते हैं।

इन बरबाद होने वालों में अधिकतर ऐसे ही होते हैं जो विवाह का अर्थ ही नहीं जानते। उनकी भावनाओं में परिपक्वता नहीं होती। अपने काम सम्बन्धी कौतूहलों को शान्त करने के लिए उन्होंने बहुतसी पुस्तकें पढ़ ली होती हैं। किन्तु, विवाह की जिम्मेदारियों को पूरा करने या साथी के प्रेम को आमरण निभाने के लिये जिस भावनात्मक परिपक्वता (Emotional maturity) की आवश्यकता है उससे वे सर्वथा रिक्त होते हैं। शारीरिक दृष्टि से ही विवाह योग्य होना पर्याप्त नहीं है। मानसिक अवस्था का भी इस कठिन परीक्षा के योग्य होना आवश्यक है। हमारे युवक-युवतियों में शायद एक प्रतिशत भी इसके लिए तैयार नहीं होते। उनमें अभी बचपन की ही मूर्खताएँ भरी होती हैं—जब उनका गठबन्धन कर दिया जाता है।

बचपने की कुछ आदतें ऐसी हैं जो विवाह को पथरीले रास्ते पर डाल देती हैं। एक आदत का उदाहरण देता हूँ। बच्चों के सामने बीस खिलौने रखे हैं। उससे कहा गया कि वह और सब खिलौनों से खेले, लेकिन अलमारी के ऊपर पड़ी डिब्रिया को न छूए। बच्चा और सबको छोड़कर उस निषिद्ध खिलौने को पकड़ने की ही कोशिश करेगा। उसकी यह आदत उसे विवाह में भी साधारणतया निरोधित आनन्दों के उपभोग में व्यस्त कर देगी।

बच्चों की एक आदत और है। बच्चे अपने हाथ का सुन्दर, बढ़िया खिलौना छोड़कर भी दूसरे के हाथ का घटिया खिलौना

पाने को तरसेंगे, रोएंगे, चिल्लायेंगे। कच्ची भावनाओं के विवाहित युवक-युवती भी विवाहित जीवन में ऐसी ही चेष्टाएँ शुरू कर देते हैं। अपने साथी का ध्यान छोड़कर वे परस्त्री या परपुरुष को हृदय में बसा लेते हैं। अपना साथी उन्हें बाकी सब से मामूली लगने लगता है। उसके प्रति उनमें गहरी उपेक्षा बन जाती है।

तुमने देखा होगा कि बच्चों की सब चेष्टायें अपने ही स्वार्थ से होती हैं। आत्म-तुष्टि ही उनकी प्रमुख प्रेरणा है। सामाजिक और बौद्धिक विवेक के विकास के साथ यह आत्मपरता कम होती जाती है। किन्तु इस विकास के पहले ही जो विवाह करते हैं, या विवाह से पूर्व जिनका विवेक परिपक्व नहीं होता, उनका विवाहित जीवन भी इस आत्मपरता से भर जाता है। अपने ही सन्तोष के लिये वे स्त्री का उपभोग शुरू कर देते हैं या स्त्रियां भी आत्म-विलास के लिए पुरुष के धन का अपव्यय शुरू कर देती हैं। ऐसे आत्मरत व्यक्ति ही स्त्री की अनिच्छा होते भी भोग में प्रवृत्त हो जाते हैं, अपनी निर्वाह-शक्ति को बिना देखे बच्चों की फौज जमा कर लेते हैं। उनसे प्रश्न किया जाय या इस अनाचार पर निरोध लगाने की उन्हें प्रेरणा की जाय तो वे कहते हैं "प्राकृत इच्छाओं का दमन ईश्वर के राज्य में हस्तक्षेप करना है।"

दूसरी ओर कुछ ऐसे परिपक्व विवेकवाले युवक भी हैं जो अपनी प्राकृत-क्षुधा को इतना महत्त्व नहीं देते। उनकी दृष्टि में उनके साथी का सुख इससे अधिक महत्त्व रखता है। वे संयम से चलते हैं। प्राकृत भूख को मिटाने की मूल प्रवृत्ति के साथ उनकी परमार्थवृत्ति भी विकसित हो चुकी होती है।

मनुष्य की मूल-प्रवृत्तियों में भी बड़ी असंगति है। वे आवश्यक रूप से सदा संगत नहीं होतीं। विवेक द्वारा उनका संयम किया जाता है और अच्छे मार्ग में प्रवृत्त किया जाता है। लेकिन यह सब तो वही समझ सकता है जो भावनात्मक परिपक्वता पाने के बाद विवाह करता है या जो पहिले विवाह के योग्य बनकर विवाह करता है।

अतः विवाह से पूर्व युवक-युवती के मन में परस्पर आकर्षण के प्रति स्वस्थ भावना जागृत होनी चाहिए। आवश्यक है कि उनकी बुद्धि के इस प्राकृत खिंचाव का अर्थ समझने योग्य हो जाने के बाद ही उनका विवाह हो। यह स्वस्थ भावना ही विवाह को सुखी और सफल बनाती है। इस स्वस्थता से युक्त पति-पत्नी का जीवन बड़ा सन्तुलित रहता है। उनकी मनोभावनाएँ संयत रहती हैं। वे वासनाओं की प्राकृत प्रेरणाओं के दास नहीं होते।

विवेक से परिपक्व और संयम से सन्तुलित मन वाले पति-पत्नी ही आदर्श पति-पत्नी बन सकते हैं। उन्हीं का प्रेम जीवन भर निभता है। इस सम्बन्ध में मैं महात्मा गांधी के इस कथन से सहमत हूँ कि—

"सहवास न तो प्रेम को बढ़ाता है और न उसे बनाये रखने या उसके पोषण-वर्धन के लिए किसी भी तरह अनिवार्य है। संयम से ही प्रेम का बन्धन दृढ़ होता है।"

महात्मा गांधी की भी यही धारणा थी कि दोनों के शरीर-संग की अपेक्षा दोनों का मृदुतापूर्ण व्यवहार और परस्पर स्नेह ही विवाहित प्रेम का आधार है। महात्मा गांधी ने १६०६ में

ब्रह्मचर्य का व्रत लिया था। २० वर्ष तक संयम का जीवन बिताने के बाद आपने अपना अनुभव इन शब्दों में लिखा है—

"व्रत लेने के समय तक मैंने अपनी धर्मपत्नी की राय नहीं ली थी। व्रत लेते समय ली। उसकी ओर से विरोध नहीं हुआ....... उस समय अपनी पत्नी के साथ भी विकारों से अलिप्त रहना कुछ विचित्र लगता था। किन्तु आज बीस वर्ष बाद उस व्रत को याद करके भी आनन्द मिलता है। जो स्वतन्त्रता और आनन्द हमारे विवाहित जीवन में आज है वह १६०६ से पहले कभी मिला हो—यह मुझे याद नहीं आता......मेरा अनुभव तो यह है कि पति-पत्नी अगर स्वेच्छा से संयम करें तो अत्यधिक सुख पाते हैं।"

तुम्हारा हितचिन्तक

....

पति क्या चाहता है ? (१) पत्र १६

वाङ् माधुर्यान्नान्यदस्ति प्रियत्वं,
वाक्पारुष्यादुपकारोऽपि नेष्टः ।

* * *

मधुर वचन से बढ़कर संसार में कुछ प्रिय नहीं है । कटुभाषण के साथ किया हुआ उपकार भी अप्रिय होजाता है।

प्रियवाक्य प्रदानेन सर्वे तुष्यन्ति जन्तवः
तस्मात् प्रियं हि वक्तव्यं वचने किं दरिद्रता ।

* * *

प्रिय वचनों से सभी प्रसन्न होते हैं। इसलिये प्रिय ही बोलना चाहिये । वचनों में कृपणता कैसी ?

[चाह का मतलब; स्त्री पुरुष—परस्पर पूरक; मृदुता स्त्रियों का प्राकृत गुण]

प्रिय कमला,

इस पत्र में मैं तुम्हारे इस प्रश्न का उत्तर देना चाहता हूं कि

"हमारे पुरुष स्त्रियों में कौन से गुण चाहते हैं ?" यह बात जानने के बाद तुम्हें अपने पति को समझने और सन्तुष्ट करने में अवश्य सहायता मिलेगी।

'चाह' बड़े धोखे की चीज़ है। आवश्यक नहीं कि पुरुषों की चाह केवल गुणों की ओर हो। कई बार स्त्री के किसी भी भाग की विशेष बनावट पर ही पुरुष की चाह केन्द्रित हो जाती है। वह चाह पिछले संस्कारों या स्मृतियों से बनती है। उसका विश्लेषण कठिन होता है। पर वह निष्कारण नहीं होती। एक मनुष्य को स्त्री के गर्दन की एक विशेष प्रकार की बनावट बहुत ही प्रिय हो गई थी। उसके मन में, उसी तरह की गरदन वाली स्त्री की चाह पैदा होगई। संभव है उसे यह चाह किसी काव्य की नायिका के नखशिख वर्णन से मिली हो। इस चाह का पूरा होना कठिन काम था। कई कुलीन लड़कियों के विवाह-प्रस्ताव उसकी विचित्र 'चाह' को अतृप्त रखने के कारण वापिस चले गये। आखिर बरसों बाद उसे एक सभा में वैसी ही गरदन वाली लड़की दिखाई दी। उसे देखते ही उसका रोम-रोम खिल उठा। जैसे कोई मेघ अचानक घटाटोप में बदल जाय—ऐसे ही उसकी चाह उन्माद बनकर उसके जीवन पर छा गई। ऐसी 'चाह' को अंग्रेजी में infatuation (विशेष प्रकार का उन्माद) कहते हैं।

यह उन्माद बहुत असाधारण नहीं है। हमारे युवक इसी तरह के उन्माद को प्रेम का रूप दे देते हैं। यह उन्माद जिस वेग से उमड़ता है उसी वेग से उतरता भी है।

यहां पुरुषों की चाह से मेरा अभिप्राय ऐसे उन्माद से नहीं है बल्कि उन गुणों से है जिनकी आकांक्षा प्रत्येक स्वस्थ और साधारण पति अपनी पत्नी से करते हैं।

ये गुण प्रायः वही हैं जो पुरुष में अपेक्षाकृत न्यून मात्रा में होते हैं। तभी स्त्री और पुरुष को एक दूसरे का पूरक कहा जाता है। जो प्रकृति पुरुष ने पाई है वही स्त्री ने नहीं पाई। दोनों की प्रकृति में बड़ा भेद होता है। यह भेद इतना मनुष्यकृत नहीं जितना ईश्वरकृत है। मैं यह नहीं मानता कि वे सब भेद केवल मनुष्यकृत भेद हैं। या यह कि ईश्वर की दृष्टि में दोनों समान हैं। सच यह है कि दोनों के शारीरिक गठन में जितना अन्तर है उतना ही मानसिक गठन में भी है।

हम प्रायः उसी की कामना करते हैं जो हमें प्राप्त नहीं है। अप्राप्त वस्तु की ही इच्छा होती है। पुरुष और स्त्री की कामना में भी यही नियम है। पुरुष अपनी प्रकृति के विरोधी गुणों की कामना करता है। पुरुष में कठोरता होती है। इसलिये वह स्त्री में कोमलता चाहता है। पुरुष में गति है, स्त्री में वह विराम चाहता है। पुरुष में युक्ति है, स्त्री में वह भावुकता की कामना करता है। पुरुष में व्यवहारिक स्पष्टता है इसलिये स्त्री में वह रहस्यात्मक प्रवृत्तियां चाहता है। पुरुष को आजीविका कमाने के लिये भौतिकता की सतह पर रहना पड़ता है इसीलिये वह स्त्री में आध्यात्मिकता की उड़ान चाहता है। पुरुष सब काम विविध और विभक्त करके करता है, अतः स्त्री में वह एकरसता और अविभक्तता की कामना करता है। पुरुष में इच्छाशक्ति है, धैर्य नहीं। अध्यवसाय है, सहिष्णुता नहीं। जो कुछ उसमें नहीं है वह स्त्री में उसी की पूर्त्ति चाहता है। उसी को पाने के लिये तड़पता है।

यदि यह कह दिया जाय कि वह स्त्री के व्यक्तित्व में मिल कर पूर्णता चाहता है तो भी ठीक होगा। प्रकृति ने दोनों में परस्पर पूरक गुण दिये हैं। यह विभेद ही दोनों की कामनाओं का रहस्य है। दो विरोधी विद्युत् शक्तियां मिलकर नया निर्माण करना चाहती हैं। निर्माण का यह बड़ा उपयोगी सिद्धान्त है।

इसीलिये पति पत्नी एक दूसरे के पूरक होने में जितना सफल होंगे, वह मिलन उतना ही पूर्ण होगा। एक बात स्मरण रखनी चाहिये। कोई भी पुरुष पूर्णपुरुष नहीं है और कोई भी स्त्री स्त्रीत्व के आदर्श गुणों से संपन्न नहीं है। प्रत्येक पुरुष में नारीत्व का अंश और नारी में पुरुषत्व का अंश अवश्य होता है। पुरुष में भी मृदुता, धैर्य भावना, एकरसता और आध्यात्मिकता होती है। ऐसे ही स्त्री में कठोरता, गति, तर्क और भौतिकता होती है। इतना अवश्य कह सकता हूं कि पुरुष की प्रेरणा पौरुष से ही होगी और स्त्री की प्रेरणा का स्रोत मृदुता ही रहेगा।

मृदुता या कोमलता स्त्रियों का प्राकृत गुण है। बचपन से ही लड़कियों का शरीर कोमल होता है। उनके अवयवों में गोलाई होती है। उनकी त्वचा भी लड़कों की अपेक्षा नरम होती है। ईश्वर उन्हें फूल की पंखड़ियों से बनाता है। जिन हाथों में कोमल शिशु की पालना होनी है वह कठोर नहीं हो सकते। जिस आंचल को नवजात बालक की जन्मशय्या बनना है उसमें फूलों की कोमलता देना प्रकृति की दूरदर्शिता है। शरीर के साथ स्त्रियों का मन भी कोमल कल्पनाओं से ही भरा होता है। उसमें संसार-विजय की महत्त्वकांक्षा नहीं होती, अपनी गोद का बालक ही उसका संसार होता है। अपने हृदय के टुकड़ों से वह उसे पालती है। पुरुष जब सारी दुनिया के विध्वंस के सपने लेता रहता है, स्त्री की ममता अपने अंचल के शिशु को अपने स्तन का दूध पिलाकर नये निर्माण में व्यस्त होती है।

नारी के इस देवत्व के आगे पुरुष का सिर झुक जाता है। पति भी पत्नी की इस कोमलता को प्रेम और पूजा के भाव से देखता है। यह शरीर के अवयवों तक सीमित नहीं है। स्त्री का

स्वभाव भी कोमल होता है। उसकी वाणी में भी कोमल मिठास होती है। उसके संकल्प-सपने भी मधुर होते हैं। उसकी हंसी कोमल होती है। उसकी आँखों में आग की लपटों से पहले आँसुओं का समुद्र उमड़ आता है। उसके ओठों पर क्रोध से पहले मुस्कान की रेखाएं खिंच जाती हैं। उसकी आत्मा में प्रतिहिंसा की आँधी भरने से पहले ही दया, क्षमा और प्रेम के बादल उमड़ आते हैं।

ऐसी पत्नी सदा पति के हृदय पर राज्य करती है। उस पत्नी का दुर्भाग्य है जिसे उसकी परिस्थिति इन गुणों से वंचित कर दे। हमारे घरों में कर्कशा और कठोरा पत्नियों की भी कमी नहीं है। पति की उपेक्षा, अप्रीति, दुर्व्यवहार इन्हें कर्कशा बना देते हैं। इनकी वाणी में विष भर जाता है। हृदय में घृणा के बादल छा जाते हैं। संकल्पों में तीव्र प्रतिहिंसा घर कर जाती है। सहानुभूति का स्थान आलोचना ले लेती है। पत्नी जब पति की आलोचना करने लगे तो समझना चाहिये कि वह अपने स्वभाव से च्युत हो गई है। उसकी आँखों में तरलता न रहे तो समझना चाहिये कि उसके हृदय में घृणा की भट्ठी जल रही है।

पति द्वारा उपेक्षा के पहले प्रहार में ही जो पत्नी कोमलता के स्वभाव को छोड़ देती है वह फिर कभी पति का प्रेम पाने की आशा नहीं रखती। पति की उपेक्षा कभी कभी केवल बाह्य कारणों से होती है। व्यवसायिक जीवन की कठिनाइयाँ उसकी कोमल भावनाओं को झुलसा देती हैं। बाहर के आघातों का प्रभाव घर पर भी पड़ता है। वह घर के प्रति भी रूखा हो जाता है। उस रुखाई को अपने स्नेह से तरल करने के स्थान पर कुछ पत्नियां उसका बदला रुखाई से देने का निश्चय कर लेती हैं। पत्नी समझती है कि उसे पति के हाथों लाड़-प्यार पाने का जन्मसिद्ध अधिकार

है। वह सदा लाड़ली बनकर रहना चाहती है। यह कल्पना उन्हें ठग लेती है। वास्तविक जीवन में इससे विपरीत होता है। पत्नी के पास स्नेह का अक्षय भंडार होता है। इसलिये उसे पति के प्रेम-दान की प्रतीक्षा किये बिना मुक्तहस्त प्रेम का दान-प्रतिदान करना चाहिये। पति से ही प्रेम-प्रदर्शन की हर समय आशा करना पत्नी के विकृत मस्तिष्क का द्योतक है। जो पत्नियाँ अपने रूप सौंदर्य में अपूर्व संमोहन शक्ति समझती हैं वही ऐसी दुर्भावनाओं से अपने दिल को पत्थर-सा कठोर बना लेती हैं। इसका परिणाम यह होता है कि पति का पहला रूखापन और भी घना होकर उपेक्षा और अरुचि में बदलता जाता है। और अन्त में तो घृणा के हलाहल से ही हृदय का समुद्र भर जाता है।

पति ऐसी पत्नी को चाहते हैं जिसका स्वभाव कोमल हो। जो रुखाई का उत्तर स्नेह से दे। जो उनकी भूलों को क्षमा कर दे। जिसकी भाषा में कठोरता का एक भी शब्द न हो। जिसके व्यवहार में विनय हो।

आश्चर्य यही है कि स्त्री को कोमलता का ईश्वरीय वरदान मिलने पर भी हमारे घरों के पुरुषों को प्रायः यही शिकायत रहती है कि उनकी पत्नियों का स्वभाव बहुत कड़वा और जबान बहुत तीखी है। अपने दूर-पास के घरों की हालत देखकर पुरुषों के उपालंभ में सत्य का बहुत अंश दिखाई देता है। आजकल की पत्नियाँ अपशब्दों का बहुत प्रयोग किया करती हैं।

इस सम्बन्ध में मेरे बहुत से मित्र अपनी पत्नियों की बातें सुनाते रहते हैं। कुछ की चर्चा करना अप्रासंगिक न होगा।

एक मित्र ने बतलाया कि "शादी हो जाने पर श्रीमती जी और मैंने यह तय किया कि जो भी कभी दूसरे को गाली देगा

या उसके लिये अपशब्दों का व्यवहार करेगा उसे प्रत्येक गाली पर एक आना जुर्माना दूसरे को देना होगा।"

मैंने पूछा—"कितना जुर्माना देना पड़ा तुम्हें ?"

वह हंस कर बोला—"मुझे नहीं, पत्नी को ही देना पड़ा।"

"कितना ?"

"दिया तो नहीं उसने, लेकिन देती तो आज मैं लखपति बन जाता।"

एक दूसरे पति की कहानी सुनिये। उनके एक मित्र जब बैठक में दाखिल हुए तो उन्होंने देखा कि पति-पत्नी में कुछ बातें चल रही थीं। उनके आते ही पत्नी अन्दर चली गई। उन्होंने मित्र से पूछा—

"क्यों जी, क्या बातें चल रही थीं ?"

"कुछ भी नहीं।"

"यह कैसे हो सकता है। मैंने तो आवाज़ सुनी थी।"

"मैं तो चुप था, श्रीमती जी ही कुछ कह रही थीं।"

"क्या कह रही थीं ?"

"कुछ भी नहीं।"

"फिर वही, कुछ भी नहीं।"

"हाँ, सचमुच कुछ भी नहीं। अगर गालियों को छोड़ दिया जाय तो वाकई कुछ भी नहीं कह रही थीं।"

अपढ़-गंवार स्त्रियाँ तो गाली के बिना बात ही नहीं करतीं। किन्तु उनका अपराध क्षम्य है। पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ भी जब अपशब्द और कटु वचनों पर उतर आएँ तो शर्म की बात है। उनकी गालियों का प्रवाह युद्धभूमि की गोलियों से भी अधिक चलता है।

एक बार मैं अपने एक मित्र के घर गया। उनकी पत्नी से पहले कभी भेंट न हुई थी। घर जाकर देखा कि घर के आँगन

में दो स्त्रियाँ गाली-गलौज कर रही थीं। मैंने मित्र को कहा—

"आप उस स्त्री को रोकते क्यों नहीं—जो गालियों की बौछार कर रही है।"

"नहीं भाईजान, यह काम मैं नहीं कर सकता।"

"क्यों ?"

"बात यह है कि उनमें से एक मेरी पत्नी है, दूसरी मेरी मां।"

सास और बहू में प्रायः गालियों का युद्ध चला करता है। कटु शब्दों का व्यवहार पति की अपेक्षा पत्नी ही अधिक करती है। इसके दो कारण हैं। पहला यह कि पत्नियों में शिक्षा की कमी होती है। उनका शब्दकोष छोटा होता है। अपनी असहमति प्रकाशित करने के योग्य उनके पास जब कोई समर्थ शब्द नहीं होता तो वे गालियां देती हैं। शिक्षा की कमी उन्हें विनय से वंचित रखती है। 'शिक्षा ददाति विनयम्' शिक्षा ही मनुष्य को विनम्र बनाती है, सभ्य और शिष्ट बनाती है।

दूसरा कारण है स्त्रियों में हीन-भावना के प्रतिशोध की इच्छा। सदियों से पुरुष समाज स्त्री की कोमलता का शोषण कर रहा है। उनके प्राकृत नियम का लाभ उठाकर स्त्रियों के साथ अन्याय कर रहा है। इस अन्याय का विरोध स्त्रियाँ केवल वाङ्मय-युद्ध द्वारा ही कर सकती हैं। छल कपट उन्हें आता नहीं। भाषा के अलंकारों से वे अपने हृदय के घाव को ढकना नहीं जानतीं। हृदय के हलाहल को मधुर शब्दों से छिपाने का कौशल उनमें नहीं होता। जो मन में आया कह डालती हैं। और जब जो कुछ आया उगल देती हैं। वाणी को संयम की डोर से नहीं बाँधतीं। सोचती हैं, हमारा क्या बिगड़ेगा। हमें कौन सी पदवी दी हुई है जो पति छीन लेगा। दिल का बुखार

क्यों न उतारें। क्षणिक आवेश में जो सूझा कह दिया। यह लापरवाही उनके तन-मन में समाई होती है। अपनी अवस्था से वे बेहद निराश हो चुकी होती हैं। पति की नजरों में अच्छी बनने की उत्सुकता ही नहीं होती उनमें। पति के बाहर की दुनिया को वे पहिचानती नहीं। किसी और की सम्मति का उनके लिये कोई मूल्य होता ही नहीं।

इसलिये वे वाणी पर संयम करने का कष्ट ही नहीं करतीं खुली ढील छोड़ देती हैं। यह ढील, यह शिथिलता उनकी नस-नस में समाई होती है। उसका उपचार दूसरा है। लेकिन ऐसी हताश स्त्रियों से कोमलता की आशा नहीं की जा सकती। कोमल वाणी और कोमल व्यवहार बड़े यत्न से साधे जाते हैं।

जीवन की यात्रा बड़ी कठिन मंजिलों से गुजर कर पूर्ण होती है। सचाई सदा कड़वी होती है। वास्तविकता कठोर होती है। दुनिया का झंझावात मनुष्य को कठोर-निमर्म और क्रूर बनना सिखा देता है। लेकिन तुम्हें अपनी कोमलता की रक्षा करनी होगी, यदि तुम सफल पत्नी बनना चाहती हो। तुम्हें प्रकृति से शिक्षा लेनी होगी। धान की हरी कोंपलें आंधी में झूम कर भी बनी रहती हैं—जब अपनी ऊँचाई पर अभिमान करनेवाला वट-वृक्ष टूटकर धराशायी हो जाता है।

याद रखो, कोमलता से बज्र भी पिघल जाता है। बालरवि की प्रथम किरण का स्पर्श पाकर हिमालय के हिमाच्छादित शिखर भी पिघल कर नीचे आ जाते हैं। 'प्रेम से अप्रेम को जीतो' महात्मा बुद्ध के इस वाक्य को याद रखो।

पति अपनी पत्नी में क्या चाहता है—इस प्रश्न का उत्तर पूरा नहीं हुआ। अपने पत्र में फिर इसकी चर्चा करूँगा।

तुम्हारा हितचिन्तक

....

पति क्या चाहता है ? (२)   पत्र १७

अनुकूला सदा तुष्टा दक्षा साध्वी विचक्षणा ।
एभिरेव गुणैर्युक्ता श्रीरिव स्त्रीर्न संशयः ॥

*   *   *

अनुकूल, सदा संतुष्ट; कुशल, एकनिष्ठ पत्नी पति के लिये लक्ष्मी के समान पूज्य होती है

[पुरुष की रहस्य प्रियता; वेशभूषा का सौन्दर्य; सौन्दर्य प्रसाधन; असली शृंगार मन का शृंगार है; पत्नी स्वभाव से एकनिष्ठ होती है; परपुरुष से मैत्री;—भग्न प्रेम की स्मृति मात्र है; पति से आत्मीयता; पति पर पूर्ण आस्था]

प्रिय कमला,

पहले पत्र में मैंने लिखा था कि पुरुष अपनी पत्नी में—उस स्त्री में जिससे वह प्रेम करता है—कोमलता चाहता है। इस पत्र में मैं उसके मन की अन्य अभिलाषाओं पर प्रकाश डालने की कोशिश करूँगा।

पुरुष अपनी पत्नी में शील और शर्म चाहता है। वह चाहता है उसकी स्त्री का व्यक्तित्व कुछ आवरणों से ढका रहे। रहस्य के परदे में छिपा रहे। पुरुष की इस रहस्यप्रियता का ही परिणाम है कि वह स्त्री को कुछ परदे में रखता है। परदा तो केवल उसकी इच्छाओं का प्रतीक है। परदा इसलिये नहीं होता कि लोग उसकी सुन्दरता पर कुदृष्टि न डालें। किन्तु इसलिये होता है कि उसकी स्त्री का रहस्य बना रहे।

रहस्य का यह आकर्षण मनुष्य-हृदय की स्वाभाविक प्रकृति है। इसीलिये उसका मन क्षितिज की ओट में किसी रहस्य को ढूँढा करता है। कुहरे से घिरी घाटियों में रमण करता है। चांदनी के धुंधले प्रकाश में मौन भाव से झूमती डालियों के साथ झूला करता है।

स्त्री की प्रकृति में जो रहस्य भरे आकर्षण हैं—उनकी वह पूजा करता है। इस आकर्षण का वह भेद नहीं जान पाता। इसीलिये वह इसका उपासक है। पुरुष की इस सात्विक उपासना को चिरजीवी रखने के लिये पत्नी का कर्त्तव्य है कि वह अपने व्यक्तित्व को कभी पूर्ण रूप से निरावृत या नग्न न होने दे।

यह भी एक कला है। वस्त्रों से शरीर का आच्छादन करना ही कलात्मक आवरण नहीं हो जाता। कई परिधान ऐसे हैं जो अवयवों को और भी अधिक नग्नता से प्रदर्शित करते हैं। इनका उद्देश्य ही दर्शकों के मन में कामुक इच्छाओं को जागृत करना होता है। गृह-देवियों को इन परिधानों को अपनाने के प्रलोभन से बचना चाहिये।

बहुत चमकदार—भड़कीले कपड़े पहनना भी स्त्री की शिष्टता के विरुद्ध है। वस्त्रों का चुनाव कलात्मक दृष्टि से करना चाहिये।

सब स्त्रियों को एक से वस्त्र शोभा नहीं देते। शरीर की बनावट के अनुसार उनके पहनने के ढंग में भी परिवर्त्तन होना चाहिये। बिल्कुल तंग, कसे हुए और अंगों से चिपटने वाले कपड़े पहनना स्त्री की शोभा को घटाते हैं, बढ़ाते नहीं।

सौन्दर्य-वृद्धि के लिये जो शृंगार किया जाता है उसके प्रयोग में भी बहुत सावधानी की आवश्यकता है। सौन्दर्य-प्रसाधनों का प्रयोग करने से पहले उनकी प्रयोग-विधि सीखनी चाहिये अनाड़ी लड़कियां उनका अतिशय प्रयोग करना शुरू कर देती हैं। उन्हें यह नहीं मालूम होता कि 'मेक-अप' की सफलता इसी में में है कि वह मालूम न पड़े।

याद रखो, मेक-अप तुम्हारी शारीरिक बनावट में कोई अन्तर नहीं ला सकता। वह केवल तुम्हारे चर्म-दोषों को चतुराई से छिपा कर रख सकता है। किन्तु पौडर या गुलाल का थोड़ा सा भी अधिक प्रयोग या पेन्सिल का भवों पर अति-रंजित प्रयोग—तुम्हें सुन्दर की बजाय असुन्दर भी बना सकता है।

सौन्दर्य-प्रसाधनों से सुन्दर बनने का अतिशय प्रयत्न तुम्हें पति की दृष्टि में गिरा देगा। प्रत्येक पति अपनी पत्नी को सुन्दर देखना चाहता है और साधारण शृंगार के प्रति भी उसे रुचि होती है—किन्तु दो बातों का ध्यान रखो। शृंगार बहुत हल्का करो और पति के सामने मत करो।

दिन में दस बार पौडर पोतना बीमारी है। दिन में एक बार शृंगार करने के बाद उसे बार-बार दोहराने की जरूरत नहीं होती। कुछ स्त्रियां बार-बार पौडर लगाती हैं और घड़ी-घड़ी ओठों को रंगती हैं। तह पर तह जमती जाती हैं। एक बार

सावधानी से मेक-अप कर लो, वही टिका रहेगा। तह पर तह जोड़ने से वह भद्दा हो जायगा—टिकेगा भी नहीं।

शृंगार-प्रसाधन स्त्री के व्यक्तित्व को किंचित रहस्यमय व सुन्दर बनाने में अवश्य सहायता करते हैं किन्तु असली शृंगार तो मन का शृंगार है। मन के आवेशों का संयम और प्रसाधन ही स्त्री की सुन्दरता का रहस्य है।

यह भी कला है। इसे साधने का गुरुमन्त्र संयम है। मन के आवेशों को संयमित रीति से अभिव्यक्त करना ही इस कला की सिद्धि है। हृदय का प्रत्येक आवेश शरीर की किसी-न-किसी चेष्टा में अभिव्यक्त होता है। उन चेष्टाओं को कलापूर्ण बनाना चाहिये।

तुम्हें क्रोध आया है। उसे तुम हाथ-पैर पटक कर भी प्रकट कर सकती हो। गंवार लोग इसी तरह करते हैं। किन्तु तुम्हें यह शोभा नहीं देता। उस पर संयम करो। किसी भी शारीरिक चेष्टा से प्रकट मत होने दो। आंखों को लाल करके या घूर करके भी मत जाहिर करो। क्रोध को पी जाना ही अच्छा है। फिर भी—यदि उसका प्रकट करना अभीष्ट है तो तुम्हारे दृढ़तापूर्वक कहे गये दो शब्द अभिप्राय को प्रकट कर देंगे। हल्का-सा व्यंग भी तुम्हारे विपक्षी को निरुत्तर कर देगा।

तुम्हें हंसी आई है। संयम नहीं करोगी तो तड़ातड़ हंस पड़ोगी। जैसे बारूद की आतिशबाजी फटती है। कुछ लोग पास बैठे हुए साथियों की पीठ पर हाथ मारकर भी अपने आवेग को शांत कर लेते हैं। सारा मुंह खोलकर हंसना भी अशिष्टता है। बत्तीसी निकाल कर हंसने से सुन्दर चेहरे भी बुरे हो जाते हैं। कई चेहरों की सजावट तभी तक अच्छी लगती है जब तक वे

पत्थर की मूर्ति बने रहें। हंसने-रोने या किसी भी आवेश के प्रकट होते ही उनका सौन्दर्य नष्ट हो जाता है। इसके विपरीत कई मामूली चेहरों पर भी मुस्कान ऐसी खिलती है कि उनकी सुन्दरता दस गुणा बढ़ जाती है। सुन्दर वही है जिसकी हंसी सुन्दर है। उस की कोमल मुस्कान में सम्मोहन होता है। पत्नी को भी अपना सम्मोहन चिरजीवी रखने के लिये अपनी हंसी में शालीनता-शिष्टता लानी होगी। शिष्ट हंसी का नाम ही मुस्कान है। उसमें एक रहस्य भरा आकर्षण होता है। रहस्यप्रेमी पति उस मुस्कान पर मुग्ध होते हैं।

रोने में भी संकोच से काम लेना चाहिये। मशहूर है 'स्त्रीणां रोदनं बलम्' रोना स्त्रियों का हथियार है। मूर्ख स्त्रियां इसी बल से पतियों पर विजय पाती हैं। पुरुष पत्नी के आंसू देखकर हार जाता है। लेकिन इस तरह हारकर उसके मन में अपनी पत्नी के लिये प्रेम और आदर कम हो जाता है। रोना गुण नहीं, दोष है। आवेशों पर संयम करने की असफलता का विज्ञापन करना है। फूट-फूटकर रोने वाली स्त्रियां ही प्राय: असभ्यता से खिल-खिला कर हंसने वाली और तड़ातड़ गालियां देने वाली होती हैं। असंयम कभी एकांगी नहीं होता। जो एक आवेश पर काबू पा सकता है वही दूसरे पर पा सकता है। पुरुष ऐसी रोने वाली पत्नी का कभी आदर नहीं करता। रोना एकान्त में चाहिये और हंसना सामने। आंखों से गिरता हुआ आंसू भी उतना प्रभाव करता है जितना दोनों आँखों से बहती हुई जलधारा करती है।

पति अपनी पत्नी में एकान्तनिष्ठा चाहता है। पत्नी स्वभाव से एकनिष्ठ होती है। इसलिये पति कोई ऐसी चीज़ नहीं चाहता जिसे देने में पत्नि को साधना करनी पड़े। अग्नि को साक्षी रखकर

तुमने अपने पति के सुख-दुख में समभागी होने का प्रण किया है। उस समय वह प्रण एक रसम हो सकती थी किन्तु जब दोनों एक दूसरे के प्रति पूर्ण आत्मार्पण करके एकात्म हो चुके हों तब किसी दूसरे का ध्यान भी पाप है।

किन्तु, मैं यहाँ पाप-पुण्य की समीक्षा नहीं कर रहा। मैं तो 'पति अपनी पत्नी से क्या चाहता है' इसकी चर्चा कर रहा था; वह भी केवल व्यवहारिक सतह पर। बहुधा यह होता है कि पत्नी सर्वथा निर्दोष भाव से पति के मित्रों से परिचय बढ़ाती है। कई परिचय केवल जान-पहचान तक रह जाते हैं। कई परिचय सहानुभूति के परदे में मैत्री और परस्पर स्नेह की सतह तक पहुँच जाते हैं। कभी एकान्त की घड़ियों में लेटी-लेटी पत्नी सोचने लगती है—काश ! मेरा पति भी इसकी तरह हंसमुख और चुलबुला होता ! धीरे-धीरे यह होता है कि पति के लिये पूर्ण भक्ति रखते हुए भी पत्नी का मन उसके मित्र की निकटता चाहने लगता है। वह उससे ही हंसना-बोलना-खेलना पसन्द करने लगती है। और सोचती है 'इसमें क्या दोष है ?' पति की पत्नी होने से मैं क्या दुनिया में किसी से हंसकर बोल भी नहीं सकती ? जो पति का मित्र है क्या वह मेरा मित्र नहीं हो सकता ?"

मैं इसका उत्तर 'नहीं' में दूंगा। पुरुष-पुरुष की मैत्री और स्त्री-पुरुष की मैत्री में बड़ा अन्तर है। पुरुष की मैत्री एकांगी हो सकती है। वह केवल समरुचि होने से भी पनप सकती है। परस्पर सराहना से भी दो पुरुष मित्र बन जाते हैं। वह सराहना केवल गुणों तक सीमित रह सकती है। लेकिन स्त्री जब किसी के गुणों को सराहती है तो उसकी प्रशंसा प्रशंसित व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व के प्रति अनुराग में बदल जाती है। उस अनुराग को थोड़ी भी सुविधा मिले तो वह प्रेम में—एकान्तिक प्रेम का रूप पकड़ लेता है। एक लड़की को यदि किसी कला-

कार की कृति पर मुग्ध होते ही कलाकार पर मुग्ध हो जाती है। उसका सम्पूर्ण व्यक्तित्व उसे मोह लेता है।

इसलिये इस कथन में बड़ी सचाई है कि स्त्री-पुरुष का संग सफल होकर प्रेम में और असफल होकर मैत्री में बदल जाता है। वह मैत्री नहीं, भग्न प्रेम की स्मृति मात्र होती है। ऐसे खण्डहरों को जीवन में महत्त्व देना मनुष्य की गति में अवरोधक होता है। जो अपने भविष्य से निराश होते हैं वही भूतकाल की स्मृतियों में आनन्द लेते हैं। पति-पत्नी की जीवन-यात्रा में ऐसे खण्डहरों को स्थान नहीं मिलना चाहिये।

भग्न प्रेम की इन स्मृतियों में डूबा हुआ पत्नी का मन पति के प्रति कभी एकनिष्ठ नहीं रह सकेगा। एकनिष्ठा सच्ची होनी चाहिये। पति यह नहीं चाहता कि उसकी पत्नी उसकी किसी से तुलना करे। दूसरे की सराहना करते हुए पत्नी अपने पति को हल्का बनाती है। जहां यह तोल-माप रहेगा वहां एकात्मता नहीं होगी।

इसलिये मैं तो तुम्हें सलाह दूंगा कि तुम पति से अन्य किसी पुरुष से मैत्री मत बनाओ। तुम्हारे जीवन-वृत्त का केन्द्र विन्दु पुरुष में ही होना चाहिये। वही तुम्हारी दुनिया है—वही इस लंबी यात्रा में तुम्हारा साथी है। उसके साथ ही तुम्हें चलना है।

दूसरे सब दो-चार कदम चलकर अपनी-अपनी राह चले जायंगे। उनके साथ शिष्ट व्यवहार रखो, जान-पहचान रखो लेकिन कभी घनिष्टता न बढ़ाओ। इस संबन्ध में इस मर्यादा का पालन ही अच्छा है कि पति की उपस्थिति में ही दूसरे पुरुष से मेल-जोल करो। दूसरे पुरुष से निकटता बढ़ाना आग

से खेलना है। इस खेल में क्षणिक उन्माद है—और कुछ नहीं। जो बिछुड़ चुका उसे भूल जाओ और जो तुम्हारा नहीं बन सकता उसे निकट मत आने दो।

जब पति से तुम्हारी आत्मीयता इतनी बढ़ जायगी कि उसके दोष भी गुण दिखाई देने लगेंगे तभी तुम उसकी सच्ची जीवन-संगिनी बनोगी। तब तुम पति के गुण-दोष की आलोचना बन्द कर दोगी। उसका उपहास करना छोड़ दोगी। गुण-दोष सभी में होते हैं। लेकिन जो अपना होता है उसके गुणों पर ही दृष्टि जाती है। उसके दोष उसके प्रेम में छिप जाते हैं। तुम उसके गुणों पर मुग्ध होकर उसकी नहीं बनी बल्कि उसके प्रेम ने तुम्हें उसका बना दिया है। पति यह चाहता है कि उसकी पत्नी भी इस अपनेपन पर अभिमान अनुभव करे। उसकी नजरों में दूसरों के स्वर्ण-मन्दिर अपनी तिनकों की झोंपड़ी से कम मूल्य के हों।

पति की थोड़ी आय पर खीझनेवाली पत्नियां कभी पति के साथ अपनापन नहीं बना सकतीं। उसे भी याद रखना चाहिये कि वह भी अन्य लाखों स्त्रियों से कम सुन्दर और गृहकार्य में कम निपुण है। जो पति अपनी पत्नी के सुघड़ न होने या बहुत सुन्दर न होने की शिकायत करते हैं वे भी मूर्ख हैं। मैं उनसे पूछता हूँ क्या अपने व्यक्तित्व से वे पूर्णतया सन्तुष्ट हैं? क्या अपनी कमजोरियां उनके सामने नहीं हैं? लेकिन अपने से तो उन्हें कभी शिकायत नहीं हुई? विधाता ने जो दिया उसे वरदान मानकर सन्तोष कर लिया। पति-पत्नी को भी एक-दूसरे के व्यक्तित्व से पूर्णतया सन्तुष्ट रहना चाहिये। असन्तुष्ट पत्नी कभी पति को प्रसन्न नहीं कर सकती और न [illegible] घर को खुश-

हाल रख सकती हैं। पति चाहता है कि उसकी पत्नी उसे पाकर अपने को धन्य माने। उसी की बनकर रहे। आत्यन्तिक दुख में भी वह किसी और का आश्रय न ढूंढ़े। उसी में पत्नी की आसक्ति हो। उसके मन-बुद्धि-व्यवहार सब उसी के अर्पित हों।

प्रेम इसी तरह की एकान्त लगन चाहता है। कबीर के अनुसार:—

पलकों की चिक डारि कै पिय को लिया रिझाय।
ना मैं देखूं और को ना तोहि देखन देऊं॥

प्रेम एकान्त आसक्ति की अपेक्षा रखता है।

•

पति के प्रति पत्नी का एकनिष्ठ होना तभी सम्भव है यदि वह पति के चरित्र पर विश्वास रखे। स्त्रियां बहुत सन्देहशील होती हैं। पति घर के बाहर रहता है। आज के युग में वह अन्य स्त्रियों के संपर्क में आये बिना नहीं रह सकता। जीवन का कोई भी क्षेत्र स्त्रियों से खाली नहीं है। पत्नी भी यह बात जानती है। इसलिये वह पति के गिरावट की हर समय चिन्ता करती रहती है। प्रतिक्षण वह पति की आंखों में दूसरी स्त्री की छाया खोजती रहती है। पति की हर बात में दूसरी स्त्री का प्रसंग ढूँढती है।

एक दिन एक पतिदेव ने बहुत दिन बाद स्त्री को प्रसन्न मुद्रा में देखकर कहा:—

'इस समय तुम्हारे दांत कैसे चमक रहे हैं? ठीक मोती की तरह।'

'मोती ? यह मोती कौन है ?'

पत्नी के मुख से निकल गया। उसने समझा पतिदेव को किसी अन्य मोती नाम की स्त्री का स्मरण हो आया है। और

वह उसके दांतों की तुलना मेरे दांतों से कर रहे हैं। पति का अभिप्राय तो उस कीमती स्फटिक से था जो सदा स्वच्छ और आबदार रहता है।

दुनिया में जितनी यातनायें हैं उनमें संदेही स्वभाव की पत्नी का पति होना भी बड़ी यातना है। अन्य यातनाओं से तो पुरुष को कभी-कभी मुक्ति मिल भी जाती है लेकिन सन्देहशील स्त्री के संदेह का जाल पति को सोते-जागते हर समय जकड़े रखता है।

जिस पत्नी के मन में पति के लिये संदेह घर कर जाता है वह उस सन्देह की आग में स्वयं भी जलती रहती है। उसकी आंखें जासूस की तरह हर समय पति का पीछा करती रहती हैं। और वह पति की हर वस्तु को अपराध साबित करने के पक्ष में सबूत की तरह टटोलती है।

एक दिन की बात है। धोबी को कपड़े धुलने देने के लिये श्रीमतीजी पति के कोट की तलाशी ले रही थी। ऐसी पत्नियां किसी-न-किसी बहाने पति की चीजों को टटोलती ही रहती हैं। कोट की जेब में उसे एक छोटा-सा कागज का पुर्जा मिला जिस पर लिखा था "तारा—५० रुपये।" पत्नी ने उसे किसी बड़े अपराध की गवाही मानकर अपने पास सुरक्षित रख लिया। थोड़ी देर में एक फोन आया। फोन सुनकर पतिदेव लौटे तो पत्नी ने पूछा।

"किसका फोन था ?"

"किसी खास का नहीं, तुम उसे नहीं जानतीं।"

"बताने में कुछ हर्ज है ?"

"लाभ भी क्या, जब तुम उसे जानती ही नहीं।"

"फिर भी मैं पूछना चाहती हूं—तुम्हें बताना ही पड़ेगा।"

"इतनी ज़िद क्यों करती हो ? क्या बात है ?"

"तुम आज किसीको ५०) देनेवाले हो ?"

"किसे ?"

"एक लड़की को"

"तुम्हें सपना आया है क्या ? मैं तो किसी लड़की को नहीं जानता, जिसे रुपये देने हों"

"क्यों भोले बनते हो ? मेरे पास पक्का सबूत है कि तुम एक लड़की को ५०) देनेवाले हो।"

यह कहकर पत्नी ने कागज का पुर्जा सामने रख दिया; और व्यंग में पूछा—

"यह तारा तुम्हारी कौन है ?—कोई नई प्रेमिका है या उपपत्नी।"

कागज को देखकर पति को याद आ गया कि कल रेस में 'तारा' घोड़ी पर ५०) लगाने की किसी ने 'टिप' दी थी। वही उसने लिख लिया था।

"अरी, यह तो एक घोड़ी का नाम है" कहकर पतिदेव खिलखिला उठे। लेकिन पत्नी तब तक नहीं मानी जब तक उसे अखबार में 'तारा' का नाम रेस में दौड़ने वाली घोड़ियों में नहीं दिखा दिया।

सन्देही पत्नी का मन जरा-सी बात को पहाड़ बनाकर गृह-जीवन की धारा में अवरोध पैदा करता रहता है। और विश्वासी पत्नी पति के बड़े-से-बड़े अपराध को भी भूलकर गृहजीवन की समता को बनाये रखती है। जीवन का साथ विश्वासी हृदय ही निभा सकते हैं। सन्देह की घटा छटने के बाद प्रेम का चाँद फिर आकाश में चमक उठता है। परस्पर विश्वास की नाव जीवन सागर की लहरों पर तैरती हुई अपनी मंजिल पर पहुँच जाती है। 'हम सदा साथ रहेंगे' यह विश्वास ही स्त्री-पुरुष को साथ रखता है।

'पति क्या चाहते हैं' प्रश्न का कोई भी उत्तर पूरा उत्तर

नहीं होगा। लेकिन इतना उत्तर भी पूरा हो सकता है कि वे नारी में एक सच्चा साथी चाहते हैं। ऐसा साथी जो इस साथ का मूल्य अपने जीवन से भी अधिक मानता है। नारी में ऐसा साथी पाकर ही पुरुष का विकास होगा। उसकी आत्मा नई स्फूर्ति पायेगी। वह वही चाहता है जो नारी के पास है। और केवल नारी के पास है।

तुम्हारा हितचिन्तक

....

पत्नी का अंकुश पत्र १८

[अनुशासन वृत्ति के मूल में मानसिक विक्षोभ ; शासक-शासित प्रेम नहीं होता ; सत्ताधारी बनने का यत्न न करो ; हर समस्या का समाधान है]

प्रिय कमला,

तुमने अपने पत्र में यह लिखा है कि "मैं विचित्र परेशानी में हूं। मेरे पति की मनोवस्था में कुछ दिन से ऐसा परिवर्त्तन होगया है कि वह मेरे कहने पर कान नहीं देते। पहिले तो मैं जैसा कहती थी, मान जाते थे। मैं जो भी कहती हूं उनके भले के लिये कहती हूं। उनकी भलाई के लिये मैंने अगिनत कष्ट सहे हैं। इस बात को वह भी जानते हैं। फिर भी अब वे खिंचे-खिंचे से रहते हैं। मैं चाहती हूं कि आप मुझे न लिखकर एक पत्र उन्हें इस आशय का लिखदें कि वह मेरी बात मान लिया करें।"

तुम्हारा कहना न मानकर मैं फिर तुम्हें ही पत्र लिख रहा हूं। इसका उपचार भी तुम्हारे हाथ में है। एक लतीफ़ा तुम्हें याद है? एक पत्नी डाक्टर के पास पति के सिर दर्द की दवाई लेने गई। डाक्टर ने दो गोलियां पत्नी के हाथ में दे दीं। पत्नी ने पूछा:—

"इन्हें किस समय लेना होगा?"

"रात को सोने से पहले"

"सोने का समय तो बदलता रहता है। आप यह बतलाइये कि कितने बजे ?"

"आप कितने बजे सोती हैं ?"

"जब वे सो जाते हैं—उसके बाद।"

"फिर भी कब ?"

"१० बजे"

"तब, इसे पौने दस बजे ले लीजिये"

"उन्हें तो १२ बजे से पहले नींद नहीं आती।"

डाक्टर ने उत्तर दिया "यह दवा उनके लिये नहीं आपके लिये है। आप चैन से सो जाएँगीं तो उनका सिर-दर्द खुद दूर हो जायगा।"

मैंने आसपास के घरों की बहुत सी स्त्रियों में यह दोष देखा है कि वे कुछ वर्षों के गृह-जीवन के बाद पतियों पर अनुशासन शुरू कर देती हैं। ये स्त्रियां प्रायः वही होती हैं जो गृह कार्य में बहुत दक्ष, पति परायणा और आदर्श माता होती हैं। पत्नीत्व में भी यह आदर्श की सीमा के बहुत पास पहुंच जाती हैं। इसमें भी सन्देह नहीं कि इन्होंने पति की सेवा में अनेक कष्ट झेले होते हैं और बच्चों की मां बनकर बहुत कुर्बानियां की होती हैं। पति की दृष्टि में उनका आदर होता है। हृदय से वह इन सेवाओं के लिये पत्नी का कृतज्ञ होता है।

इस मौन कृतज्ञता की स्वीकृति से ही पत्नि को सन्तुष्ट होना चाहिये। किन्तु, होता इसके विपरीत है। वह प्रायः सन्तुष्ट नहीं होती। वह समझने लगती है कि उसकी कुर्बानियों का पूरा आदर नहीं किया जारहा। इससे वह विक्षुब्ध हो जाती है।

यह विक्षोभ ही उसमें शासन की प्रवृत्ति जागृत कर देता है।

घर की मालकिन होने के सम्पूर्ण अधिकारों का वह बड़ी निर्दयता से प्रयोग शुरू कर देती है। घर की व्यवस्था में पति की सलाह या रुचि का ध्यान नहीं रखती। उससे सलाह मशिवरा करने की आवश्यकता भी नहीं समझती। उसकी पसन्द-नापसन्द की परवाह भी नहीं की जाती।

पहले, दोनों ने मिलकर घर बनाया था। घर की हर चीज दोनों की सलाह से आई थी। छोटी-छोटी बात पर दोनों ने एक दूसरे की रुचि का ध्यान रखा था। फर्नीचर कैसा हो, परदों का रङ्ग कौन सा हो, फूलदान कौन सा अच्छा है, इन सबका निर्णय दोनों ने मिलकर किया था। अब पत्नी यह कहने लगती है, "आपको इन चीजों की तमीज नहीं है।"

घर में बच्चों के आने के बाद यह रोग और भी भयङ्कर हो जाता है। चाहिये तो यह कि उनकी देखरेख और उनके शिक्षण आदि की सब व्यवस्था दोनों की सलाह से हो, लेकिन वहां भी अनुशासनप्रिया माता अपने कन्धों पर ही इसका बोझ ले लेती है। पति को यह कहकर अलग कर दिया जाता है कि "यह महकमा मेरा है आपका नहीं। मेरे और बच्चों की बात में आप दखल न दें"

पतियों को इस तरह मुट्ठी में बन्द करने का उद्योग पति की दृष्टि में पत्नी को अप्रिय बना देता है। तुम्हें मालूम ही है, बन्द मुट्ठी में तो मिट्टी भी नहीं रहती। बिखर जाती है। जिनके हृदय में जगह नहीं रहती वे ही मुट्ठी में रखने की बातें सोचती हैं। पति का स्थान हृदय है—मुट्ठी नहीं।

शासन के अंकुश से पति को सीधे रास्ते पर लाने के प्रयत्न भी निरर्थक होते हैं। अंकुश का प्रयोग पशु के लिये होता है। मनुष्य का वशीकरण अंकुश से नहीं प्रेम से होता है। पथ-भ्रष्ट पति को भी रास्ते पर लाना हो तो भी अंकुश का प्रयोग नहीं करना चाहिये। रास्ता दिखाने के लिये प्रेम का दीपक जलाया जाता है। अंकुश के बल पर चलाओगे तो वह एक ठोकर से बचकर दूसरी ठोकर का शिकार हो जायगा।

पति पर शासन करने की इच्छा होते ही स्त्री अपनी मृदुलता का आकर्षण खो देती है। स्त्री की मृदुलता स्वयं ही पति पर शासन कर सकती है। यह सच है पुरुष स्वभाव से अहंभावी है किन्तु यह भी सच है कि स्त्री के प्रेम के आगे वह अपने 'अहं' को भूल जाता है।

एक बात कभी न भूलना। शासन और शासित में कभी प्रेम नहीं रह सकता। शासित व्यक्ति का मन शासन करने वाले के प्रति तीव्र घृणा से भर जाता है। शासन कितना ही कल्याणमय हो प्रेम भावना का स्वाभाविक शत्रु है।

जहां पति के मन में शासन की भावना जागेगी वहां भी यही प्रतिक्रिया होगी। स्त्री के मन में पति के प्रति गहरी घृणा पैदा होजायगी। आज के समाज में घृणा के विष से भरे दम्पति की संख्या कम नहीं है।

मैं नहीं चाहता कि तुम्हारी गिनती भी उन्हीं अभागे पति-पत्नी में हो जाय। वे तुम्हारा कहना नहीं मानते इस शिकायत की जड़ में जो भूल है उसका पता लगाने की कोशिश करो। क्या यह सच नहीं है कि पहिले वह तुम्हारे इशारे पर जान देने को भी तैयार हो जाते थे। उस समय तुम जो कहती थीं प्रेम से कहती थीं आज अधिकार से कहती हो। यही भेद है। तुम्हारी शैली में अधिकार की कर्कशता समा गई है। पत्नी होने

के नाते तुम्हें समाज ने जो अधिकार दिये हैं, मां होने के कारण तुम्हें जो पदवी मिली है, तुम उसके प्रयोग के लिये आतुर होगई हो।

इन अधिकारों का प्रयोग तभी करना चाहिये जब दूसरा कोई चारा न रहे। अधिकार की इच्छा और प्रेम से अपनी बात मनवाने की इच्छा, दोनों साथ साथ नहीं चल सकतीं।

तुम भी यदि पहले की तरह उनकी इच्छाओं का, उनकी भावनाओं का सन्मान करने लगोगी तो उसकी प्रतिक्रिया अवश्य होगी। प्रेम का प्रतिदान अवश्य मिलता है।

इसका आग्रह मत करो कि उनकी भलाई का ज्ञान उनसे भी अधिक तुमको है। यह बात कोई भी नहीं सुनना चाहता। यह कह कर तुम उन्हें मूर्ख उद्घोसित करती हो। अपनी बुद्धि सबको बड़ी लगती है। तुम भी अपने को उनसे अधिक समझदार समझती हो। इसमें कोई असाधारण बात नहीं है। किन्तु, यह बात उनके सामने कहकर तुम उनके प्रेम को सदा के लिये खो दोगी।

•

अपनी इच्छाओं को घर का कानून बनाने या सत्ताधारी की कोशिश मत करो। तुम्हें सूर्योदय से पहिले ही उठने की आदत है। इसके बहुत गुण हैं। किन्तु पतिदेव को देर तक सोने की आदत है। कुछ दिन तो तुम उनकी परवाह करती रही। बाद में सुबह उठकर तुमने घर की सफाई शुरू करदी। दरवाजे खट-खट बजने लगे। कपड़े फटकारने की आवाज ऊँची होती गई। पतिदेव को बुरा लगा। मगर बोले नहीं। करवट बदल कर फिर सो गये या चादर का पल्ला मुंह पर डाल लिया।—कुछ दिन बाद तुमने उनकी चादर खींच ली और हाथ पकड़ कर उठा

दिया। तुमने आग्रह किया।

"घूमने चलो।"

"मुझे सोने दो।"

"सुबह का घूमना स्वास्थ्य के लिये अच्छा होता है।"

"तो तुम घूम आओ।"

"मैं अकेली कैसे जाऊँ।"

इस युक्ति का कोई उत्तर नहीं था। अनिच्छा से उन्हें भी साथ चलना पड़ा। घूमने के बाद शीघ्र ही शीतल जल से स्नान करने पर तुमने उपदेश देना शुरू कर दिया। ठंडे पानी से नहाने पर उन्हें जुकाम होगया। फिर भी उन्हें जरूरी काम था। काम पर बाहर जाने का आग्रह करने लगे। तुमने उन्हें बिस्तर पर लिटा दिया। डाक्टर की यह बात तुम्हें याद थी कि जुकाम में पूर्ण विश्राम करना चाहिये।

"जरा वह अखबार दे दो।"

"नहीं तुम्हें जुकाम है।"

रोज अखबार पढ़ने का व्यसन था। वह छटपटा उठे। लेकिन तुम्हें क्या? तुम तो उनके कल्याण की भावना से ही कठोर अनुशासन कर रही थीं।

शाम को कुछ मित्र आये। तुमने उन्हें दरवाजे से ही बिदा कर दिया। पूछने पर वही उत्तर था "तुम्हें जुक़ाम है।"

मित्रों ने क्या सोचा होगा, यह विचार तुम्हारे मन में अशान्ति पैदा करने लगा। पत्नी को कहाः—

"दो मिनट बात कर लेते तो क्या हर्ज था।"

"एक दिन बात न की तो कौन सी आफत आ गई।"

पत्नी के इस उत्तर से तुम्हारे दिल को चोट लगी। लेकिन पत्नी का दावा था कि तुम्हारे कल्याण के लिये ही उसने ऐसा किया था।

गृहस्थ जीवन में ऐसी सैकड़ों घटनायें होती रहती हैं। एक अवधि तक उन्हें सहन किया जाता है। उनकी परवाह नहीं की जाती। फिर ये बातें मन में गांठ सी डाल जाती हैं। मन को मैला कर जाती हैं। हल्का-सा खिंचाव पैदा कर जाती हैं।

समझदार दम्पति ऐसी खिंचाव पैदा करने वाली बातों का जल्दी ही समाधान ढूंढ़ लेते हैं। एक दूसरे की रुचि को पहचान कर अपना मार्ग निश्चित कर लेते हैं। एक को संगीत का शौक है दूसरे को खेलों में भाग लेने का। एक को दुखान्त नाटक अच्छे लगते हैं दूसरे को सुखान्त। पति को सैर का शौक है पत्नी को सिनेमा का। एक दूसरे का ध्यान रख कर दोनों अपना कार्यक्रम ऐसा बनाते हैं कि दोनों के मन की बात पूरी होती रहे।

किन्तु, पत्नी के मन में यदि यह धारणा बस जाय कि दूसरे की रुचियां अकल्याणकारी हैं और अपनी कल्याणकारी, तब वह अपनी इच्छाओं को पति पर लादने का यत्न करने लगती है। इस यत्न से सम्पूर्ण कार्यक्रम ही बुरा है।

इसका प्रारंभ वाद-विवाद से होता है। पति-पत्नी के सम्बन्धों को अप्रिय बनाने में वाद-विवाद का बड़ा भाग है। इससे बचना चाहिये। सब जानते हैं कि वाद-विवाद से मतभेदों की खाई और भी गहरी होती है। वादी-प्रतिवादी दोनों अपने पक्ष में युक्तियां ढूंढ़ते-ढूंढ़ते कई ऐसी बातों का पता लगा लेते हैं जो उनके मन में पहले कभी आई ही नहीं थीं। उन बातों से उनका मन और भी पुष्ट हो जाता है। कारण यह कि वे उस समय केवल अपने पक्ष को पुष्ट करने वाली युक्तियां ही ढूंढ़ते हैं। कुछ तो उन नई युक्तियों के कारण और कुछ केवल हठ में मन

की कटुता और भी बढ़ जाती है। विरोध का रंग प्रत्येक युक्ति-प्रयुक्ति के बाद गहरा होता जाता है।

इस वाद-विवाद का बहुत बुरा असर यह पड़ता है कि इसके बाद समझौते का द्वार बंद हो जाता है। प्रत्येक पक्ष दूसरे की बात को मानना तो क्या उसका विचार करना भी अपना अपमान समझने लगता है।

फिर भी—कई पत्नियां युक्ति के बल पर पति को अपनी बात मनवाने का आग्रह करती हैं। इसमें सफलता नहीं मिलती तो वे पति को मूर्ख समझने लगती हैं। उनकी धारणा है कि जो व्यक्ति युक्ति संगत बात भी नहीं मानता वह केवल अनुशासन से ही काबू में लाया जा सकता है।

तुम्हारा हितचिन्तक

....

पति का व्यवसाय पत्र १९

[सम्पूर्ण व्यक्तित्व से प्रेम ; पति के व्यवसाय से अरुचि न रखो ; जीवन संगिनी, केवल 'घरवाली' नहीं ; सलाह दो, दखल नहीं ; पति के मित्रों से व्यवहार]

प्रिय कमला,

जीवन-साथी के प्रेम का अर्थ अभीतक तुम अच्छी तरह समझ गई होगी। उस व्यक्तित्व से तुम्हारा घनिष्ठ परिचय हो गया होगा। व्यक्तित्व में शरीर और मन की सभी विशेषतायें आ जाती हैं। उनकी मानसिक भावनाओं और व्यवहारिक परिस्थितियों से भी तुम्हारी जानकारी होगई होगी। प्रत्येक मनुष्य कुछ संस्कारों से बंधा होता है, कुछ भावनाओं की लहरों में तैरता रहता है और अपने आसपास कुछ विशेष परिस्थितियां बना लेता है। उन सबसे तुम्हारा परिचय होगया होगा.

मुझे मालूम है, भगवान् ने स्त्रियों में इतनी अन्तर्दृष्टि दी है कि वे बहुत जल्दी पुरुष के बाह्य-अन्तर को परख लेती हैं। खास कर जिससे वे प्रेम करती हैं उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व को खूब जान लेती हैं। यही अन्तर्ज्ञान उन्हें प्रेम के मार्ग में

सावधानी से चलने का निर्देश देता है और पूर्ण सावधान रहते हुए भी वे पुरुष को अपने हृदय का पूर्ण प्रेम अर्पित कर सकती हैं।

जब हम किसी से प्रेम करते हैं तो उसकी सभी प्रिय वस्तुओं से प्रेम करते हैं। उसके कामों से भी हमारा प्रेम होता है। विवाहित प्रेम में भी यही होना उचित है। स्त्री को पुरुष के निजी व्यक्तित्व से ही नहीं उसके कार्य से भी प्रेम होना चाहिये। पुरुष को अपना कार्य बड़ा प्रिय होता है। वह उसकी रोटी-कपड़े का ही सहारा नहीं होता, उसके सपनों में भी समाया होता है। उसकी जवानी के सुनहरे दिन उसकी साधना में बीते होते हैं। न जाने कितनी रातें जागकर उसने उन परीक्षाओं को पास किया होता है जो उसे वहां तक पहुँचने के योग्य बनाती हैं।

उन दिनों तुम उसके पास नहीं थीं। फिर भी तुम उस तपस्या का अनुभव कर सकती हो। तुमने भी तो शिक्षा पाई है। शिक्षा काल की परीक्षाओं से भी कठिन वे परीक्षायें हैं जिन में उस शिक्षा को आजीविका के साँचे में ढालने का श्रम करना पड़ता है। कठिनाई से उपलब्ध वस्तु और भी प्यारी होजाती है। तुम्हारे पति ने जिस व्यवसाय में सफलता पाई है उससे उन्हें बहुत प्रेम है। तुम्हें भी उससे उतना ही प्रेम होना चाहिये। तुम्हें भी उसका आदर करना चाहिये और उनकी व्यवसाय संबन्धी कठिनाइयों को आसान बनाने में सक्रिय नहीं तो मौन सहयोग अवश्य देना चाहिये।

यह बात तुम्हें इसलिये लिख रहा हूं कि हमारे घरों की गृह-देवियां प्राय: पति के व्यवसाय से उदासीन रहती हैं। पति की आजीविका का कौन-सा साधन है—इस प्रश्न पर वे तब तक

ध्यान ही नहीं देती जब तक श्रीमती जी की कंघी-पट्टी का सामान उन्हें मुँहमांगा मिलता रहता है। 'कुछ भी करें, हमें इससे क्या,' यह मनोवृत्ति शत-प्रतिशत नहीं तो नव्वे प्रतिशत स्त्रियों की तो अवश्य होती है। घर का खर्च चलना चाहिये, फिर भले कुछ हो, यही बातें हर घर की गृहिणी से सुनने में आती हैं।

किन्तु, यह लापरवाही तभी तक रहती है जब तक पतिदेव की आमदनी का कोई अन्त नहीं दीखता—धन की वर्षा आकाश से पानी की वर्षा की तरह होती रहती है, पतिदेव की जेबें सौ-सौ के नोटों से भरी हैं, श्रीमती जी को चेक-बुक दी हुई है, मन-चाही रकम बैंक में परवाना भेज कर निकाल सकती हैं। पतिदेव बाहर से डाका डालकर धन लाते हैं या किसी शरीफ़ का गला काटकर—इसकी चिन्ता पत्नी को नहीं होती। हमारे समाज में ऐसे धनियों की कमी नहीं है। फिर भी उनकी पूजा होती है। पत्नी भी ऐसे धनवर्धक प्रभु की पूजा करे तो स्वाभाविक ही है।

किन्तु ऐसे धन-कुबेर कितने हैं? अधिक संख्या तो ऐसे ही ही लोगों की है जो रोज कुआं खोदकर अपनी प्यास बुझाते हैं। मैं उन्हीं की बात कहता हूं। ऐसे युवकों की पत्नियां अपने पति के व्यवसाय से उदासीन नहीं रह सकतीं। उन्हें जानना ही होगा कि उनका आदमी सुबह से शाम तक पसीना बहाकर घर के खर्चों के लिये किस रीति से साधन जुटाता है। उस व्यवसाय से जितना प्रेम पति को है उतना ही पत्नी को रखना होगा।

मैं ऐसे घरों को जानता हूं जहां पति के व्यवसाय से पत्नी को उदासीनता ही नहीं, नफ़रत भी है। फिर भी पत्नी पति से प्रगाढ़ प्रेम होने का दावा भरती है। कान्ता के पति रामनाथ अध्यापक हैं। अध्यापन में पर्याप्त कमाई नहीं होती। घर के खर्चों में तंगी होती है। कान्ता ने रामनाथ से कई बार कहा कि तुम अध्यापन कार्य छोड़कर बीमे की दलाली का काम शुरू करदो।

कान्ता के चाचा एक बीमा कम्पनी के दफ़्तर में ऊँचे ओहदे पर हैं। दो हज़ार रुपया पैदा कर लेते हैं। उन्होंने भी कान्ता को सलाह दी थी कि रामनाथ चाहें तो दलाली के काम में पड़-जाँय। पांच छः सौ तो शुरू में ही हो जायंगे। कान्ता ने कई बार कहा—विनयपूर्वक भी और आग्रहपूर्वक भी—किन्तु रामनाथ को अध्यापन कार्य से प्रेम है। उसे आशा है कि वह शीघ्र ही कालेज में प्रोफ़ेसर हो जायगा। बचपन से उसने प्रोफ़ेसर होने के स्वप्न लिये हैं। जिस संस्था में पढ़ाता है, उसे जीवन-दान देने का प्रण किया हुआ है। यह प्रण तो उसने भावुकता के बहाव में कर लिया था लेकिन अब उसे सचमुच उस संस्था से प्रेम होगया है। पिछले १० वर्षों में वह वहां के पत्ते-पत्ते से परिचित होगया है। विद्यार्थी भी प्रेम करने लगे हैं। इसलिये वह उस संस्था को छोड़ने को तैयार नहीं होता।

कान्ता उनके इस आग्रह को दुराग्रह समझती है। उसकी युक्ति है "आख़िर रोज़गार पैसे के लिये किया जाता है। जिसमें भी ज्यादा पैसा मिले वह करलो।" कान्ता जब यह कहती है तो रामनाथ का मन पिछली बातों को याद करने लगता है। मस्तिष्क में यह सन्देह घूमने लगता है "क्या सचमुच रोज़गार पैसे के लिये ही किये जाते हैं?"

यदि ऐसा ही है तो सब लोग एक वही रोज़गार क्यों नहीं कर लेते जिसमें अधिक पैसा मिलता है? कामकाजों में इतनी विविधता क्यों है? कामकाज चुनते हुए रुचि का और लोक-कल्याण का ध्यान क्यों रखा जाता है?

धन-संग्रह ही प्रत्येक गृहस्थ का परम लक्ष्य हो जाय तो क्या यह सच है कि लोक-हित के कामों में लगन रखने वाले को शादी नहीं करनी चाहिये? कवियों—लेखकों—वैज्ञानिकों और अल्प-आय वालों को स्त्री से प्रेम करने या स्त्री का चिंतन करने

का भी अधिकार नहीं है। उसका मन विचित्र कल्पनायें करने लगता है। "मैंने शादी करके भूल की, मुझे शादी नहीं करनी चाहिये थी, मुझे घर बसाने का अधिकार नहीं था।" इसी तरह के विचारों से उसका मस्तिष्क घूमने लगता है। पत्नी के सामने जाने से भी उसे संकोच होता है। उसने शादी करके अपराध किया है, पत्नी को बच्चों का भार देकर अपराध किया है; ऐसे ही कितने ही अपराधों की कल्पना से वह आक्रान्त हो जाता है। परिणाम यह है अध्यापकी से भी मन उचट गया और बीमे की दलाली तो हुई ही नहीं।

मेरे एक मित्र कवि थे। उनका विचार था कि कविता से भी रोज़गार चलाया जा सकता है। वह गीतकार थे। गीतकारों ने अच्छा धन कमाया है। वे भी कमा सकते थे। लेकिन उनकी पत्नी इतनी प्रतीक्षा करने को तैयार नहीं थी। कवि महोदय जब कविता की तरंग में बह रहे होते तो वह उन्हें खाली बैठा देख बाज़ार से शाक-भाजी लेने भेज देती। जिन कागज़ों पर उनकी कविता लिखी होती थी, उन्हें हवा में उड़ता देखकर बटोर लेती तो रसोई में अंगीठी भभकाने के काम लाती थी। नतीजा यह हुआ कि कवि महोदय को वैद्यक की दूकान खोलनी पड़ी। वहाँ भी नुस्खों की जगह कागज़ के पुर्जों पर गीत लिखे जाते थे और मरीज़ों के जमघट की जगह शाम को कवि-सम्मेलन जमता था। अब भी कभी उनकी कोई कविता भूली-भटकी हाथ आ जाती है तो रोना आता है। जो रत्न राजमुकुट की शोभा बनना था, वह धूल में मिल गया है।

क्या घर के खर्चों की खातिर ही तुम्हें पति के व्यवसाय में दिलचस्पी नहीं लेनी चाहिये? क्या इससे अधिक तुम्हें उनके

जीवन-व्यवसाय में कोई रुचि नहीं ? तुम उनकी जीवन-संगिनी हो। 'घरवाली' गृह-संचालिका नहीं। उनके व्यवसायिक जीवन से उदासीन रहकर तुम उनके आधे जीवन से अलग रहती हो। उसमें वे बिल्कुल अकेलापन अनुभव करते हैं। क्या उस जीवन की कठिनाइयों में भाग लेने वाले किसी दूसरे साथी की तलाश करनी होगी उन्हें ?

यह भी तुम्हारा ही हिस्सा है। जब वह थके-हारे कचहरी से आयें तो जलपान के बाद उनके पास बैठो। कचहरी की कई बातें ऐसी होंगी जिन्हें कहकर वे दिल हल्का करना चाहते हैं। कई दिलचस्प कहानियाँ उनके मन में घूम रही हैं। उन्हें अवसर दो कि वे खुले दिल से सब बातें सुनायें। तुम मन से सुनोगी तो वे भी मन से सुनायेंगे। तुम उनसे प्रेम करती हो न ? जिससे प्रेम करती हो उसकी हर बात अच्छी लगती है। तुम्हें बड़ा आनन्द आयगा उनकी बातों में। नई-नई बातें सुनने को मिलेंगी। उपन्यास से भी अधिक मनोरंजक किस्से सुन सकोगी।

कई बार वे मन में कोई उलझन लेकर आयेंगे; कोई ऐसी समस्या—जिसका हल न सूझता हो। तुम उन्हें उसके सुलझाने में सहायता देना। अकेला मस्तिष्क कई बार एक ही आवर्त्त में चक्कर लगाता रहता है। उसी प्रश्न का दूसरा पहलू उनके दिमाग में नहीं आता। तुम तो स्वतन्त्र रूप से सोचोगी। संभव है तुम उस समस्या को पहली सूझ में ही हल कर दो। उस समय वे तुम्हारा उपकार मानेंगे। तुम्हें भी कुछ उपयोगी काम करने की आत्मतुष्टि मिलेगी। तुम्हारा प्रेम स्थिर आधार पर जमता जायगा। उसकी नींव मजबूत होती जायगी।

पतिदेव से उनकी बातें सुनते हुए कानों से ज्यादा काम लेना, जीभ से कम। सुनना अधिक, कहना कम। जितना वे सुनायें

उतना ही सुनना। व्यर्थ के कौतूहल दिखलाकर परेशान न करना। बिन माँगे सलाह भी न देना। यह जतलाने की भी चेष्टा न करना कि तुम उनसे अच्छी वकालत कर सकती हो। उनकी ग़लतियाँ निकालने के प्रलोभन में न पड़ना। 'आप पूरी तरह केस की छान-बीन नहीं करते', 'आपको मुवक्किलों से पहले ही फीस रखवा लेनी चाहिये', 'आपका मुन्शी बहुत सुस्त है' आदि बातें उनको अच्छी नहीं लगेंगी।

कुछ स्त्रियाँ या तो दखल देती ही नहीं और देती हैं तो इतना कि पति की गुरू बन जाती हैं। मेरे पहचान वाले एक घर में पत्नी स्वयं समय-असमय दफ्तर में चली जाती है और काम करने वालों की त्रुटियाँ निकालने लगती है। और थोड़ी सी भी त्रुटि पर कार्यकर्त्ता को नौकरी से अलहदा करने का हठ ठान लेती हैं। उसका पति पिछले २५ साल से प्रेस चला रहा है। जिस मशीनमैन को उसने २५ साल से रखा हुआ है, उसे उनकी पत्नी एक चुटकी में अलहदा करने का आग्रह करती है।

अखबार के संपादक से पत्नी की नहीं बनती। क्योंकि वह जरा स्वतन्त्र विचारों का व्यक्ति है। उसने एक बार उनकी घरेलू खबर को अखबार में छापने से इन्कार कर दिया था। वह समाचार-पत्र को केवल सार्वजनिक समाचारों के प्रकाशन का माध्यम समझता है। अखबार के मालिक का भी यही विचार है। किन्तु पत्नी साहिबा इसे वैयक्तिक सम्पत्ति मानती हैं। इस मतभेद का परिणाम यह हुआ कि १५ वर्ष के अनुभवी संपादक को अपमान-पूर्वक निकल जाना पड़ा।

पति के व्यवसायिक जीवन में पत्नी को सीधा दखल कभी नहीं देना चाहिये। किन्तु उसकी प्रधानता हर समय उसके मस्तिष्क में रहनी चाहिए। घर की सम्पूर्ण व्यवस्था उसकी व्यवसायिक सुविधाओं को दृष्टि में रखकर होनी चाहिये। व्यव-

साय के लिये पति यदि शहर से बाहर जाना चाहता है तो जाने दो। उसकी उन्नति में बाधक न बनो।

मैं एक युवक को जानता हूँ, जिसका गृहस्थ जीवन केवल इसलिये दुखी बन गया कि पत्नी ने उसे घर से बाहिर जाने नहीं दिया। युवक को विश्वास था कि उसका प्रवास उसकी उन्नति का कारण होगा। किन्तु पत्नी अकेली रहने को तैयार नहीं थी। युवक पत्नी की बात मान गया किन्तु जब भी वह अपने ऊँची जगहों पर पहुँचे साथियों को देखता है तो पत्नी को कोसता है। पुरुष को अपनी प्रतिष्ठा से प्रेम होता है। उसकी सामाजिक स्थिति से भी उसकी सफलता का माप किया जाता है। पत्नी यदि उसकी उन्नति में बाधक हो जाय तो वह कभी दिल से क्षमा नहीं करेगा। मैं चाहता हूँ कि तुम पर यह कलंक कभी न आये।

सबसे अच्छा तो यह है कि तुम अपने को पति के इस घर से बाहिर के जीवन की भी संगिनी बन सको। इसमें कुछ अनोखापन नहीं है। किसान औरतें खेती में पुरुष का हाथ बटाती हैं। हाथ का काम करने वाले मज़दूर लोगों की स्त्रियाँ पुरुषों को उनके काम में पूरा सहयोग देती हैं। जब तक स्त्रियाँ अपने घर के लिये गृह-स्वामी के साथ मिलकर काम करती हैं तब तक स्त्रियों को धनोपार्जन करने के लिए बाहिर जाने का प्रश्न ही नहीं होता। नूरजहाँ और क्लियोपैट्रा यदि साम्राज्यों के संचालन में अपने सम्राटों की सहकारिणी हो सकती थीं तो छोटे-छोटे व्यवसायों में स्त्रियों की साझेदारी अक्रियात्मक कैसे हो सकती है ?

व्यवसायिक-जीवन साझेदारी का जीवन है। जितना मेल-जोल बढ़ता है उतनी ही व्यवसाय को तरक्की मिलती है। इस

मेल-जोल में कुछ ऐसे भी संगी मिल जाते हैं जो तुम्हारे पति के मित्र बन जाते हैं। उनका घर में आना-जाना शुरू हो जाता है। पति के कुछ पुराने जीवन के भी मित्र होते हैं। उन मित्रों का भी तुम्हारे पति पर कुछ अधिकार है। पति के मित्र तुम्हारे भी मित्र नहीं तो हितैषी अवश्य हैं। उनके मन में तुम्हारे लिये आदर ही होगा।

उनका सम्मान करना तुम्हारा कर्त्तव्य है। प्रायः होता यह है कि पत्नियाँ इन पुराने मित्रों को बड़े सन्देह की दृष्टि से देखती हैं। उनसे विमुख करने के लिये पति को तरह-तरह की बातें कहती रहती हैं।

"जाने कैसे-कैसे मित्र बना रखे हैं तुमने, इन्हें कृपा करके घर तो लाना नहीं। बाहिर ही मिल लिया करो इनसे।"

इन बातों से तुम्हारा पति प्रसन्न नहीं होता। कभी-कभी बातचीत में कलह होने पर पत्नी कह देती है—

"मालूम होता है तुम्हारी संगति अच्छी नहीं। तुम ये बातें अपने मित्रों से सीखते हो। तुम्हारे मित्र अच्छे नहीं हैं। उनसे दूर ही रहा करो।"

घर आने में कभी देर हो जाय तो वह कह उठती है—

"फिर उस शराबी दोस्त के चले गये होगे। क्या जाने कभी उसके साथ बैठकर पीने भी लगो।"

मेरे पहचान का एक अमीर आदमी है, रामनाथ। उसके पास लाखों की जायदाद है। वह राजसी ठाठ-बाठ से रहता है। उसकी पत्नी को यही शिकायत है कि उसके बहुत से मित्र ग़रीब हैं। उसके मित्रों में से एक है 'कवि'। रामनाथ को कविता से प्रेम है। वह स्वयं भी कविता करता है। कवि-सम्मेलनों में भाग भी लेता है। इसलिये 'कवि' समुदाय से उसकी जान-पहचान है। पत्नी को इन कवियों से चिढ़ है। कवि महोदय जब कविता

सुनाने लगते हैं तो पत्नी किसी-न-किसी बहाने अपने पति को अन्दर बुला लेती है और कहती है "अब इसे बिदा करो मेहरबानी करके। मेरे तो सिर-दर्द होने लगा।"

उनके दूसरे मित्र हैं, शतरंज के खिलाड़ी। इनका कोई दूसरा धन्धा ही नहीं। शतरंज ही खेलते हैं। घरबार भी नहीं है। रामनाथ ने इन्हें घर पर ही बसा रखा है। पत्नी को उसके नाम से बुखार आता है। बहुत रोकने पर भी शतरंज के दाँव चलते रहे तो उसने शतरंज के मोहरे कूड़े-कचरे की बल्टी में डाल दिये। आखिर इन्हें बोरिया-बिस्तर समेटकर घर से जाना पड़ा। रामनाथ को पत्नी के इस व्यवहार पर बड़ा क्रोध आया। उसने इसका बदला लिया शतरंज की एक क्लब में शामिल होकर। अब जब पत्नी पूछती है 'कहाँ देर लगी' तो रामनाथ यही उत्तर है "शतरंज खेलने क्लब में गया था।"

पत्नी को पति के मित्रों का आदर करना चाहिये। पति को भी चाहिये कि वह पत्नी की सहेलियों का मान करे। मैंने आज तक यह नहीं सुना कि कभी पति को पत्नी की सहेलियों का आना खटका हो। घर का जीवन मित्रों के आवागमन के बिना बड़ा नीरस हो जाता है। इसके द्वार मित्रों के लिये खुले रहने चाहियें। घर को एक किला मत बनाओ। इसकी दीवारें इतनी ऊँची नहीं होनी चाहिएँ कि बाहर की ताज़ी हवा घर में प्रवेश न कर सके।

पति-पत्नी के पारस्परिक संबन्धों को फिर से ताज़ा करने के लिये भी उन्हें मित्रों से मेल-जोल बढ़ाना चाहिये। पति के मित्र भी परिवार का अंग बन जाते हैं। घर का जीवन भी पति-पत्नी के ही एकान्त मिलन से नहीं निभता। यदि दोनों अकेले ही रहेंगे, किसी अन्य से खुलकर मिले-जुलेंगे नहीं, तो थोड़े दिन बाद दोनों एक-दूसरे से ऊब जायेंगे। बातों में विविधता नहीं

रहेगी। उनकी बातों का खज़ाना खत्म हो जायगा। अपने पुराने संस्मरणों की आत्मकथायें सौ-सौ बार दुहराई जा चुकी होंगी। विचार-विनिमय भी सैकड़ों दफ़ा एक ही जैसा हो चुका होगा। बात वहाँ चलती है जहाँ कोई नयापन आने की आशा हो।

यह नवीनता मित्रों के मेलजोल से ही आती है। गृहजीवन भी केवल पति-पत्नी का प्रेम-मिलन नहीं बल्कि सामाजिक जीवन का ही अंग है। उस जीवन में मित्रों की भी साझेदारी है। अच्छे मित्रों की जितनी भी अधिकता होगी—पारिवारिक सुख उतना ही बढ़ेगा।

तुम्हारा हितचिन्तक

....

ईर्ष्या : स्त्री चारित्र

पत्र २०

As a moth gnaws a garment,
so doth envy consume a man.

जिस रीति से कीड़ा वस्त्र को खाता है, उसी रीति से ईर्ष्या मनुष्य को खा जाती है।

In jealousy there is more self-love than love.

ईर्ष्या के मूल में प्रेम से अधिक स्वार्थ होता है।

[पति पर पूरा स्वत्व ; छाया की तरह अनुकरण ; संशयशीलता के कुछ विचित्र परिणाम ; घर की प्रेम-गंगा]

प्रिय कमला,

तुम्हारे पत्र से मालूम हुआ कि कुछ दिन पहले तुम 'ताज' में अपने पति के साथ खाना खाने गई थीं; वहां तुम्हारी टेबल

के पास एक सुन्दर स्त्री किसी के साथ बैठी थी। वह सचमुच सुन्दर थी। तुम्हारे पति ने उसकी ओर देखा और देखते रह गये। तुमने पूछा—

"उसे ऐसे क्यों देखते हो, जी!"

"कैसे भला?"

"जैसे तुम विवाह से पहले मुझे देखा करते थे।"

तुम्हारे पतिदेव यह सुनकर खिलखिला पड़े। लेकिन तुम उदास हो गईं।

इसके आगे अपनी मनोवस्था का चित्रण तुमने नहीं किया। वह काम मैं किये देता हूं। तुमने सोचा होगा "मेरे पति का मन मुझ से फिर गया है। वह दूसरी स्त्री के रूप पर आसक्त हो गये हैं। क्या जाने वह उनकी पूर्व-परिचिता हो। शायद छुप-छुप कर उससे मिलते भी हों। वह स्त्री अवश्य दुराचारिणी है। उसने मेरे पति के मन पर जादू कर दिया है। अब क्या होगा? हमारे प्रेम पर कलंक लग गया। मेरा जीवन डांवाडोल हो गया। मैं ठगी गई। पुरुष ऐसे ही होते हैं। उनका प्रेम धोखा होता है। स्त्रियां उनके दिल-बहलाव का खिलौनामात्र होती हैं। मेरा इस घर में क्या है। मैं अपने मैके चली जाऊंगी। उनके मन में जो आये करें।"

कुछ ऐसी ही दुश्चिन्ताओं में तुमने रात काटी होगी। शायद आँखों से पानी भी टपकाया होगा। पतिदेव गाढ़ी नींद में सो रहे होंगे। वे तुम्हारी सिसकियां नहीं सुन सके होंगे। सुबह तुम्हारी आंखें लाल होकर सूज गई होंगी। पतिदेव ने पूछा होगा—

"यह क्या हुआ?"

तुमने कहा होगा—

"तुम्हारी बला से—तुम्हें क्या?"

मुझे आश्चर्य है इतनी समझदार होकर भी तुम कई वार इतनी मूर्ख कैसे बन जाती हो। सुन्दरता को सराहना पाप नहीं। तुम्हारे पति ने जब पहलेपहल तुम्हें देखा था तो तुम्हारे विशुद्ध सौन्दर्य की ही सराहना की थी उन्होंने। उन नजरों में वासना तो नहीं थी। आज भी उन्होंने वासना-रहित दृष्टि से देखा—यह तो तुम भी स्वीकार करती हो। फिर, चिन्तित क्यों होती हो। पति के चरित्र पर इतना सन्देह क्यों करती हो कि वे हर स्त्री के सौन्दर्य का भोग करना चाहेंगे।

हम लोग अब उस युग में नहीं हैं जब स्त्रियां अन्त:पुरों में कैद रहती थीं। पुरुषों की दृष्टि से उन्हें दूर रखा जाता था। तब पुरुष केवल एक ही स्त्री के संपर्क में आता था—अपनी पत्नी के अतिरिक्त किसी से बात करने का अधिकार नहीं था। अब तो वह युग है कि स्त्रियां पुरुषों के कन्धे से कन्धा भिड़ाकर चलती हैं। खेल के मैदान में पुरुषों के समान दौड़ती-भागती हैं। आफिसों में काम करती हैं। फौज में भर्त्ती होती हैं। स्वतन्त्र रूप से सब कामों में भाग लेती हैं।

फिर भी, यह बात सच है कि पत्नी के मन में पति के विचलित होने की आशंका हर समय रहती है। वह चाहती है कि मेरे पति के जीवन में कोई स्त्री किसी भी रूप से संबद्ध न हो। स्त्रियों का अन्य स्त्रियों के प्रति यह ईर्ष्याभाव बड़ा गहरा है। वह पति पर अपना ही स्वत्व चाहती हैं। पति के अनुराग को एक फीसदी भी वह दूसरी स्त्री के मन में नहीं आने देना चाहती। वह स्त्री भले ही उसके पति की माता हो, बहिन हो, मित्र हो या यहां तक कि उसकी अपनी लड़की ही क्यों न हो।

राजेन्द्र मेरा मित्र है। उसकी एक बात सुनाता हूं। उसकी

पत्नी विमला अपने पिता के घर गई हुई थी। राजेन्द्र के पड़ोस में ही उसका मित्र शरत रहता था। शरत के आग्रह पर राजेन्द्र ने उसके घर भोजन करना शुरू कर दिया। दस दिन की ही बात थी। शरत की पत्नी को इसमें विशेष कष्ट नहीं हुआ। उसने आग्रह किया कि वह घर पर ही खाना खाया करें। दुर्भाग्य से शरत की पत्नी सुन्दर थी। विमला जब दस दिन के बाद मायके से आई तो उसे राजेन्द्र का शरत की सुन्दर पत्नी के हाथों खाना खाने का समाचार बहुत बुरा लगा। उसने अपने पति से इसकी चर्चा की। पति ने निर्दोष भाव से कह दिया "शरत की पत्नी का भी आग्रह था कि मैं भी वहीं खाना खा लूं।" यह सुनना था कि विमला ने फोन उठाकर शरत की पत्नी को सुनाना शुरू कर दिया—

"तू मेरे पति पर डोरे डालती है। सुन्दरता का इतना घमंड है तो स्टेज पर क्यों नहीं चली जाती। अपने आदमी से ही क्या तृप्ति नहीं मिलती तुझे, जो दूसरे घरों की ओर झांकती फिरती है।"

राजेन्द्र यह सब कुछ सुन रहा था। उसने मित्रपत्नी का यह अकारण अपमान न सहकर विमला के मुख पर तमाचा जड़ दिया। टेलिफोन झटक कर छीन लिया। दो मिनट में यह सब नाटक हो गया।

मैं ऐसी कई पत्नियों को जानता हूं जो सार्वजनिक मनोरंजन के स्थानों पर जाकर खेल-तमाशा नहीं देखतीं—पति की चौकीदारी ही करती हैं। पतिदेव की आंखें खेल की ओर रहती हैं और पत्नी की आंख पति की आंख पर रहती है। वह यही ताड़ती रहती हैं कि कहीं उसकी दृष्टि पास में बैठी सुन्दर लड़की पर तो नहीं जम गई।

दफ्तर से लौटने में देर होने के साथ पत्नी की दुश्चिन्ताओं का घटाटोप सघन होता जाता है। वह इसी परिगणना में व्यस्त हो जाती है कि आज किस मित्र की पत्नी से बात करने ठहर गये होंगे। बारी-बारी उसे अपनी पहचान की सब लड़कियों पर शक होने लगता है। सब स्त्रियां उसके पति के रास्ते में जाल बिछाकर उसे फंसाने की साजिशें कर रही हैं—इन कल्पनाओं से उसका मन घिर जाता है। मित्रों के घर टेलिफोन से पूछना शुरू हो जाती है। पति के घर न पहुंचने का ढिंढोरा शहर भर में पिट जाता है। दूसरे दिन जो मिलता है यही कहता है 'कल कहां चले गये थे—तुम्हारी पत्नी कल बड़ी परेशान थी।' बेचारा पति सब को सफाई पेश करते-करते थक जाता है।

कुछ पत्नियां इतनी सन्देहशील हो जाती हैं कि वे एक दिन के लिये भी पति को अकेला छोड़कर नहीं जातीं। माता-पिता बुलाने का आग्रह करेंगे, भाई की शादी का बुलावा आयगा, सहेलियों के निमन्त्रण आयेंगे किन्तु पत्नी अपने आसन से नहीं हिलेगी। उसे भय है कि पति को अकेला छोड़ दिया तो अवश्य किसी न किसी जाल में फंस जायगा। छाया की तरह वह सदा पति के संग-संग रहती है। उसे यथासंभव एक दिन के लिये भी अकेला नहीं रहने देतीं। इतना अतिशय साहचर्य दोनों दिलों में अप्रीति के बीच बो देता है। वे भूल जाती हैं कि कुछ काल का वियोग प्रेमियों के मिलन को प्रिय बनाता है। कुछ दिन बिछुड़ने के बाद जो मिलते हैं वे नई ताज़गी से मिलते हैं। विरह की घड़ियां प्रेमियों की याद में बीतती हैं। विरह में साथी के दोष भूल जाते हैं, कड़वाहट दूर हो जाती है। मिठास ही मिठास रह जाती है। पति-पत्नि में ऐसा अल्पकालिक विरह रसायन का काम करता है। संशयातुर पत्नियां इसका अवसर न देकर बहुत भूल करती हैं।

यह सन्देह कुछ मूर्ख पत्नियों को अतिशय शृङ्गार-प्रिय भी बना देता है। उनके दिल में यह बात जम जाती है कि पतिदेव बनी-ठनी औरतों के अनुरागी हैं। उनके अनुराग पर एकाधिकार पाने के लिये क्यों न वे बन-ठन कर रहने लगें। बस—इतने में शृङ्गार की नई-नई चीज़ों पर पैसे का अपव्यय शुरू हो गया। नकली पलकों की सजावट से आँखों को कटीला बनाने लगीं, ओठों की लाली गहरी हो गई, गालों पर गुलाल लगने लगा। वेश-भूषा में भी परिवर्तन किया गया। नारी के संमोहक अङ्गों का आकर्षण बढ़ाया गया। ब्लाउज़ का गला ज़रा नीचे तक खुला रखने की हिदायत हो गई। अखबार में नई नोकदार चोलियों का विज्ञापन पढ़ा था। आज तक परवाह न की थी। अब अँग्रेजी दूकानों पर जाकर नई चोलियां खरीदी गईं। राजसी इत्रों की महंगी शीशियों पर पैसा बहाया गया।

घर में बरसों के मितव्यय से पूँजी संचित की थी। सोचा था विशेष अवसरों पर काम आयेगी। पत्नी ने इसे ही विशेष अवसर समझा। पति के हृदय पर विजय पाने से बड़ा अवसर और कौन-सा हो सकता था।

इन मूर्ख स्त्रियों को कौन समझाये कि बाहरी चमक-दमक के बल पर पति के हृदय को जीतना उसकी वासनाओं को भड़काना है, उसकी तृष्णा को और भी प्रबल बनाना है। यदि सचमुच उसमें यह तृष्णा जाग गई है तो वह नये-नये प्रलोभनों में और भी जागेगी, शांत नहीं होगी। तुम भी उसे और भोगासक्त बनाने का यत्न करोगी तो वह तुम्हें भी केवल विलास की सामग्री मान लेगा और घर को विलास-भवन। इस आग में घर की शक्ति, घर की पवित्रता जलकर राख हो जायेगी। तुम्हारा जीवन हाहाकारमय हो जायेगा।

मैं ऐसे घरों को जानता हूँ जो केवल [illegible] बने हुए हैं।

मेरा मित्र है अशोक। वह अनन्त धन का मालिक है। मैं जानता हूँ वह सच्चरित्र है। उसकी जान-पहचान बहुत-सी लड़कियों से या अपने मित्रों की पत्नियों से है। क्लब में वे उससे मिलती हैं। फिर भी वह विषयी नहीं है। उसकी पत्नी को शक हो गया कि वह लड़कियों को मिलने का शौकीन है। पत्नी ने सोचा क्यों न घर में ही शौक पूरा कर दिया जाये। आये दिन वह अपनी सहेलियों और पति के मित्रपरिवार की लड़कियों को घर में निमन्त्रित करने लगी। नाच-गाने की महफिलें घर में ही जमने लगीं। कोई दिन ऐसा न जाता जब १०-१२ की दावत न होती। दावत के बाद अँग्रेज़ी नाच भी होता।

अब यह हाल है कि अशोक को दस-पांच की दावत के बिना खाने में रस ही नहीं आता। पहिले पत्नी के पास बैठकर वह दिल की बातें तो कर लेता था—अब वह भी नहीं रहा। अशोक की पत्नि ने बढ़िया-से-बढ़िया मेक-अप भी किये, मुंह की नई सजावट के लिये डाक्टरों से भी राय ली लेकिन अशोक का मन नहीं बदला।

मेरा विश्वास है कि अशोक के मन में पाप था ही नहीं। पत्नी के प्रति उसमें पहिले भी प्रेम था और अब भी है। उसकी पत्नी ने उसे समझने में भूल की है। उसे समझना चाहिये था कि कई पुरुष बहुत हंसमुख होते हैं। लड़कियां उनके प्रति आकृष्ट होती हैं। वे भी उनसे हंसकर मिलते हैं। किन्तु इस हंसने में वे पत्नी के प्रेम को भुला नहीं देते। पत्नी का स्थान उस से बहुत ऊँचा बना ही रहता है। हां—पत्नि के प्रति प्रेम-प्रदर्शन में वे आतुरता नहीं दिखाते। इसका कारण भी यह होता है कि इस बाह्य प्रदर्शन की वे विशेष आवश्यकता नहीं समझते। पति-पत्नी का प्रेम प्रशांत सागर की तरह गंभीर हो जाता है। उसमें पर्वत की चोटी से गिरने वाले निर्झर की तरह चंचलता नहीं रहती।

ऐसे चंचल प्रेम की उत्कट आकांक्षा भी कई बार पत्नियों को बेचैन बना देती है। उसे पाने के लिये वे निहायत ओछे उपायों का जिस प्रकार सहारा लेती हैं उससे उनका दर्जा पति की दृष्टि में बढ़ता नहीं, कम ही होता है।

साधारणतया पुरुष स्वाभिमानी होता है। समाज में वह अपनी प्रतिष्ठा बनाकर रखना चाहता है। भूलचूक होने पर भी वह उसकी आँच अपने घर तक नहीं आने देना चाहता। अपनी स्त्री को वह इन क्षणिक भूलों की छाया से दूर ही रखने को उत्सुक रहता है। किसी स्त्री के लिये मन की निर्बलता होने पर ही वह अपनी प्रतिष्ठा को बिल्कुल भुला नहीं देता। निर्बलता को निर्बलता ही मानता है और जिस स्त्री से उसे अपनी वासना की तृप्ति मिलती है उसे भी नीचे दर्जे की ही समझता है। क्षणिक तृप्ति में वह घर के सुखों और पत्नी के मृदुल-प्रेम को भूल नहीं जाता। पत्नी का स्थान उसके मन में और भी ऊँचा हो जाता है। बाहिर के भोग-विलासों से थका-हारा जब वह घर की प्रेम-गंगा में स्नान करता है तो उसका मन घर की ओर फिर आकृष्ट हो जाता है। घर उसके लिये सदा तीर्थ-स्थान बना रहता है।

किन्तु इस बीच पति पर संशय करके या पति की एकाध भूल को पहाड़ बनाकर जो पत्नियाँ साक्षात् चंडी की मूर्त्तियाँ बन जाती हैं वे सदा के लिये घर की सुख-शान्ति का द्वार बन्द कर देती हैं। घर का द्वार पति के लिये या पत्नी के लिये कभी बन्द नहीं होना चाहिये। भूल पत्नी की हो या पति की, घर के दरवाजे उनके लिये खुले हैं। घर का मतलब ही यह है कि उस स्थान पर भले-बुरे की जाँच नहीं की जाती। माता की वात्सल्यमय गोदी की तरह घर का आंगन सब की राह देखता रहता है।

पत्नी को चाहिये कि वह बहुत शीघ्र अपने मन का संशय मिटा ले और इससे भी अच्छा है कि वह सन्देह को स्थान ही न दे। इस संशयशीलता में हमारे संकीर्ण विचारों का भी बड़ा स्थान है। उन विचारों का आधार है कि पुरुष और नारी का कोई भी सम्बन्ध वासनारहित नहीं हो सकता। इन विचारों में पती पत्नियाँ बहुत जल्दी अपना धीरज खो बैठती हैं। समय आ गया है कि इस विष-भरे विचार को तिलांजलि देदी जाय। पत्नी को चाहिये कि वह पति के दायरे के बाहिर भी संस्कारी पुरुषों से मेल-जोल बनाये। यह असंभव है कि कालेज की शिक्षा प्राप्त लड़कियों का किसी भी पुरुष से परिचय न हो। घर की परिधि में भी उनका परिचय अनेक पुरुषों से होता है। किन्तु विवाह के बाद उनसे मिलना-जुलना बन्द हो जाता है। विवाह की दीवार उसकी आँखों के आगे से पति के अतिरिक्त सम्पूर्ण मनुष्य जाति को ओझल कर देती है। घर की दहलीज़ तक ही उसके पैर जा सकते हैं और घर के आंगन का आकाश ही उसका विश्व-जगत बन जाता है।

सतीत्व की रक्षा के लिये उसे इस रेखा के भीतर ही रहना पड़ता है। हम इसे सतीत्व की रेखा कह सकते हैं। उसके अन्दर केवल पति का ही प्रवेश है। पति जब चाहे उस रेखा को लांघ-कर बाहिर जा सकता है। यह रेखा स्त्री की आत्मा पर चाबुक के निशान की तरह गढ़ जाती है। गरम लोहे के दाग़ की निशानी की तरह वह उसके प्राणों में हर समय जलन पैदा किया करती है। यह सन्ताप ही अनेक बार पति के लिये सन्देह बनकर उसके हृदय से निकलता है। जब तक इस रेखा के निशान नहीं मिटेंगे—सन्देह दूर नहीं होगा। इस लोहे के पिंजड़े से बाहिर आकर ही वह देख सकेगा कि पुरुष और नारी एक ही स्वच्छ आकाश में निर्मल भावनाओं के साथ एक साथ उड़ सकते हैं। दोनों ज़हर

के पुतले या आग के शोले नहीं हैं। दोनों में शुद्ध सहानुभूति रह सकती है। मैत्री की भावना पनप सकती है। सौहार्द पल सकता है।

बाहिर आकर वह यह भी देखेगी कि घर में पत्नी बनकर उसे जो स्थान प्राप्त है वह अन्य सब स्थानों से ऊँचा है। बच्चों की मां बनकर वह घर की ही नहीं पति के हृदय की भी रानी बन गई है। अपने महत्त्व से पूर्णतया आश्वस्त होने के बाद उसकी आत्मा सन्देह के झोंकों से डगमगायेगी नहीं।

तुम्हारा हितचिन्तक

....

पत्र २१

'Absence makes the heart grow fonder'.

'वियोग मिलन की उत्सुकता को तीव्र कर देता है।'

[स्वस्थ मनोरंजन ; निर्दोष आनन्द आत्मा का भोजन ; सुख के भी साथी बनो ; वियोग की मधुरता]

प्रिय कमला,

गृहस्थ-जीवन का मार्ग केवल कर्त्तव्य-कंटकों से घिरा हुआ नहीं है। ना ही वह फूलों की सेज है। उसमें कांटे भी हैं, फूल भी हैं। कांटों की गोद में ही तो फूल रहता है। कर्त्तव्यों की पूर्त्ति में ही आनन्द का निवास है, प्रेम की परितृप्ति है।

यह तो है जीवन का सीधा मार्ग। कभी-कभी सीधे-लंबे मार्ग पर चलते-चलते यात्रा में नीरसता आ जाती है। आँखें एक-सा नज़ारा देखते-देखते थक जाती हैं। तब यही मन करता है

कि कुछ देर रास्ते से हटकर बैठ जायें। मनुष्य का मन विविधता चाहता है। यह विविधता मन की थकावट को दूर कर देती है, नया जीवन देती है, नया उत्साह देती है।

पति-पत्नि को भी अपने जीवन में विविधता लाने के अवसरों का उपयोग करना चाहिये। कभी-कभी गृह-जीवन की दिनचर्या में अदल-बदल करते रहना चाहिये। कर्त्तव्यों की परिधि के बाहिर स्वस्थ मनोरंजन के लिये भी कार्यक्रम बनाने चाहियें।

कभी-कभी घर में भोजन न करके होटल में खा लीजिये। इससे गृहपत्नी को एक दिन की छुट्टी मिलेगी। पुरुषों को सात दिन में एक दिन पूर्ण विश्राम मिल जाता है। पत्नी को भी मिलना चाहिये। भोजन में भी विविधता मिलेगी।

कभी-कभी मनोरंजन के स्थानों पर भी जाना चाहिये। मनोरंजन भी जीवन का अँग है। निर्दोष आनन्द आत्मा का भोजन है। हँसने-खेलने से शारीरिक स्वास्थ्य ही नहीं बनता, आत्मिक परितोष भी होता है। पति-पत्नी जब साथ साथ हंसें-खेलेंगे तो उनकी निकटता बढ़ेगी। मिलकर गृहस्थ की गाड़ी खींचने के लिये ही दोनों को विधाता ने नहीं मिलाया—हंसने-खेलने के लिये भी मिलाया है। दुःख में एक दूसरे का दुःख घटाने और खुशी में एक दूसरे की खुशी बढ़ाने से ही दोनों सच्चे जीवन-साथी बनेंगे।

हमारे घरों में यह होता है कि पत्नी अपनी सहेलियों के साथ हंस-खेल लेती है और पति अपने मित्रों के साथ। पति-पत्नि का साथ केवल घर की चक्की चलाने में होता है। इसीलिये यह साथ केवल दुःखदायी स्मृतियों से भर जाता है। सुख की घड़ियों के साथी दूसरे होते हैं। उनकी स्मृति हमें घर के बाहिर ले जाती है।

दुःख के समय ही काम आने के लिये पति-पत्नी एक दूसरे का हाथ नहीं पकड़ते। दुख के समय भी हम उन्हीं साथियों की याद करते हैं जो सुख में हमारे साथ थे। उनकी याद ही हमें सुख देती है। उनकी निकटता ही हमें ढारस बंधाती है। इसीलिये केवल दुःख के भागीदार पति-पत्नी दुःख को भी बंटा नहीं सकते। एक दूसरे की सेवा कर सकते हैं। डाक्टर या नर्स बन सकेंगे लेकिन मन की व्यथा को हल्का नहीं करेंगे।

दुःख का आधार प्रायः मानसिक होता है। शरीर का दुःख तो कभी-कभी आता है। केवल दुःख के साथी के सामने तो व्यक्ति अपने मन की व्यथा को प्रकट भी नहीं करेगा। इसलिये अगर तुम अपने पति के दुख की साथिन बनना चाहो तो सुख की भी साझीदार बनो। उसके हंसने-खेलने में भी योग दो।

कभी-कभी दोनों को जुदा-जुदा मनोरंजनों में भी भाग लेना चाहिये। अल्पकालिक वियोग पुनर्मिलन को प्रगाढ़ बनाता है। अँग्रेजी की कहावत है, 'Too much familiarity breeds contempt'. अतिशय निकटता घृणा के बीज बोती है। हर समय छाया की तरह साथ रहना दोनों की मानसिक स्वतन्त्रता का घातक हो जाता है। कई बार दैहिक दूरी दो दिलों को मिलाने में सहायक हो जाती है। जबतक वे दूर न हों तबतक दूरी का दर्द समझ नहीं आता, संयोग की इच्छा वैसी नहीं होती जैसी नये संयोग में थी।

इसलिये कभी-कभी प्रेम को नई स्फूर्ति देने के लिये भी वियोग की व्यथा का स्वागत करना उचित है। संस्कृत का एक श्लोक है :—

'संगम विरह विकल्पे वरमिह विरहो न संगमस्तस्याः ।
संगे सैव यदैका त्रिभुवनमपि तन्मयं विरहे ॥

अर्थात् संगम और विरह में विरह ही अधिक अभीष्ट है। संगम में तो वह अकेली एक ही होती है, किन्तु विरह में तो सम्पूर्ण त्रिभुवन ही तन्मय हो जाता है। सब जगह उसी का रूप दिखाई देता है।

दाम्पत्य प्रेम में वियोग का बड़ा महत्त्व है। वियोग का मीठा-मीठा दर्द प्रेमी के हृदयों के लिये अमृत से भी अधिक मधुर होता है। साहित्य के सभी काव्य वियोग-रस के कारण ही इतने लोकप्रिय हुए हैं। दुःखान्त काव्य सुखान्त काव्यों से अधिक स्थायी प्रभाव छोड़ जाते हैं।

पति-पत्नी के अनुराग को अमर रखने के लिये उनके सहवास में पर्याप्त अन्तर होना चाहिये। सतत साहचर्य प्रेम को नीरस बना देता है।

एक वर्ष में एक महीने के लिये दोनों को जुदा-जुदा रहने का कार्यक्रम बना लेना उचित है।

तुम्हारा हितचिन्तक

....

छोटी-छोटी बातें २२

'Small courtesies sweeten life, the great ennoble it'.

'छोटे छोटे मधुर व्यवहार ही जीवन को सरस बनाते हैं...।'

[अपने पति के सामने श्रृंगार न करो; दो मिनट के दो घंटे न बनाओ; वाचालता बुरी आदत है; हर समय घर की चिन्ता छोड़ दो; निन्दा में आनन्द न लो]

प्रिय कमला,

कुछ छोटी-छोटी बातें हैं जिनका ध्यान रखो। विवाहित जीवन इन छोटी-छोटी बातों से ही कड़वा बनता है। इन्हें छोटा न समझो। उदाहरण के लिए कुछ नीचे लिखता हूँ।

हर पति अपनी पत्नी को सुन्दर रूप में देखना चाहता है—लेकिन सजधज की पूरी प्रक्रिया को नहीं देखना चाहता। यह

प्रक्रिया देखने में रुचिकर नहीं होती; उसी तरह, जिस तरह कलाकार की अधूरी कृति कलाकृति नहीं होती। कोई कलाकार अपनी अधूरी रचना को दिखाना नहीं चाहता। इससे उसकी कला का मूल्य देखने वाले की दृष्टि में बहुत कम हो जाता है। पति इस स्वप्न ही में रहना चाहता है कि उसकी स्त्री स्वाभाविक रूप से सुन्दर है। इस स्वप्न को वह तोड़ना नहीं चाहता। उसके सामने 'मेक-अप' करोगी तो उसका सपना टूट जायगा। वह समझने लगेगा तुम्हारा सौन्दर्य धोखा है। केवल रंग-रोगन की माया है।

प्रायः सभी स्त्रियों को समय का अनुभव नहीं होता। घर से बाहिर जाने की तैयारी में तो वह अनुमान और भी गलत हो जाता है। 'अभी दो मिनट में तैयार हुई' कहकर वह दो घंटे लगा देती हैं। बाहिर जाने का समय सुबह से तय हो गया था। शृंगार में दो घंटे लगते थे तो तैयारी भी दो घंटे पहिले से शुरू कर देनी चाहिये थी। लेकिन नहीं, तैयारी आधा घंटा पहिले ही शुरू होगी। पतिदेव पूछ रहे हैं 'कितनी देर और है' बराबर उत्तर मिलता है 'बस, दो मिनट और।' प्रतीक्षा का समय बड़ा लम्बा हो जाता है। पतिदेव थक जाते हैं। चिढ़ जाते हैं। कई बार तो बाहिर जाने का प्रोग्राम भी छोड़ना पड़ता है। कई दफा यही बात होने के बाद पति निश्चय कर लेता है कि अब पत्नी के साथ बाहिर जाने का नाम भी नहीं लेगा। हारकर कह देता है "देखो जी! तुम अपनी सहेलियों के साथ ही बाहिर हो आया करो। मैं थका हुआ हूँ।"

नई बहू जब घर में आती है तो कुछ दिन तक चुप रहती है। उसे बुलाने के लिये सब जी-जान से कोशिश करते हैं। लेकिन जब वह बोलने लगती है तो चुप कराना कठिन हो जाता है। पति के वापिस आते ही वह नौकर की बातें, पड़ौसिन की कहानियाँ, अपने नाना-मामा-दादा की जीवन-कथायें, धाराप्रवाह सुनाना शुरू कर देती है। नौकर ने चोरी से दूध की मलाई उतार ली, वह सारा दिन बाहिर सोया रहा, सब्ज़ी के पैसों में से दो आने हज़म कर गया, पड़ौसिन के घर अजीब तरह के लोग आते हैं, उसने अपना कूड़ा हमारे दर-वाजे के सामने फेंक दिया, आदि बातें एक के बाद एक शुरू हो जाती हैं। घूमने के समय भी उसके मायके की कहानियाँ शुरू हो जाती हैं। उन कहानियों में कुछ बुरा नहीं, आखिर अपने घर वालों की ही बातें होंगी। लेकिन रोज़ उन्हीं किस्सों को सुनते-सुनते पति के कान थक जाते हैं। उसे अपनी बात कहने का तो मौका ही नहीं मिलता। सब के हित की बात के लिए भी समय नहीं मिलता। अच्छा तो यह है कि नित्य नई चर्चा हुआ करे। वह नहीं तो, कम-से-कम पुरानी बातों का पुनर्वाचन तो न हो। पत्नियों को यह आदत छोड़ने का यत्न करना चाहिये।

घर की सुरक्षा का ध्यान रखना पत्नी का कर्त्तव्य है। किन्तु उठते-बैठते, घूमते-फिरते हर समय इस सुरक्षा की चिन्ता करना पागलपन है। एक दिन मेरे मित्र मेरे साथ समुद्र-स्नान के लिये गये। उनकी पत्नी भी साथ थी। समुद्र की लहरों का मज़ा ले रहे थे। खूब हँसी-खेल चल रहा था। उसी समय अचानक मित्र-पत्नी का चेहरा फक पड़ गया। वह अपने पति से बड़ी चिन्ताग्रस्त मुद्रा में बोली—

'हाय ! अनर्थ हो गया।'

हमने समझा शायद कोई मछली उन्हें काट गई है या कोई पत्थर का तेज़ टुकड़ा उनके पैर में लग गया है। मित्र ने चिन्तित भाव से पूछा—

'क्या हुआ ?'

'हम अपने घर की खिड़की खुली छोड़ आये हैं।'

'तो क्या हुआ, सीखें तो लगी हैं। कोई अन्दर तो जा नहीं सकता।'

'लेकिन बरसात आ गई तब ?'

'आकाश में एक भी बादल नहीं है।'

'आते क्या देर लगती है—जल्दी चलो। कहीं आ गये तो कमरे का गालीचा भीग जायगा। पिछली बार वह भीग गया था तो दो दिन सुखाने में लगे थे।'

परिणाम यह हुआ कि 'पिकनिक' का सारा प्रोग्राम छोड़कर घर की खिड़की बन्द करने के लिए वापिस आना पड़ा। थोड़ी-सी बात को तूल देना बुरा है। घर की चिन्ता जब भूत बनकर सवार हो जाती है तो पत्नी का मन घर की परिधि में ही घूमा करता है। वह पति के किसी भी अन्य काम में साथ नहीं दे सकती।

प्रथम परिचय में ही स्त्रियाँ अपने घरेलू जीवन को झूठी-सच्ची बातें सुना डालती हैं। इनका प्रारम्भ प्रायः आस-पास वालों की निन्दा से होता है। 'अमुक लड़की उस पुरुष से न जाने क्या-क्या बातें किया करती हैं', 'वह लड़का रोज़ उसके घर फलों की डाली लेकर आता है' 'उसे न जाने किस-किस की चिट्ठियां आती हैं' आदि चरित्र-सम्बन्धी बातों में स्त्रियां बड़ी

दिलचस्पी लेती हैं। जहां दो स्त्रियां बैठेंगी, इसी तरह की बातें शुरू कर देंगी। इन बातों को खूब मसालेदार बनाकर सुनाया जाता है। पराये घरों की निन्दा से प्रारम्भ होकर इन बातों का प्रसंग प्रायः अपने-अपने घरों से जुड़ जाता है। दो-चार दिन की भेंट के बाद स्त्रियाँ अपने पति, अपने देवर, अपनी ननद व जिठानी, देवरानी की पोल खोलना शुरू कर देती हैं। घरों में कलह तो हुआ ही करता है। दिल की जलन उनकी बदनामी करके ठंडी की जाती है। थोड़े दिन के बाद कोई और आता है तो उसके सामने घर की और स्त्रियां उसकी पीठ पीछे बदनामी फैलाती हैं। यह ज़हर चारों ओर फैल जाता है। याद रखो, दूसरे पर कीचड़ उछालने से अपने पर भी छींटे पड़ते हैं। पर-निन्दा में आनन्द लेकर तुम अपने ही घर को हानि पहुँचाते हो।

इसी तरह कुछ और आदतें हैं जिनको छोड़ना श्रेयस्कर है। कुछ स्त्रियां यह प्रकट करने का यत्न करती रहती हैं कि सम्पूर्ण घर का भार उनके कन्धों पर है। स्वयं को महत्त्व देने की यह धारणा उन्हें अपनी दृष्टि में अतिशय गर्वित और दूसरे की दृष्टि में बहुत लघु और उपहासास्पद बना देती है। अपने अचेतन मन में हीन भावना को छिपाये रखने वाली स्त्रियां ही इस तरह अपने को ठगने की कोशिश करती हैं।

कुछ स्त्रियों की आदत होती है कि वे बाहिर सड़क पर चलते हुए अनावश्यक रूप से गरदन को अकड़ा कर चलती हैं। उन्हें यह भ्रम होता है कि सारी दुनिया की नज़रें उन पर केन्द्रित हो गई हैं। स्वयं को सौन्दर्य-सम्राज्ञी समझना और दुनिया को सौन्दर्य-लोलुप मानना भूल है। बाज़ार में सज-संवर कर निकलोगी तो लोग तुम्हें अवश्य देखेंगे। उनकी दृष्टि में आदर की अपेक्षा उपहास अधिक होगा। कौतूहल भी हो सकता है। दुनिया

की नज़रों से बचना है तो दुनिया की उपेक्षा करना सीखो। अपने काम में व्यस्त रहो, अपनी राह चलते जाओ। दूसरे की नज़रों में अपने को परखना या दूसरों की सम्मतियां सुनना तुम्हारी परेशानी को बढ़ायगा ही—घटायगा नहीं। परेशान होकर तुम अपने पति को भी परेशान करोगी। मैं ऐसी अनेक स्त्रियों को जानता हूँ जो राह चलते लोगों से अपने पति को भिड़ा देती हैं। पति का ध्यान हर समय स्त्री के सम्मान को सुरक्षित रखने में ही रहता है। उसे यही चिन्ता रखनी पड़ती है कि कोई पुरुष उसकी स्त्री को कुत्सित दृष्टि से तो नहीं देख रहा।

पति के हर काम में दखल देना स्त्री की बुरी आदत है। पति से यह आशा भी न करो कि वह प्रतिदिन अपनी दिनचर्या तुम्हें सुनायगा। अनावश्यक हस्तक्षेप करके तुम पति की परेशानियों को घटाती नहीं हो। बिना मांगे सलाह देना मूर्खों का काम है। ऐसी सलाह का कोई मूल्य नहीं होता। सलाह लेनी होगी तो पति तुमसे स्वयं सलाह ले लेगा। बिना मांगे परामर्श देना और उस परामर्श के अनुसार ही पति से आचरण करने का आग्रह करना भारी मूर्खता है। साधारण आचरण-व्यवहार के ये नियम पति-पत्नी के जीवन में भी उसी तरह सत्य हैं जिस तरह अन्य साधारण व्यक्तियों के जीवन में।

आजकल कुछ स्त्रियां घर की नीरसता को भंग करने के लिये रेडियो का अखंड पाठ जारी रखती हैं। घर का सूनापन रेडियो से भंग नहीं हो सकता। वह तो पति-पत्नी के प्रेम-व्यवहार से ही भंग होगा। रेडियो से इतनी आशा रखना मूर्खता है। घर की निःस्तब्धता बच्चों के आनन्द-किलोल से टूटनी चाहिये। रेडियो उसकी स्थानपूर्ति नहीं कर सकता।

पति को रोज़ अपने सपने सुनाना भी बुरी आदत है। मुझे मालूम हुआ है कई स्त्रियाँ सुबह के नाश्ते के समय रोज़ अपने

सपने सुनाती हैं। उन सपनों का विषय भी प्रायः यही होता है कि 'उनका पति परायी स्त्री से बातें कर रहा था।' स्त्री के मुख से प्रतिदिन एक ही बात सुनते-सुनते पति के कान पक जाते हैं। पत्नी भी विवश है। उसकी किसी और विषय में गति ही नहीं और रुचि भी नहीं। विविधता के लिये कभी-कभी घर के नौकर या पड़ोसिन के प्रेम-सम्बन्धों की चर्चा भी हो जाती है। किन्तु हर बात सैंकड़ों बार दुहराई जा चुकी है। पत्नी को इस आदत से बचना चाहिए।

उसे इन बातों के अतिरिक्त विषयों में भी रुचि लेनी चाहिये। सामाजिक कल्याण की चर्चा या साहित्यिक चर्चा में भी व्यसन रखना चाहिये। बिना अध्ययन या चिन्तन के कोई भी अच्छा साथी नहीं बन सकता। तुम्हारा पति शिक्षित है, तुम भी शिक्षित हो। तुम में समरुचि हो सकती है, समान व्यसन भी हो सकता है। काव्य का व्यसन सबसे अच्छा है। पठन-पाठन का क्षेत्र केवल उपन्यासों तक सीमित नहीं है। अन्य विषयों का भी अध्ययन होना चाहिये। केवलमात्र अध्ययन से भी काम नहीं चलेगा। चिन्तन भी आवश्यक है। मनन व चिन्तन के बिना तुम्हारा अपना दृष्टिकोण नहीं बनेगा। जब तक तुम्हारा अपना दृष्टिकोण नहीं बनेगा तब तक तुम अपनी बात में जान नहीं डाल सकोगी। इसलिये चिन्तन और अध्ययन दोनों की आदत डालनी चाहिये।

तुम्हारा हितचिन्तक

....

"A deaf husband and a blind wife are always a happy couple".

"सुनकर अन-सुनी करने वाला पति और देखकर भी आंखें बंद कर लेने वाली पत्नी का दाम्पत्य सुख निःसन्देह सदा स्थायी रहता है।"

[पतिदेव प्रमादी हैं......। आलोचना नहीं, प्रेरणा व सराहना]

प्रिय कमला,

मैंने भी यही सोचा था कि विवाह के बाद तुम कुछ शिकायतें ज़रूर करोगी। उन्हीं में से एक यह है कि तुम्हारे पतिदेव कुछ प्रमादी हैं। स्वच्छता की बहुत परवाह नहीं करते। स्नान से कतराते हैं। मैल से उन्हें स्वाभाविक अप्रीति नहीं है। बनाव-सिंगार से उन्हें अरुचि तो नहीं है किन्तु कभी-कभी रूखे बाल ही आफिस चले जाते हैं। बूट पर नित्य पालिश नहीं करते। दांत साफ़ करना भी कभी-कभी भूल जाते

हैं। इत्र से उन्हें छींकें आती हैं। क्रीम से दूर भागते हैं। पाउडर की तमीज़ नहीं। नाखून काटने में भी अलसाते हैं।

शिकायतों का प्रथमपर्व इन्हीं प्रसंगों से प्रारम्भ होता है। मलिनता अक्षम्य दोष है। शिक्षा स्वच्छता सिखाती है। तुम्हारे पति भी शिक्षित हैं। उन्हें भी अवश्य स्वच्छता से प्रेम होगा। अपने व्यक्तित्व को आकर्षक बनाने का उत्साह प्रत्येक युवक में होता है। बाह्य उपकरणों की सहायता से आकर्षण पाने में किसी भी आधुनिक युवक को आपत्ति नहीं होती। तुम्हारे पति के विचार भी आधुनिक हैं। मैं जानता हूँ उन्हें बनाव-सिंगार से द्वेष नहीं है। लेकिन, तुम्हारी शिकायतों में भी सचाई होगी। उन्हें निराधार नहीं मान सकता। कुछ देर तो विचित्र दुविधा में पड़ गया। दो विरोधी बातों का समन्वय कैसे करूं? निष्कारण तो कुछ भी नहीं होता। कल्पनायें दौड़ाने लगा। आखिर तुम्हारे पतिदेव के प्रमाद का एक कारण सोचा। संभव है यही सच हो। मेरा अनुभव कहता है—यही सच होना चाहिये। वही लिखता हूँ।

विवाह से पूर्व तुम्हारे पतिदेव भी शौकिन थे। स्वच्छता के पुजारी तो नहीं थे किन्तु स्वच्छता से प्रेम तो था हीं उन्हें। अपने व्यक्तित्व को आकर्षक बनाने का उत्साह भी था। विवाह के बाद भी वह उत्साह कुछ दिन बना रहा। तुम्हारे सामने आकर्षक रूप में आने के लिये भी यह आवश्यक था। लेकिन, बाद उनकी यह उमंग मन्द पड़ गयी। वे हतोत्साह हो गये।

उन्होंने देखा कि स्वच्छता का चरम प्रयत्न भी तुम्हारे सन्तोष का कारण नहीं बन रहा, तुम्हारी कसौटी पर पूरा नहीं उतर रहा। तुम उनकी सराहना करने के बजाय प्रतिदिन अधिकाधिक स्वच्छता की मांग करती गयी। और क्रियात्मिक

आदर्श पेश करने के लिये तुमने दिनरात स्वच्छता का अखंड अनुष्ठान शुरू कर दिया। सफाई के लिये घर में हर समय उथल-पुथल होने लगी। एक आदमी स्नान-घर में कपड़े धो रहा है, दूसरा फर्श मांज रहा है, चौथा झाड़ू लगा रहा है। तुम स्वयं लंबा बांस लेकर छतों पर लगे मकड़ी के जाले बीन रही हो।

फिर यह मांग होने लगी, 'चप्पल उतार दो, फर्श मैला हो जायगा', 'तकिये पर सिर न दो, गिलाफ पर धब्बे पड़ जायंगे', 'सोफे पर न बैठो उसका कवर पुराना हो जायगा।' बैठना-उठना मुश्किल हो गया। सब जगह स्वच्छता के सेवक अपने-अपने प्रयोग में लगे हुए हैं। कुर्सी पर बैठो तो क्षण भर में कोई कुर्सी के पैर पोंछने आ जाता है, सोफे पर बैठो तो दूसरा उसके नीचे का गर्द झाड़ने आ जाता है।

तुम्हारे पतिदेव ने इस स्वच्छता-युद्ध में भाग लेने का बहुत प्रयत्न किया किन्तु तुमसे आगे न बढ़ सका। तुमसे उसे नीचा ही देखना पड़ा। स्वच्छता के तुम्हारे आदर्शों तक वह नहीं पहुँच सका।

पुरुष का यह स्वभाव है कि वह जब किसी क्षेत्र की प्रतियोगिता में आगे न बढ़ सके तो उस क्षेत्र का परित्याग कर देता है। यहां तो फिर अपनी ही स्त्री से होड़ थी। हार खाकर वह इस युद्ध से उदासीन हो गया। यही उदासीनता उसके आलस्य को स्थायी बनाये हुए है। यह पराजय उसे सिर नहीं उठाने देती। अब वह पराजय को ही जीत बनाने की धुनमें है। लापरवाही को ही गौरवान्वित करने की सोचता है।

तुम उसकी मनोदशा में परिवर्त्तन कर सकती थीं। तुम्हारा कौशल उसके उत्साह को जागरूक रखने में सफल हो सकता था। उसकी स्वच्छता-प्रिय वृत्तियों को बढ़ावा देकर और इस क्षेत्र में अपनी प्रभुता बढ़ाने का प्रलोभन छोड़कर तुम उसे गौरवान्वित अनुभव होने देने का कार्य कर सकती थी।

अब भी तुम उसे स्वच्छता के मार्ग पर ला सकती हो। आलोचना के बल पर नहीं, मौन प्रेरणा की सहायता से। अब तो यह होता है कि जब वह पुराना तौलिया लेकर ही स्नान घर में जाने लगते हैं तो तुम नाक-मुंह सिकोड़ कर कहती हो—

"कितना गन्दा तौलिया लिये हो। बदबू नहीं आयगी?"

यह कहती हुई तुम अपनी साड़ियों की तह लगाने में लीन हो जाती हो। पतिदेव को तौलिया बदलना भी था तो ज़िद से नहीं बदलते। कड़वी बात कहने के बजाय यदि तुम कोई साफ़ तौलिया उनके स्नान-घर में जाने से पहले ही वहां टांग दो और मैले को धुलवा दो तो वे इस उपकार को भी मानेंगे और उन्हें स्वच्छता का अभ्यास भी होगा।

इसी तरह यदि तुम उनके नये कपड़ों को बटन लगाकर कपड़े बदलने से पहले तैयार करके यथास्थान रख दो तो तुम्हारी शिकायत ख़ुद दूर हो जाय। ऐसा करते हुए एक बात का ख़याल रखना। अपने काम का ढिंढोरा मत पीटना। या तुरन्त उनसे प्रमाणपत्र लेने का यत्न नहीं करना। उन पर उपकार-भार बढ़ाने की नीयत से ऐसा करोगी तो वे उस भार को वहन करने की अपेक्षा मैले-कुचैले परन्तु हल्का रहना ही अच्छा समझेंगे।

प्रत्येक व्यक्ति में कुछ ऐसी छोटी-छोटी आदतें होती हैं जिनका सुधार करने की कोशिश करना व्यर्थ सिद्ध होता है। यदि पति की आदत है कि वह अपने सामान को इधर-उधर

पड़ा रहने दे या कपड़ों की पूरी तह करके न रखे तो इस आदत को दूर करने का निरन्तर उपदेश देते रहना भी पत्नी के लिये उचित नहीं होता।

पत्नी होने की हैसियत से तुम्हारा कार्य यही है कि तुम पति को यथासंभव हर काम में सहयोग व सहायता दो। विवाह ने तुम्हें पति के सुधार का काम सुपुर्द नहीं किया है। पति की त्रुटियों को ढूंढ़कर उनकी आलोचना करोगी और उनको याद दिला-दिलाकर तंग करोगी तो पति का हृदय बहुत खिन्न हो जायगा। तुम्हारा छिद्रान्वेषण पति के हृदय में तुम्हारे लिये अनुराग के अंकुर पैदा नहीं करेगा, प्रेम की भावना नहीं बढ़ायेगा। इससे प्रेम की डोर कमज़ोर पड़ जायगी।

ध्यान से देखा जाए तो तुम्हारे अन्दर भी कुछ ऐसी आदतें हैं जिनका सुधार करने की आवश्यकता है। पति यदि बार-बार उनकी याद दिलाये तो तुम्हें अच्छा नहीं लगेगा।

वेशभूषा की सजावट रखना या न रखना भी आदत की बात है। यह आदत बड़ी कठिनाई से बदलती है। उसे बदलने का आग्रह करना कई बार कटुता पैदा कर देता है। तुम्हें चाहिये कि उनकी वेशभूषा सम्बन्धी आदतों के प्रति लापरवाही का भाव रखो। अपनी रुचि का प्रकाश तुम नम्रता से कर सकती हो, लेकिन उसे पति द्वारा अपनाने का आग्रह मत करो।

पति को भी चाहिये कि वह पत्नी के शृंगार या केशविन्या-सादि को पसन्द करे तो उसकी प्रशंसा कर दे और पसन्द न करे तो दोषों को कौशल से प्रकट कर दे। लेकिन उसकी आलोचना न करे। किसी विशेष रीति को अपनाने का आग्रह न करे।

साधारणतया होता यही है कि जो पति-पत्नी एक-दूसरे की भावनाओं को प्रेम और आदर की दृष्टि से देखते हैं, वे पोशाक या सजावट का निश्चय करते हुए साथी की रुचि का ध्यान रखते

हैं। वे व्यक्तिगत स्वच्छता और शालीनता की भी चिन्ता करते ही हैं। यह स्वाभाविक सहयोग की भावना ही दोनों में अनुकूलता लाने में पर्याप्त होती है। इससे अधिक का आग्रह कष्टप्रद होता है।

तुम्हारा हितचिन्तक

....

विवाह-विच्छेद की कल्पना पत्र २४

"Toleration is the best Religion".
Victor Hugo.

'सहिष्णुता सर्वोच्च धर्म है ।'

[बनेगी नहीं....तो; विच्छेद की भावना—पराजय वृत्ति की सूचक; विच्छिन्न पति-पत्नी के अनुभव ; अदालत की शरण ; दुर्व्यवहार का बहाना ; असफलता का बीज ; उभयपक्षीय सहयोग ; सहिष्णुता ही सच्चे प्रेम की कसौटी ; उन्माद नहीं, प्रेम ; साथ चलने का संकल्प ; विच्छेद की इच्छा—विनाश की सूचक]

प्रिय कमला,

तुम लिखती हो—

"हम दोनों में कई बार इतना अनबन हो जाता है कि साथ रहना भारी लगने लगता है। आप ने कहा था, विवाह संबन्ध में विच्छेद की संभावना नहीं। न चाहते हुए भी दोनों को साथ रहना पड़ेगा। इस आजीवन बन्धन से तो मौत ही अच्छी। छुटकारा तो मिलेगा।"

तुम्हारे पत्र के इन शब्दों को पढ़कर कुछ आश्चर्य नहीं हुआ। आजकल यह मुहावरा बहुत साधारण होगया है कि "बनेगी नहीं तो अलग हो जायंगे।" इस बात को कुछ इस ढंग से कहा जाता है, मानों, उन्हें विवाह-बन्धन से छुटकारा पाने का बड़ा अच्छा उपाय मिल गया है। विवाह से पूर्व ही वे ऐसी बातें करने लगते हैं। इस बात से उन्हें बड़ा आश्वासन मिलता है।

यह बात दूसरे शब्दों में यह है कि "कोई चिन्ता नहीं, यह काम न बना तो हम छोड़ देंगे।" कोई भी व्यवसायी व्यवसाय करने से पहले यह बात नहीं कहता कि कामयाबी न हुई तो दिवालिया हो जायंगे। वह कार्य का प्रारंभ इतने उत्साह से करता है कि विघ्न-भय से उसको बीच में ही छोड़ने का विचार ही उसके मन में नहीं आता। सफलता का संकल्प उसके मन में इतना दृढ़ होता है कि असफलता की संभावना पर वह कान ही नहीं देता।

विवाह के प्रारंभ में भी वर-वधू के मन में ऐसा ही दृढ़ संकल्प होना चाहिये। प्रारंभ में ही निष्क्रमण-द्वार पर दृष्टि रखना प्रवेश के औचित्य को सन्दिग्ध का देता है। यह विचार-धारा प्रारंभिक प्रयत्नों में ही शिथिलता पैदा कर देती है। ऐसा सोचना युद्ध के लिये प्रस्थान करने से पूर्व ही पराजय की तैयारी करना है। विजय-पराजय दोनों ही होते हैं—लेकिन प्रारम्भ में ही पराजय-काल की सामग्री एकत्र करना बालक के जन्म लेते ही उसकी चिता के लिये समिधायें एकत्र करने के समान निन्दनीय काम है।

'विवाह-विच्छेद' न तो कोई नया वरदान है ना ही यह नया अभिशाप है। हमारे विधिविधान भी विच्छेद की आज्ञा देते थे। पति को तो विच्छेद की आवश्यकता ही नहीं थी। वह तो अकारण भी एक स्त्री के रहते दूसरा विवाह कर सकता था। केवल उसे विवाह में पाये धन दहेज को लौटाना पड़ता था। किन्तु पत्नी को भी विच्छेद का अधिकार था। पति के प्रवासी होने, राजद्रोही, पापी, खूनी या अधार्मिक होने तथा पुंसत्वहीन होने पर पत्नी दूसरा विवाह कर सकती थी। पति के संन्यासी होने, साधु होने या गृहत्याग पर उसकी पत्नी सात मास प्रतीक्षा करने के बाद दूसरा विवाह कर सकती थी।

परिस्थितियों के भेद से इन विधानों में परिवर्त्तन भी हो सकता है। किन्तु, मेरी धारणा है कि विवाह-विच्छेद के उपाय से विवाहित जीवन का सुख पाने वाले पति-पत्नियों की संख्या बहुत कम है। अमरीका में आजकल एक तिहाई विवाहों का अन्त विच्छेद में होता है। जीवन भर साथ रहने का प्रण करने के बाद भी वे दो-एक साल बाद अलग हो जाते हैं।

किन्तु, विच्छिन्न पति-पत्नी का अनुभव यह बतलाता है कि उन्हें अपने विच्छेद पर बहुत पछतावा हुआ है। ऐसे पांच में से तीन वियुक्त दम्पति का तो यही अनुभव है। ब्रिटेन के एक जज ने राय दी थी कि ब्रिटेन में विवाह-विच्छेद के बाद पांच में से तीन जोड़े जरूर पुनः संयुक्त होने की इच्छा प्रकट करते हैं। उनका कथन होता है कि एक बार और मौका दिया जाए तो वे कभी विच्छेद के प्रलोभन में नहीं पड़ेंगे।

विच्छेद के लिये जो पति-पत्नी अदालत की शरण जाते हैं, वे विविध प्रकार की मानसिक निर्बलताओं के शिकार होते हैं। उनमें अमीर-ग़रीब, उदार-अनुदार, क्रूर-अक्रूर, स्वस्थ-बीमार सभी तरह के युगल आते हैं। किन्तु उनमें से बहुसंख्या प्रायः एक ही प्रकार के युगल की होती है—वह है अपरिपक्व भावनाओं के दम्पति की।

अपरिपक्व भावनाओं के व्यक्ति अदालत की शरण क्यों लेते हैं?

इसलिये कि विवाहित जीवन की समस्याओं को हल करने का सरलतम उपाय उन्हें—जो दुनियां में किसी भी संघर्ष में पूरा नहीं उतर सकते—विवाह-विच्छेद ही सूझता है। अपने विवाहित आनन्द के लिये प्रयत्न करना भी उनकी प्रमादी प्रकृति के विरुद्ध होता है। विच्छेद के प्रारंभिक दिनों में तो उन्हें कुछ नवीनता दिखाई देती है। बिरादरी की बातचीत में भी रस आता है। लेकिन कुछ दिन बाद इस प्रसंग की स्मृति भी उन्हें दुःखी बना देती है। वे गहरी उदासी में डूब जाते हैं। अपने टूटे हुए दिल की बात कहना भी उन्हें भारी हो जाता है।

विवाह के बाद का अकेलापन उनके जीवन को मसान बना देता है। बार-बार उनके मन में यही बात आती है "हमने भूल की।" पहले तो जीवन-साथी के चुनाव में भूल की और फिर उससे अलग होकर भूल की। एक भूल का उपाय दूसरी भूल नहीं हो सकती। उस भूल का सुधार सच्चे प्रयत्न से हो सकता था।

अदालत में विच्छेद का कारण "दुर्व्यवहार" दिया जाता है। लेकिन यह मूल कारण नहीं होता। यह तो एक बहाना

होता है या विच्छेद का कानूनी आधार होता है। असली कारण के लिये हमें ज़रा गहरा जाना पड़ेगा।

"दुर्व्यवहार" तो उन कारणों का परिणाम ही होता है जो प्रतिकूल विवाहों की असफलता के जनक होते हैं। प्रतिकूलता से मेरा अभिप्राय स्त्री-पुरुष की परस्पर प्रतिकूलता से नहीं—बल्कि उस प्रतिकूलता से है जो उन दोनों के मन में विवाह की मूलभूत धारणाओं के प्रति होती है। वे दोनों ही विवाह के अयोग्य होते हैं। उनका मानसिक विकास अधूरा होता है। वह अभी विवाह की ज़िम्मेदारियों को निभाने योग्य नहीं होता।

सच तो यह है कि विच्छेद चाहने वाला पुरुष किसी भी स्त्री का सफल पति नहीं बन सकता और स्त्री सफल पत्नी नहीं बन सकती। इसके अपवाद हो सकते हैं। लेकिन साधारणतया यही बात सच है कि एक असफलता दूसरी सफलता की सहायक नहीं होगी। जो व्यक्ति एक बार परीक्षा में अनुत्तीर्ण होता है, दूसरी बार भी उसी के अनुत्तीर्ण होने का डर होगा। असफलता का बीज मनुष्य के अपने अन्दर होता है, न कि परिस्थितियों में।

एक बात और भी स्मरणीय है। विवाहित जीवन उभय-पक्षीय सहयोग का परिणाम है। उसकी असफलता भी उभय-पक्षीय कारणों से होगी। ताली एक हाथ से नहीं बजती। अन-बन के लिये दोनों ज़िम्मेदार होते हैं। अपवादों को छोड़ दिया जाय तो दोनों ही समरूप से इसके दोषी होते हैं।

कभी यह नहीं होता कि किन्हीं एक या दो "दुर्व्यवहारों" से दोनों का मन टूट जाय। ये दुर्व्यवहार तो केवल सबूत के लिये पेश किये जाते हैं। इनकी पृष्ठभूमि बहुत विशाल होती है। एक प्रत्यक्ष दुर्व्यवहार के पीछे सैंकड़ों ही परोक्ष के दुर्व्यवहारों का जाल बना होता है। उनकी गिनती नहीं हो सकती। विवाहित जीवन का सारा सरोवर ही जहरीले पानी से भरा दिखाई देता है। परस्पर अविश्वास, उपेक्षा, व्यंग-कटुता, अशिष्टता, के सैंकड़ों बाणों से विवाह का जीवन घायल हुआ होता है।

ये घाव ऐसे नहीं होते जो भरे न जा सकें। थोड़ी-सी सहिष्णुता से इनपर मरहम लगायी जा सकती है। लेकिन सहिष्णुता तो परिपक्व विवेक से आती है। परिपक्व प्रेम में सहिष्णुता का स्थान सबसे ऊँचा है। हम जब अपने बच्चे से प्रेम करते हैं तो उसकी सैंकड़ों कमज़ोरियों को सहते हैं। उसके सैंकड़ों दुष्कर्मों से भी हमारा मन मैला नहीं होता। सहिष्णुता में परिपक्व पैतृक प्रेम का अंश है। विवाहित प्रेम में भी इसी का अंश होना चाहिये। सहिष्णुता ही सच्चे प्रेम की कसौटी है। जहां परिपक्व-प्रेम हो, वहां ही सहिष्णुता होगी और जहां केवल अन्धा उन्माद होगा वहां सहिष्णुता का स्थान ईर्ष्या और ले लेगी।

पति-पत्नी का सम्बन्ध उन्माद का नहीं, प्रेम का है। उन्माद की तो एक बार भभक बुझ जाती है। प्रेम की ज्योत एक बार जलकर सदा प्रदीप्त रह सकती है—यदि उसे उपेक्षा से स्वयं

बुझा न दिया जाय। अपने जीवन-साथी की उपेक्षा न करो। उसकी आलोचना न करने या उसे विष-बुझे शब्द न सुनाने में ही तुम्हारे कर्त्तव्य की इतिश्री नहीं हो जाती। तुम्हारा मौन उसके हृदय में प्रेम का बीज नहीं बो सकता। तुम्हें उसमें दिलचस्पी लेनी होगी। सचाई के साथ उसकी सराहना करनी होगी। केवल सचाई पर्याप्त नहीं। कुछ पत्नियां अपने पतियों को खरी-खोटी जलीभुनी सुना कर दावा भरती हैं कि उन्होंने सचाई से ऐसा किया। अकेली सराहना भी निष्फल होती है। उसकी निःसारता स्वयं स्पष्ट हो जाती है। लेकिन सच्चे दिल की सराहना अवश्य लक्ष्यवेध करती है। विवाहित जीवन में सच्ची सराहना के सैंकड़ों अवसर आते हैं। उनका उपयोग करना चाहिये।

यह सराहना तुम्हारे साथी के हृदय में प्रेम की प्रथम किरन की तरह नया प्रकाश फैला देगी। तुम्हारे स्नेह का टिमटिमाता दीपक—जो बुझने से पहिले धुँधला होगया था—नयी आभा से जगमगा उठेगा।

दो साथी जब दूर की मंज़िल के हमराही बनते हैं तो एक दूसरे को सहारा देते हुए ही आगे बढ़ते हैं। एक थक जाता है तो दूसरा भी थोड़ी देर बैठ जाता है। दोनों की चाल एक समान नहीं होती। एक तेज़ चलता है, दूसरा धीमे। लेकिन चलना दोनों को साथ ही है। इसलिये क़दम से क़दम मिलाते हुए वे आगे बढ़ते जाते हैं। दोनों के जुदा-जुदा स्वभाव हैं। एक को गाने से प्रेम है दूसरे को प्रकृति-निरीक्षणों से। एक विनोदी स्वभाव का है, दूसरा दार्शनिक। एक वाचाल है, दूसरा मौनी। फिर भी वे साथ-साथ चलते हैं।

उनकी यात्रा में एक स्थल वह आ जाता है जब दोनों को यह अनुभव होने लगता है कि शेष सब चीजें गौण हैं—उनका साथ चलना ही सबसे प्रधान है। अपने रुचि-भेद को भूलकर, स्वभाव-भेद को भूलकर, वे केवल इसी संकल्प को याद रखते हैं कि उन्हें साथ-साथ जाना है।

बर्फ से घिरी पहाड़ी-चोटियों पर भी वे एक साथ चढ़े थे, कुहरे से घिरी घाटियों में भी एक साथ उतरे थे, पर्वत के शिखर से गिरकर चट्टानों से टकराती हुई नदी का संगीत भी दोनों ने एक साथ सुना था। देवदार के घने जंगलों में, जब केवल दो दिलों की धड़कन ही उस सुनसान को भंग करती थी—दोनों ने साथ-साथ यात्रा की थी।

एक ही आकाश में सूर्य और चाँद साथ-साथ चल रहे हैं, सन्ध्या और प्रभात के क्षण क़दम से क़दम मिलाते हुए अनन्त पथ की यात्रा कर रहे हैं! विभिन्नता तो उनका आकर्षण बन जाती है। अन्धकार दीपक को आँचल में रखता है और दीपक की ज्योति अन्धकार के रंग को और भी प्रगाढ़ कर देती है। स्वभाव की विविधता, रुचि की भिन्नता—इस यात्रा को विविध रंगों में रङ्ग देती है। यह विविधता ही तो जीवन का शृङ्गार है।

स्त्री और पुरुष—दोनों में एक ही ज्योत जग रही है। सृष्टि के आदि से दोनों साथ चल रहे हैं। एक ही संगीत से दोनों हृदयों की तारें झनझना रही हैं। प्रकृति माता ने दोनों को साथ चलने के लिये एक ही पथ का पथिक बनाया है।

विच्छेद की इच्छा विनाश की सूचक है। स्वप्न में भी अलहदा होने की कल्पना न करो। दो आत्मायें मिलकर अलग नहीं होतीं। एक बार समर्पित होकर अब स्वतंत्र होने का तुम्हें अधिकार ही कहां है?

तुम्हारा हितचिन्तक

....

जीवन साथी

खण्ड : ५

"मातृत्त्व में ही नारीत्त्व की पूर्णता है।"

नया साथी

पत्र नं० २५

[प्रसव की वेदना ; गर्भवती का आहार ; स्तन पान ; अन्नाहार का आरम्भ]

प्रिय कमला,

तुम्हारे पत्र से मालूम हुआ कि तुम्हारे जीवन में एक नये साथी का प्रवेश होने वाला है। तुम मां बनने वाली हो।

आज तुम्हारा जीवन सार्थक होगया। संसार की सबसे सुन्दर वस्तु की रचना करने जा रही हो तुम! आज तुम्हारी निर्माण-प्रिय आत्मा को सच्चा संतोष हुआ। प्रकृति ने तुम्हें नई ज़िम्मेदारी का काम सौंपा है। निर्माण का कोई भी काम आसान नहीं होता। लेकिन कल्पित आशंकाओं से भयभीत न होना। कुदरत किसी को ऐसा काम नहीं देती जो उसके सामर्थ्य से बाहिर हो।

प्रसवकाल की वेदना का भय अनिवार्य नहीं है। इस वेदना को आसानी से दूर किया जा सकता है। यह वेदना प्रायः उन्हीं स्त्रियों को होती है जो आजकल की बनावटी सभ्यता में रहने की अभ्यस्त हो गई हैं और प्रसव की चर्चाओं ने जिनके दिल में यह

डर बैठा दिया है कि प्रसव-काल स्त्रियों के लिये दूसरा जन्म होने के समान है।

वास्तव में ऐसा नहीं है। आज भी अशिक्षित स्त्रियां बिना पीड़ा अनुभव किये बच्चे जनती हैं। उन्हें प्रसव से पहले, प्रसव के दौरान में या प्रसव के बाद किसी डाक्टर, नर्स या अस्पताल की जरूरत नहीं पड़ती। नई गर्भवती स्त्री को सलाह देने वाली स्त्रियाँ इस पीड़ा का अतिरंजित वर्णन करके मन में भय पैदा कर देती हैं। प्रसव से पूर्व भय होने का परिणाम यह होता है कि गर्भाशय की स्नायुएं सिकुड़ जाती हैं। जनन-क्रिया कष्टप्रद बन जाती है। स्त्री निर्भय रहे तो यह क्रिया सहज हो जाती है। इस भय का कारण शारीरिक न होकर मानसिक अधिक है। स्वस्थ शरीर और स्वस्थ मन ही इस पीड़ा को निर्मूल कर सकते हैं।

हां—आजकल तुम्हें अपने तथा होने वाले शिशु के शरीर-निर्माण के विचार से अपने लिये उचित आहार की व्यवस्था अवश्य कर लेनी चाहिये। स्वस्थ माता ही स्वस्थ शिशु को जन्म दे सकती है। स्वस्थ होने के लिये सन्तुलित आहार का होना परम आवश्यक है।

दूध तुम्हारे आहार का अनिवार्य भाग है। दूध में प्रायः सभी पोषक तत्त्व उचित मात्रा में मौजूद रहते हैं। जितना अधिक दूध ले सकती हो लो। अन्न की मात्रा में कुछ कमी करके उसके स्थान पर ताजे फल लो। उबली हुई भाजियों के साथ हरी भाजियां और सलाद भी लेती रहो। टमाटर, सन्तरे और अन्य फलों के रस भी शरीर की आंतरिक स्वच्छता के लिये आवश्यक हैं।

अपना आहार वैज्ञानिक दृष्टि से सन्तुलित करने में तुम्हारे डाक्टर तुम्हारी सहायता कर सकेंगे। आहार के साथ यह भी ध्यान रखना चाहिये कि पाचन ठीक प्रकार होता रहे। कोष्ठ-बद्धता या अजीर्ण की शिकायत न रहे।

प्रसव के बाद भी माता को वही आहार जारी रखना चाहिये। जब तक बच्चा अन्नाहार शुरू नहीं कर देता और स्तनपान करता है तब तक उसको पौष्टिक तत्व देने की जिम्मेदारी माता के ही ऊपर है। माता के पौष्टिक आहार लेने से ही उसका दूध पोषक रह सकता है।

आहार के साथ आराम की भी आवश्यकता है। प्रसव के बाद कुछ दिनों तक माता को पूरा आराम करना चाहिये। अतिव्यस्तता और मानसिक क्लेश का परिणाम यह होगा कि माता के स्तनों में दूध की कमी हो जायगी। बहुत-सी स्त्रियों को प्रसव-काल के तुरन्त बाद घर के काम-धंधों में लग जाना पड़ता है। घर-बाहर की अनेक चिन्ताएं उनके मन को घेर लेती हैं। जहां तक हो अनावश्यक श्रम और चिन्ताओं से बचना चाहिये। यह व्यस्तता माता के स्वभाव को चिड़चिड़ा बना देती है। उसका प्रभाव बच्चे के विकास पर बहुत बुरा पड़ता है।

स्तन-पान के समय भी कुछ बातें जरूर ध्यान में रखो। स्तन-पान लेट कर आराम से कराना चाहिये। चलते-चलते या बैठे हुए स्तन-पान कराने से पेट और कमर की नाड़ियां खिच जाती हैं। इससे कमर-दर्द शुरू हो जाता है। स्तन-पान कराने वाली मातायें प्रायः इस दर्द की शिकार हो जाती है।

जितने समय तक बच्चे के लिये उचित है उतने समय तक उसे स्तन-पान ही कराना चाहिये। बच्चे के लिये माता का दूध

बाहिर के दूध से अधिक स्वास्थ्यकर होता है। माता का दूध पूरा न हो तो पौष्टिक आहार लेकर दूध की मात्रा बढ़ानी चाहिये।

'कितने अन्तर से दूध दिया जाय' इस प्रश्न का एक ही उत्तर देना कठिन है। साधारणतया चार घण्टे के अन्तर से दूध दिया जाता है। किन्तु बच्चे की ज़रूरतों को देखकर इसे कम-अधिक भी किया जा सकता है। यदि वह पहला दूध तीन घंटे में ही हज़म कर लेता है तो वह तीन घंटे बाद ही रोना शुरू कर देगा। उसे तीन घण्टे के अन्तर से दूध दिया जा सकता है। हर बच्चे की पाचन-शक्ति में अन्तर होता है। उसके अनुसार ही दूध की व्यवस्था करना उचित है।....हाँ, एक बार बच्चे का हाज़मा देखने के बाद और दूध देने का अन्तर निश्चित करने के बाद उसमें बार-बार परिवर्त्तन नहीं करना चाहिये। समय की यह पाबन्दी बहुत ज़रूरी है। ठीक समय पर दूध न मिलने से वह अशान्त हो जाता है। यह अशान्ति उसकी पाचन-शक्ति को भी कमज़ोर करती है। चीख-पुकार के बाद मिले दूध को पचाना उसके लिये कठिन हो जाता है।

"छोटे बच्चे यों ही रोया करते हैं" यह धारणा भ्रमपूर्ण है। वे किसी को परेशान करने के लिये नहीं रोते। उस रोने में बनावट भी नहीं होती। वे तभी रोते हैं जब उनकी कोई आवश्यकता पूरी नहीं होती या उन्हें किसी प्रकार का कष्ट मालूम होता है। वे अपनी आवश्यकता को शब्दों द्वारा प्रकट नहीं कर सकते। रोकर ही उन्हें व्यक्त करना पड़ता है।

इसलिये बच्चे को दूध पिलाने, सुलाने और नहलाने के समयों का निश्चय करके ही माता को अपने अन्य कार्यों का क्रम बनाना चाहिये। हर बच्चे की आवश्यकतायें भिन्न २ हैं। उनका पता लगाना चाहिये। रोते बच्चों को मुंह बनाकर

चिढ़ाना या घूरना या मार-पीट कर चुप कराना उनके स्वाभाविक विकास को रोकना है। उनकी शारीरिक उन्नति में ही इसमें बाधा नहीं पहुँचती, बल्कि मानसिक विकास में भी रुकावट पड़ती है।

माँ का दूध न मिल सके तभी बाहरी दूध देना चाहिये। वह भी गाय का हो तो ठीक है। गाय और मां का दूध बहुत कुछ मिलता-जुलता है। किन्तु गाय के दूध में प्रोटीन की मात्रा मां के दूध से कुछ ज्यादा होती है इसलिये उसमें पानी मिलाकर देना चाहिये। दूध के अलावा बच्चे को विटामीन 'सी' देने के लिये सन्तरे व मौसम्बी का रस भी नित्य देना अच्छा है। बोतल द्वारा दूध पिलाते हुए बोतल की सफाई का ध्यान अवश्य रहे। और इस तरह दूध पिलाते हुए बच्चे का मुंह इसी प्रकार रहना चाहिये जैसे स्तन-पान करते समय रहता है।

बच्चा जब लगभग एक वर्ष का हो जाय तो उसके दूध की मात्रा में कुछ कमी करके अन्न और शाकादि देना शुरू कर दो। इसमें बहुत जल्दी की आवश्यकता नहीं। पहले-पहल बच्चा अन्न से कुछ अरुचि प्रकट करता है किन्तु बाद में दूसरों को खाता देख कर स्वयं खाना शुरू कर देता है। जहां तक हो सके आरम्भ में बच्चे को अन्न सुबह ही देना चाहिये। इससे लाभ यह होता है किसी कारण अन्न न पच पाया तो रात से पहले पेट साफ़ होते समय निकल जाता है। रात को कष्ट नहीं होता। एक दिन में एक ही नया अन्न देना चाहिये। इससे यह जाना जा सकता है कि कौन-सा अन्न उसके अनुकूल है, कौन-सा नहीं। अन्न की उचित मात्रा का भी पता लग जायगा।

एक बात का ध्यान रखो। यदि बच्चे को यह पता लग जायगा कि तुम उसके आहार के सम्बन्ध में बहुत सावधान रहती हो तो वह भोजन के समय ही जान-बूझकर शैतान हो जायगा। खाने के समय भी तुम्हारा व्यवहार सहज और हमेशा जैसा रहना चाहिये। खेल-खेल में ही उसे उसके अनुकूल भोजन दे दो। वह सब काम खेल-खेल में करना चाहता है। बहुत गंभीरतापूर्वक किया काम उसकी उस काम के प्रति अरुचि बढ़ा देता है। सुलाने-नहलाने, खिलाने या किसी भी काम के समय बहुत व्यस्तता मत प्रकट करो। हर काम को सरल-स्वाभाविक रीति से कर दो।

दांत निकलने के समय कभी-कभी स्वस्थ बच्चों को भी बड़ा कष्ट होता है। बात यह है कि दांतों को कई पोष्टक तत्त्वों की जरूरत होती है। वे तत्व दूध, फलों के रस और काड-लिवर-आइल में होते हैं। दांतों के समय का कष्ट चिन्ताजनक नहीं समझना। उसकी पाचन-शक्ति ठीक रहेगी तो यह कष्ट बहुत कम हो जायगा।

बच्चों की देख-भाल करते हुए कुछ छोटी-छोटी समस्याएँ भी बड़ा परेशान करने लगती हैं। उनका समाधान अपने घर की अनुभवी स्त्रियों से पूछ लेना चाहिये।

तुम्हारा हितचिन्तक

....

बालक का मानसिक विकास पत्र २६

[आवश्यकता से अधिक देखभाल; बच्चे प्रेम के ही वश होते हैं; बहुत रोने की आदत का इलाज; बच्चों के प्रश्नों का उत्तर; स्वावलम्बन की शिक्षा; रिश्तेदारों का प्रेम-प्रदर्शन]

प्रिय कमला,

पिछले पत्र में मैंने तुम्हें बच्चे के पालन-पोषण के लिये कुछ उपयोगी निर्देश दिये थे। वे प्रायः उसके खान-पान संबन्धी थे। उनसे उसके शरीर का निर्माण होता है। किन्तु, शरीर तक ही उसका व्यक्तित्व सीमित नहीं है। यह अवस्था उसके मानसिक विकास की भी होती है। उसे केवल अस्थि-चर्म का बना सुन्दर खिलौना समझना बड़ी भूल है। बहुत छोटी अवस्था से ही उसकी बुद्धि विकास के मार्ग ढूंढ़ना शुरू कर देती है। आसपास की चीजें व घटनाओं का प्रतिबिम्ब उसके मन पर पड़ता है। और सबसे गहरी छाया पड़ती है माता के व्यवहार की। माँ की चेष्टाओं का जो अक्स उसके मन पर इस अवस्था में पड़ेगा वह उसके चरित्र का स्थायी अंग बन जायगा।

केवल बहुत अधिक देखभाल से ही उसका चरित्र नहीं बनता। यह देखभाल कई बार उसके मन को जकड़ लेती है। उसे समुचित स्वतन्त्रता भी मिलनी चाहिये। कभी-कभी उसे दूसरे बच्चों के साथ या स्वयं खिलौनों के साथ अकेले खेलने के लिये छोड़ दो। आरंभ में उसे मिट्टी के खिलौने दो जिनको वह तोड़-फोड़ भी सके। तुम्हें चाहिये कि न तो तुम स्वयं उसके साथ प्यार का अनावाश्यक और हर समय का प्रदर्शन करो और न अपने परिवार वालों को करने दो। बहुत अधिक लाड़ प्यार रखने व दिखाने से बालक की उन्नति में बाधा पहुँचती है।

बच्चे खेलने के समय बहुत अधिक हस्तक्षेप पसन्द नहीं करते। अधिकतर वे खुद ही खेलना चाहते हैं। और अपने शरीर व बुद्धि का प्रयोग करना चाहते हैं।

मातायें अपने बच्चों के शोर से तंग आकर उन्हें पीट देती हैं। बाद में पछताती है। पीटने का जो बुरा असर बच्चों पर होता है उसे दूर करने के लिये बाद में वे उनसे अत्यधिक लाड़-प्यार दिखलाती हैं।

माताओं का यह व्यवहार बड़ा मूर्खतापूर्ण होता है। पहले तो बेकसूर बच्चे को पीटना ही मूर्खता है। फिर यह समझना कि पिटने के बाद बच्चे में माता के प्रति प्रेम नहीं रहेगा —द्वेष की भावना जागृत होजायगी, मूर्खता की पराकाष्ठा है।

बच्चों में भी असली प्रेम को समझने की विवेक-बुद्धि होती है। यदि तुम उन्हें पीटने के कुछ देर बाद शब्दों से प्रेम प्रकट करदो तो वे तुम्हारे कटु-व्यवहार को भूलकर तुमसे पहले जैसा प्यार करने लगेंगे। बच्चों का विश्वास तुम्हारी एक-दो भूलों से दूर नहीं हो जायगा। अतः तुम्हें इस बारे में बहुत चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं है। यदि तुम अपने पर नियन्त्रण न रख

सको और बच्चों को पीट भी दो तो बाद में उसका पछतावा न करके उस घटना को तुरन्त भूल जाओ।

कुछ माताओं को यह शिकायत होती है कि उनका बच्चा कहना नहीं मानता। वह घर में और सबका कहना मान लेता है—केवल मां का नहीं मानता। कारण यह है कि कई बार मां का व्यवहार बड़ा अप्रीतिकर हो जाता है। इसका निदान उसे अपनी मानसिक स्थिति में ढूंढ़ना चाहिये। अपनी ही चिन्ताओं में व्यस्त मातायें अपने मन का बुखार बच्चों पर उतारती हैं। माता का दुर्व्यवहार बच्चे के मन से माता का प्रेम और सन्मान नष्ट कर देता है। यह समझना भूल है कि तुम्हारी गोद में तुम्हारे दूध से पला होने के कारण ही वह उम्र-भर तुम्हारी गालियों को मीठी बातें मानता रहेगा। तुम्हारी पिछले उपकारों से दबकर भी वह तुमसे प्रेम नहीं कर सकता। बल्कि उन उपकारों को भी वह भार ही समझने लगेगा। प्रेम का प्रतिदान तो प्रेम के ही उत्तर में मिलता है। उसकी उपेक्षा का कारण समझकर उससे प्रेमपूर्ण व्यवहार करो। तभी वह तुम्हारा कहना मानेगा। बच्चे उसी का कहना मानते हैं जिससे प्रेम करते हैं। अनुशासन से नहीं—प्रेम से ही तुम उन्हें अपना आज्ञाकारी बना सकती हो।

आमतौर पर माताओं को यह शिकायत रहती है कि वे अपने बच्चों के खाने, पीने, सोने, नहाने आदि के नियमित रखने का पूरा ध्यान रखती हैं, फिर भी उनके बच्चे रोते रहते हैं। जरा-

कई मातायें अपने बच्चे की गुलाम बनकर उन्हें कभी अपने पैरों पर खड़ा नहीं होने देतीं। बड़े होने पर भी वे बच्चे दूसरों से ही अपने काम करवाने के आदी हो जाते हैं। बच्चा जब स्कूल जाने की उम्र में आ जाय तो उसे अपने कपड़े स्वयं संभालने, या स्वच्छ रहने की आदत डालनी चाहिये। बहुत लाड़-प्यार में मातायें स्वयं उनके कपड़े संभालती हैं और नहलाती-धुलाती रहती हैं। परिणाम यह होता है कि उनको अपना काम अपने हाथों से करना नहीं आता। उनमें आत्म-विश्वास, कौशल और दृढ़ता की कमी रह जाती है। ये गुण उनमें विकसित ही नहीं हो पाते।

कुछ मातायें तो अत्यधिक प्रेम के वश बच्चों को अपने पैरों आप खड़ा होने का सबक नहीं देतीं और कुछ ऐसी होती हैं जो बच्चों के अभ्यास-काल में भी घर की यत्किंचित् अव्यवस्था को सहन नहीं कर सकतीं। वे बच्चे की भूल का स्वयं सुधार कर देती हैं। बच्चे को सुधार करने का अवसर ही नहीं देतीं। उन्हें याद रखना चाहिये कि सीखने के समय बच्चा भूलें भी करेगा। उसके ट्रंक में कुछ कपड़े अस्तव्यस्त भी रहेंगे और उसका बिस्तर उलट-पलट भी रहेगा। लेकिन 'घर की शोभा न बिगड़ जाय', इस डर से अगर तुम स्वयं सब संवार दोगी तो बच्चे को सीखने का अवसर नहीं मिलेगा।

एक क्षण के लिये भी घर की सजधज न बिगड़े—गृहिणी की यह महत्त्वाकांक्षा बच्चे के भविष्य को बिगाड़ देती है। ऐसी मातायें बच्चे को अपने हाथों अपना काम करने की आज़ादी नहीं देतीं। अच्छा यह है कि कुछ दिन भले ही घर की सजधज बिगड़ जाय, घर में अस्तव्यस्तता रहे, बच्चे की स्वच्छता में कमी आ जाय—किन्तु बच्चा अपने हाथों अपना काम करना सीख जाय। यह शिक्षा बच्चों को घर में ही मिल सकती है। घर को

केवल अपनी आरामगाह नहीं बल्कि बच्चों की प्रयोगशाला समझना चाहिये।

रिश्तेदारों का हस्तक्षेप भी बहुत बार बच्चों के मानसिक सन्तुलन को बिगाड़ देता है। हमारे घरों में प्रायः रिश्तेदारों के आने का ताँता लगा रहता है। इससे बच्चे के सोने, खेलने और खाने के कार्यक्रम में तो बाधा पड़ती ही है, साथ ही वह बेकाबू भी हो जाता है। मां-बाप के सामने जिन शरारतों को करने से वह डरता है उन्हें ही वह रिश्तेदारों के सामने करने लगता है। वह जानता है कि उस समय उसके माता-पिता धमकायेंगे नहीं। आने-जाने वाले रिश्तेदार प्रायः माता से बड़ी उम्र के होते हैं—इसलिये वह उनके सामने चुप रहती है। मन-ही-मन कुढ़ती है—लेकिन कुछ कह नहीं सकती।

यह चुप्पी तुम्हें तोड़नी होगी। तुम्हें रिश्तेदारों को सुझाना होगा कि उनके अनुचित प्रेम-प्रदर्शन से बच्चे का स्वभाव बिगड़ता है। वे तुम्हारे सुझाव को पसन्द करेंगे और अपने व्यवहार को बदल लेंगे।

यह नहीं समझना चाहिये कि बच्चा नियन्त्रण को बिल्कुल पसन्द नहीं करता। उसमें भी नियन्त्रण को अच्छा समझने की बुद्धि है। रिश्तेदारों के असंयत और अतिशय प्रेम-प्रदर्शन की अपेक्षा वह मां-बाप के अनुशासन-मिश्रित प्रेम का ही आदर करेगा। बच्चे में इतना विवेक होता है।

बालकों के खिलाने, सुलाने तथा अन्य कामों के जो नियम बताये जाते हैं वे सुझाव के तौर पर होते हैं, उनका अन्ध-

पालन नहीं किया जा सकता। सब बच्चे एक-सी प्रकृति और स्वास्थ्य के नहीं होते।

यदि किसी बच्चे को दिन में ज्यादा नींद आती है और रात में कम या उसे दूध के स्थान पर अन्न में अधिक रुचि है तो माता-पिता को जबर्दस्ती अपने आदर्श नियमों का बच्चे से पालन कराने में हठ नहीं करनी चाहिये। उन्हें बच्चे की रुचि के अनुसार दिनचर्या बदल देनी चाहिये; अपने नियम स्वयं बना लेने चाहियें।

बच्चा कोई मशीन नहीं है जिसको सिर्फ ठीक समय पर ठीक खाना खिलाकर या ठीक समय पर ठीक घंटों के लिये आराम कराकर समझ लिया जाय कि देख-रेख हो गई। छोटे-से-छोटे बालक का भी अपना व्यक्तित्व होता है। उसके व्यक्तित्व का माता-पिता को उतना ही आदर करना चाहिये जितना वह अपने व्यक्तित्व का करते हैं। बच्चे को प्रारंभ से ही विशेष व्यक्ति मानकर चलना चाहिये। हर बालक, दूसरे बालकों से निराला होता है। उसके नियम भी निराले ही होने चाहियें।

सब बालकों की आवश्यकताएँ और विचार-शक्ति एक समान नहीं होती। कुछ बालक बात को अविलंब समझ लेते हैं और कुछ के मस्तिष्क में नई बात बिठाना सूई की नोक में से ऊँट गुजारने के बराबर कठिन हो जाता है। उन दोनों विभिन्न स्वभाव के बालकों को एक ही लाठी से हांकना और दोनों को एक ही दिनचर्या की डोर में बांधना अन्याय है।

बालकों के संगोपन और शिक्षण का काम बड़े दायित्व का काम है। माता-पिता को अपने बालक के जीवन के साथ खिलवाड़ करने का अधिकार नहीं है। कोई भी परीक्षण करने से पूर्व

बालक की मानसिक स्थिति का पूरा अध्ययन कर लेना चाहिये। अमुक नियम क्यों अच्छा है, उसका पालन करना तुम्हारे बालक के लिये लाभप्रद है—यह विचार करके ही उसके पालन पर बल देना चाहिये। आवश्यक हो तो उसमें सुधार भी कर लेना अच्छा है।

तुम्हारा हितचिन्तक

....

बच्चों के कुछ मनोविकार पत्र २७

[हीन-भावना से बचाओ—बालक—माता-पिता का प्रतिबिम्ब ; झूठ बोलने की आदत]

प्रिय कमला,

बच्चों की दुनियां सीधी-सरल होती है। उनकी मनो-भावनायें भी प्रायः स्वाभाविक और जल्दी समझ में आने वाली होती हैं। उनका सब कुछ प्रकट होता है। उनमें प्रायः ऐसी ग्रन्थियां नहीं होतीं जो परोक्ष रूप से उनके व्यवहार पर प्रभाव डालती हों।

यह बात सच है—किन्तु सर्वांश में सच नहीं। उनकी चेष्टायें भी कई बार बहुत छिपे कारणों से प्रभावित होती रहती हैं। मैं एक गृहिणी को जानता हूँ जिसे अपनी पांच साल की लड़की से यह शिकायत है कि वह अपने ६-७ महीने के भाई से तीव्र घृणा करती है। यह घृणा नहीं, ईर्ष्या है। नये बालक के जन्म के बाद माता-पिता का ध्यान उसकी ओर से हटकर छोटे बालक की ओर चला गया। वह पहिले की तरह ही मां-बाप के प्रेम पर पूरा स्वत्व चाहती है। नवागन्तुक बालक ने ही

उसके स्वत्व को छीना है—इसलिये वह उससे ईर्ष्या करती है।

कई बार ऐसा होता है कि ईर्ष्यालु बच्चे बड़े होकर भी नये सिरे से छोटे बच्चों की तरह चेष्टायें करने लगते हैं—अंगूठा चूसने लगते हैं और बहुत रोने-मचलने की आदत डाल लेते हैं। वस्तुतः वह अब भी अपने को छोटा बच्चा जतला कर मां-बाप से वही प्रेम चाहते हैं जो वे पहले केवल उसे ही देते थे और अब छोटे बच्चे को देने लगे हैं।

ऐसी स्थिति में माता-पिता को धीरज से काम लेना चाहिये। बड़े बच्चे के दिल में छोटे के लिये गहरा अपनापन जागृत करना चाहिये। उसे कहना होगा कि इस नये बालक की रक्षा का और उसे प्रेम करने का काम उसका ही है। उसकी बचपन की सब इच्छाओं को पूरा करने की जरूरत तो नहीं—किन्तु कुछ इच्छाओं को अवश्य पूरी करो। उसे विश्वास दिलाना होगा कि अब भी वह पहिले की तरह अपने मां-बाप की लाड़ली है। उसके भाई ने उसके अधिकार में से कुछ भी छीना नहीं।

कईं घरों में ऐसा होता है कि छोटे भाई को उत्साह देने के लिये बड़े को बार-बार कम समझदार कहा जाता है। बार-बार यही बात सुनकर बड़ा भाई सचमुच आलसी और मन्दबुद्धि बन जाता है। उसमें हीन-भावना पैदा हो जाती है। वह मन ही मन छोटे भाई से ईर्ष्या करने लगता है। दिल ही दिल में उसके जलन-सी होती रहती है। उसे वह व्यक्त नहीं कर सकता। इसलिये चुपचाप चिढ़ता रहता है और अलग खिंचा-सा रहता है।

जो माता-पिता इस तरह एक दूसरे भाई की तुलना किया करते हैं वे दोनों में विद्वेष की चिंगारियां छोड़ने के दोषी होते

हैं। चाहिये यह कि जिसमें जितनी योग्यता है उसका आदर किया जाय। कोई निर्बल है तो उसे सहायता दी जाय। किसी की निर्बलता को उपहास का विषय बनाना उसके विकास के लिये घातक है।

हमारे परिवारों में जो विषमता दिखाई देती है उसका प्रधान कारण यही है कि घर के लोग जब मिलकर बैठते हैं तो भाई-बहनों की तुलना में ही सारी प्रतिभा खर्च कर देते हैं। वे समझते हैं कि घर बैठकर बच्चों की आलोचना करने में कोई बुराई नहीं है। उनका यह भी विश्वास होता है कि इस आलोचना से आलोचित व्यक्ति को प्रोत्साहन मिलेगा। यह विश्वास भ्रममूलक है। उसका असर कभी अच्छा नहीं होता।

बच्चे की शिक्षा के समय माता-पिता को अपनी आदतें सुधारने का भी ध्यान रखना चाहिये। बच्चों में नकल की भावना बहुत तेज़ होती है। उन्हें अच्छे-बुरे का कोई विचार नहीं होता। वे तो जो देखते हैं उसकी नकल शुरू कर देते हैं यदि तुम चाहो तो अपने बच्चे की नकल करने की आदत का सदुपयोग अपने आचरण को आदर्श बनाकर कर सकते हो। मगर, इसके लिये तुम्हें कठिन प्रयत्न करने पड़ेंगे।

यदि तुम चाहते हो कि तुम्हारा बच्चा क्रोध न करे तो पहले तुम्हें अपने क्रोधी स्वभाव पर विजय पानी होगी। माता-पिता खुद तो तुनुक-मिज़ाज होते हैं, बात-बात में आग-बबूला हो जाते हैं, नौकर पर हाथ उठाते हैं, चीजें तोड़ने लगते हैं, बच्चे की हड्डी-पसली तोड़ने पर उतारु हो जाते हैं—लेकिन बच्चों से यह आशा रखते हैं कि वे सौजन्य के अवतार होंगे।

मां अगर पीठ पीछे बच्चे के पिता की निन्दा करेगी तो बच्चा कभी परनिन्दा के दोष से मुक्त नहीं हो सकता। वह आदत उसके खून में समा जायगी। क्रोधी स्वभाव के माता-पिता की सन्तान विनम्र नहीं बन सकती। विषय-भोग में ग्रस्त मां-बाप अपना ज़हर बच्चों में अवश्य भर देंगे। बच्चों की निरीक्षणशक्ति बहुत तेज़ होती है। मां-बाप द्वारा उनकी आंखों में धूल झोंकने का प्रयत्न भूल है। वे अपने माता-पिता के मन की बातों को भी पहिचानते हैं। पहिचानते ही नहीं—अपना भी लेते हैं।

शाब्दिक उपदेशों का प्रभाव उनके मन पर नहीं पड़ता। माता-पिता का जीवन ही उनपर प्रभाव डाल सकता है। इस ज़िम्मेदारी को समझकर ही माता-पिता को अपने आचरणों का निरूपण करना चाहिये। अपने लिये नहीं—तो अपने बच्चों के लिये उन्हें सुधारना चाहिये।

बच्चे दो कारणों से झूठ बोलते है। (१) सच बोलने के परिणाम से बचने के कारण (२) और सच बोलने की दोष-पूर्ण शिक्षा के कारण। सच बोलने के कारण बालक को जब सज़ा भुगतनी पड़े, तब वह सच नहीं बोलता। उसमें यह विश्वास पैदा करना चाहिये कि अपराध स्वीकार करने पर भी उसे भयंकर दंड नहीं दिया जायगा। दण्ड देकर बालकों को सुधारने का उपाय बहुत दोषपूर्ण है। दंड देकर माता-पिता केवल अपने क्रोध का निराकरण करते हैं। दंड की भावना सुधार की भावना नहीं है। सुधार सदैव प्रेम से होता है। दंड देकर माता-पिता बच्चे में स्वयं झूठ बोलने की आदत डालते हैं।

मानलो, तुम बालक को कुछ पैसे देते हो, और वह उसे खो देता है। तुम्हारे पूछने पर वह पैसों के खो जाने की सचाई

को स्वीकार कर लेता है। तुम्हारा कर्तव्य है कि तुम उसे पैसे खोने के अपराध का दंड न देकर उसके सच बोलने की क़द्र करो और प्रेमपूर्वक समझा दो कि पैसा खोना कितना बुरा है। कुछ थोड़े-से पैसों की हानि इतनी चिन्तनीय नहीं है जितनी झूठ बोलने की आदत। सच बात कहकर भी जब वह दण्डित नहीं होगा तो वह सच कहने से नहीं डरेगा। उसे झूठ बोलने की आदत नहीं पड़ेगी। हर बात का उत्तर देने से पूर्व वह सच-झूठ का परिणाम नहीं सोचेगा। सच कहने में उसे कोई परिश्रम नहीं करना पड़ेगा।

मार-पीटकर बच्चों से सच कहलवाने का कोई लाभ नहीं होता। इस तरह बच्चे मार-पीट से बचने का इलाज ढूँढ़ लेते हैं लेकिन सच बोलना प्रारंभ नहीं करते। बल्कि अपने झूठ को सच बनाने के लिये सैकड़ों झूठों का आविष्कार करने लगते हैं। इस आविष्कार में उन्हें आनन्द अनुभव होने लगता है। मात-पिता और बच्चों में सदा संघर्ष चलता रहता है। हार माता-पिता की ही होती है। वे अपने बालक की असत्य के आविष्कार में प्रखर प्रतिभा से पराजित हो जाते हैं। और अन्त में इतने हताश और हत-प्रभ हो जाते हैं कि बालक के भविष्य-निर्माण में रुचि लेना ही छोड़ देते हैं।

निश्चेष्टता भी बहुत बार बच्चों के मन में विकार पैदा कर देती है। निष्क्रिय मन शैतान का घर होता है। निष्क्रियता बच्चे के मन में उत्पात-उपद्रव करने की प्रवृत्ति को जागृत कर देती है। माता-पिता का कर्तव्य है कि वे बच्चे को कभी निष्क्रिय न रहने दें। स्कूल के समय के अतिरिक्त भी बच्चे के पास बहुत अवकाश रहता है, विशेषतः लम्बी छुट्टियों के अवसर पर।

उस समय का सदुपयोग होना आवश्यक है। घर में कुछ घरेलू खेलों का सामान रखना उचित है। माता-पिता को स्वयं बालक के साथ खेलना चाहिये। बच्चें को नये मित्र बनाने की भी प्रेरणा देते रहना उचित है। हर उपाय से उसकी छुट्टी के समय को विविधतापूर्ण और व्यस्त बनाने का यत्न करो।

तुम्हारा हितचिन्तक,

....